ISSN : 2350-0441

Shodh Chetna

शोध चेतना

The International Reffered, Reviewed & Multifocal Research Journal

Year - 3 **Jan. to March., 2017** **Volume - 1**

Chief Advisor
Ajaya Srivastava
Librarian, State Central Library, Rewa

Chief Pattern
Prof. Ved Prakash Upadhyaya
Ex-chairman Punjab University, Chandigarh
U.G.C. Professor....

Uma Kant Mishra
Prof. & H.O.D. (Sanskrit-Academic) T.R.S. College, Rewa

Chief Editor
Sushil Kumar Kushwaha

Honourary Editor
Dr. Sanjay Shankar Mishra
Professor and Head, Department of Commerce
Govt. T.R.S. College, Rewa (M.P.)

Editor
Dr. Surya Naryan Gautam
Associate Professor (Sanskrit), J.J.T. University (Raj.)

Managing Editor
Harsh Kushwaha

- The persons holding the posts of the Journal are not paid any salary or remunaration. The Journal's work is purely academic, non political, posts of Journal are honorary.
- The Journal will be regularly indexed and four issues will be released every year in (January to March) - 1, (Apr. to Jun.) - 2, (July to Sept.) - 3, (Oct. to Dec.) - 4

Editorial Board

Shri Narendra Shashtri
Ved Pravakta, Arya Samaj, **Singapore**

Dr. Vaishali S. Chaudhari
Prof. Library & Information Science
Shri J.J.T. University, Jhunjhunu (Raj.)

Dr. D. N. Tripathi
Associate Professor & HOD (Sanskrit)
Dharma Samaj P.G. College, **Aligarh**

Dr. Narendra Kumar Gupta
Professor, Department of Law
Himachal Pradesh University, **Shimla**

Dr. (Major) Vibha Srivastava
Professor & Head, Department of History
Govt. Girls P.G. College, **Rewa (M.P.)**

Dr. Sudha Soni
Prof. Department of History
Govt. Girls P.G. College, **Rewa**

G.H. PUBLICATION
121, Shahrarabag, Allahabad-211 003

© *Publishers*

Registration Fee : **Rs. 1300.00**

Membership Fee :

Single Copy **Rs. 350.00** **(Individual)**

Rs. 500.00 **(Institution)**

Annual (4 Issues) **Rs. 2000.00** **(Institution)**

Life Member Fee **Rs. 5000.00**

Mode of Payment :

DD/Cheque/Cash should be sent in favour of

G. H. PUBLICATION
Union Bank of India
Chowk, Allahabad-211 003
A/c. No. 394301010122432
IFSC-UBIN 0539431

SUBJECT EXPERT/ ADVISORY BOARD

Dr. Smt. Poonam Mishra (History)
Govt. T.R.S. College, Rewa (M.P.)

Dr. Rajendra Prasad Chaturvedi
Prof. & HOD (Sanskrit)
Govt. T.R.S. College, Rewa (M.P.)

Dr. Dinesh Kumar Singh (Botany)
Shri J.J.T. University, Jhunjhunu (Raj.)

Mr. Vineet Kumar Gupta (English)
Govt. Acharya Sanskrit College
Alwar (Rajasthan)

Dr. Vinod Tiwari
Prof. & HOD (Law)
Rajeev Gandhi Law College, Bhopal (M.P.)

स्वामी, मुद्रक एवं प्रकाशक : सुशील कुमार कुशवाहा द्वारा 'शोध चेतना', जी.एच. पब्लिकेशन, 121 शहरारा बाग, इलाहाबाद-211 003 से प्रकाशित एवं श्री विष्णु आर्ट प्रेस, 332/257, चक जीरो रोड, इलाहाबाद-3 से मुद्रित। प्रधान संपादक : सुशील कुमार कुशवाहा, (M) 09329225173, 9532481205, E-mail : ghpublication@gmail.com website : www.ghpublication.com

जनरल में प्रस्तुत विचार और तथ्य लेखक का है, जिसके विषय में प्रकाशक, मुद्रक एवं सम्पादक मंडल सहमत हो, आवश्यक नहीं। सभी विवादों का न्यायिक क्षेत्र इलाहाबाद रहेगा।

ISSN : 2350-0441

विशेष आवश्यक सूचना

आपको सूचित करते हुए हमें हर्ष की प्रतीति हो रही है कि
हमारी त्रैमासिक, अन्तर्राष्ट्रीय पंजीकृत पत्रिका

''शोध-चेतना''

में प्रकाशित माननीय लेखकों के शोध-पत्र विभिन्न विश्वविद्यालयों
(केन्द्रीय/राज्य), महाविद्यालयों (शासकीय/अशासकीय),
शैक्षणिक संस्थानों एवं अन्य बौद्धिक मठों, आश्रमों/शोध-संस्थानों
के पुस्तकालयों में अनवरत् रूप से भेजी जा रही है जिससे,
इन शोध दृष्टियों से
'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय'
का
उद्देश्य पूर्ण हो सके।

...प्रकाशक

आज ही आदेश करें।

अप्रकाशित मौलिक शोध-पत्र, शोध प्रबन्ध, पुस्तक समीक्षा एवं
पुस्तकों के प्रकाशन हेतु सम्पर्क करें :-

जी.एच. पब्लिकेशन

121, शहराराबाग, इलाहाबाद-211 003
e-mail : ghpublication@gmail.com
Website : www.ghpublication.com
Ph. : 0532-2563028 (M) 09329225173

सम्पादकीय

'भारत जगद्गुरु था' यह वाक्य कहावत की तरह प्रचलित हो गया है। आज इक्कीसवी सदी में होने वाली प्रायः सभी शोध–संगोष्ठियों में, कार्यशालाओं में, बड़ी–बड़ी सभाओं में जहाँ अत्यधिक जनसम्मर्द रहता है अपने आप को गौरवान्वित महसूस करने के लिए इस वाक्य का प्रयोग किया जाता है। किन्तु क्या यही आलाप–प्रलाप निरन्तर जारी किये रहना आवश्यक है ? क्या इसके लिए यह विचार करना आवश्यक नहीं कि, भारत पुनः विश्वगुरु बन जाय अथवा बन गया है ऐसा प्रामाणित हो जाय। बड़े दुःख के साथ कहना पड़ रहा है कि, जो भारत को विश्वशिष्य बनाने में नहा धोकर पीछे पड़े हैं वहीं विश्वगुरु बनाने की बाते करते पाये जाते हैं। अन्वेषण द्वारा यह पाया जाता है कि, यदि भारतीय विद्वान ने सामान्य से थोड़ा अधिक श्रम कर लिया और समाज में अपनी पहचान बना ली है तो उसे भारत अच्छा ही नहीं लगता। वह भारतीय विद्याओं का प्रचारक बनकर विदेश की यात्रा नहीं करना चाहता अतिपु मोटी रोजी–रोटी के लिए मातृभूमि का परित्याग करना चाहता है और साथ में अपने को विशिष्ट बताने की मन्शा भी साथ में संजोये हुए जाता है। यद्यपि यह सत्य है तथापि भारतीय विद्वान ही इसके लिए पूर्णतः दोषी नहीं ठहराये जा सकते। क्योंकि, विद्या की प्राप्ति ही सर्वविध अभ्युदय के लिए होती है। इसके लिए भारतीय जननायकों का भी उतना ही दायित्त्व है कि, वे भारतीय मेधा को भारत से पलायित होने से रोकें।

दूसरी सबसे बड़ी बात जो भारत को विश्वगुरु बनाने में बाधा बनी हुई है वह है विदेशी भाषा के प्रति अन्धा प्रेम। आज रि सर्च की बात की जाती है। रि सर्च का तात्पर्य उस सर्च से है जो बहुत पहले की जा चुकी है। भारत में आज से हजारों लाखों वर्ष पूर्व अनगिनत खोजें की गई हैं तथा उन किये गये शोधों को भारत की प्राचीनतम भाषा संस्कृत में निबद्ध किया गया है। आधुनिक भारतीय शोधार्थी संस्कृत की महत्ता और उसके वाचनशक्ति से कोशों दूर हैं फिर रि सर्च कहां रही। उन्हें रि सर्च के नाम पर पांच छः प्रष्ठ भरने के लिए विदेशी विद्वानों का मुख ताकने के सिवाय कुछ बचता ही नही जबकि, शोध के लिए भारत से विस्तृत विश्व में साहित्यिक पृष्ठभूमि ही नहीं है।

भारतीय शोधार्थियों/अनुसन्धाताओं से करवद्ध प्रार्थना है कि, यदि विश्वगुरु बनना है तो परमुखापेक्षी होने की आदत का सर्वथा त्याग करने में उद्यत हो जायें तथा आत्मगौरव जगायें। भारत की नवीन मेध ाा जिस दिन प्राचीन मेधा से अपने आप को जोड़कर खड़ी हो जायेगी उसदिन विश्व में उसका कोई सानी नहीं बचेगा तथा भारत विश्वगुरु हो जायेगा।

डॉ. सूर्यनारायण गौतम

 ISSN : 2350-0441

अनुक्रम

1. **Growth and yield patterns in chickpea cv. P-391 grown under fly ash stress in root-knot nematode and root-nodule bacterial presence** **9-17**
Dinesh Kumar Singh

2. **Ecology and Tourism** **18-21**
Dr. Smt. Asha Gupta
Mrs. Laxmi Sitani

3. **Rheumatoid Arthritis Doubts and Originality** **22-23**
Dr. Vivek Srivastava

4. **An Impact of Terrorism on Textile Trade** **24-27**
Nidhi Yadav

5. **Synthesis, Characterization and anti-microbial investigations of Cu(II) Complex of a New Ligand, Bis (thiotrithiazylcarbamide)** **28-33**
Anjul Singh

6. **Releases of Predators (Coccinellidae) as Biological Control Agents of Onion Thrips (Thripstabaci) in Experimental Net House Condition** **34-38**
Neetu Singh

7. **Feeding Practices and Nutritional Status of Kol Tribal Children Under 5 Years of Age in Rewa Divesion, Madhya Pradesh** **39-46**
Dr. Gokul Prasad Dwivedi
Vijay Shankar Chodhari

8. **Growth Behaviour and Dry matter production of Wrightia tinctoria** **47-52**
Dr. Narayan Dutt Tripathi

9. **Effect of diets containing oilseed meals (replacement of fishmeal with soyabean meal) on growth and body composition of Rohu, Labeo rohita (Hamilton)** **53-64**
Dr.Suhail Ahmad Chadoo

10. **Polygraphic Test/Lie detector Test : As Overview** **65-67**
Dr. Neelesh Sharma

11. **'Synthesis, Characterization and Biological Activity of an Adduct Derived from Thiotrithiazyl Chloride and Urea** **68-72**
Anjul Singh

12. **मानव जीवन में मानवीय संवेदना की महत्ता** **73-76**
डॉ. उमाकान्त मिश्र

13. **पर्यावरण का मानव समाज पर प्रभाव** **77-78**
डॉ. कमल प्रताप सिंह परमार
डॉ. रश्मि पटैरिया

14. **प्राथमिक शिक्षा में पर्यावरणीय शिक्षा की भूमिका** **79-83**
चारूल सिंह

15. **पुस्तकालयों में सूचना सेवाओं की स्थिति : म.प्र. उच्च शिक्षा के सन्दर्भ में** **84-87**
तेज प्रताप सिंह

16. **''भारतीय साहित्य एवं संस्कृति''** **88-90**
डॉ. संध्या कुमारी

17. **प्राचीन भारत में सामन्तवाद सम्बन्धी विचारधारा** **91-94**
डॉ. कुन्ती साहू

18. **महाराज भर्तृहरि की विभिन्न धारणाएँ** **95-101**
डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद चतुर्वेदी
बाला प्रसाद विश्वकर्मा

19. **रीवा एवं सतना जिले के शासकीय महाविद्यालयों के पुस्तकालय स्वचलन की स्थिति का विश्लेषणात्मक अध्ययन** **102-104**
श्रीमती कमलेश कुशवाहा

20. विकास क्षेत्र में आपदा से बढ़ती बाधाएँ **105-110**
डॉ. एस.पी. पाण्डेय, डॉ. मनोज द्विवेदी

21. ''राजेन्द्र यादव और मन्नू भण्डारी के कथा साहित्य में मध्यवर्गीय चेतना'' **111-114**
डॉ. गीता तिवारी

22. जननी सुरक्षा योजना : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण **115-118**
अंशुमाला सिंह

23. ''कालिदासकालीन साहित्य में शास्त्रीय संदर्भ'' **119-122**
डॉ. विनोद कुमार त्रिपाठी

24. भारतीय समाज में वृद्धों की स्थिति **123-126**
श्रीमती ऋतु सिंह परिहार, डॉ. अंशू केशरवानी

25. यजुर्वेदेऽग्निपरकशब्दानां निर्वचनादिविवेचनम् **127-132**
डॉ. सूर्यनारायण गौतमः 'वेदाचार्यः'

26. भारत में हरित क्रांति के प्रभाव एवं दूसरी हरित क्रांति की आवश्यकता **133-137**
शिव प्रसाद विश्वकर्मा, एस. पी. वर्मा

27. **Intellectual Proper Right in Developing Countries** **138-143**
Dr. Sheetla Prasad Verma

28. **Education and Happiness** **144-147**
Dr. Sheetla Prasad Verma

29. ग्रामीण अर्थव्यवस्था एवं स्वयं सहायता समूह **148-153**
डॉ. जे.पी. सिंह

30. भारतीय समाज व संस्कृति में स्त्रियों की स्थिति **154-157**
डॉ. आशा देवी

31. **English Version of Family Adjustment Inventory** **158-168**
Dr. Karuna Anand

32. भारतीय संगीत में महिला कलाकारों का योगदान **169-173**
डॉ. सुदेश कुमारी

33. हिन्दू समाज की संस्कारपूर्ण संरचना का पल्लवन : संगीतात्मक रूप में **174-178**
डॉ. सोनिया बिन्द्रा

 ISSN : 2350-0441

इस भौतिक जगत में हर व्यक्ति को
किसी-न-किसी प्रकार के
कर्म में
प्रवृत्त होना पड़ता है।
किन्तु
ये कर्म ही
उसे इस जगत से
बाँधते या मुक्त कराते हैं।
निष्काम भाव से परमेश्वर की प्रसन्नता
के लिए कर्म करने से
मनुष्य कर्म के नियम से
छूट सकता है और आत्मा
तथा परमेश्वर विषयक
दिव्य ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

कर्मयोग-गीता

SHODH CHETNA – YEAR-3 ISSN : 2350-0441
(JAN. TO MARCH, 2017) VOL. 1

GROWTH AND YIELD PATTERNS IN CHICKPEA CV. P-391 GROWN UNDER FLY ASH STRESS IN ROOT-KNOT NEMATODE AND ROOT-NODULE BACTERIAL PRESENCE

❐ **Dinesh Kumar Singh***
❐ **Kamal Singh****

ABSTRACT

Growth(length, fresh and dry weight of shoot and root) and yield (flowering and fruiting) including leaf pigment (chlorophyll a, b and total and carotenoid and seed) protein contents of chickpea cv. P-391 increased at lower levels (20% and 40%) of fly ash but reverse happened at higher levels (80% and 100%).Soil replaced by 60% fly ash fostered the chickpeas which showed suppression in growth and yield with respect to 40% fly ash grown chickpeas but was found at par with fly ash untreated grown chickpea plants. Maximum growth occurred to the plants grown in 40% fly ash.However, nitrogen contents of chickpea were suppressed progressively with gradual increasing levels of fly ash. Moreover, all referred as above growth and yield patterns were better in Rhizobium leguminosaruminoculated chickpeas compared to Meloidogyne incognitainoculated ones,particularly at 20% and 40% fly ash levels. The positive effects of R. leguminoarumon growth patterns were masked to a greater extent by M. incognitaparticularly at initial fly ash level. Although such effects of R. leguminosarum and/or M. incognitawere found insignificant as the difference in different treatments were found negligible at higher levels of fly ash stresses.

Key words :Root-knot nematode, Rhizobium leguminosarum, fly ash, growth, yield, protein

* Section of Environmental Nematology, Department of Botany, E-mail : singhdk.singh955@gmail.com*
** D.S.College, Aligarh (Dr. B.R.A. University, Agra) India

Introduction

Fly ash, an important particulate air pollutant, is a major problem in the developing countries like ours and is mainly produced by the thermal power plants and other industries using coal as fuel. Depending on the level of its (fly ash) accumulation in soil, growing plants responded differently to different fly ash levels. Growth pattern with above reference could not be analysed in detail in presence of root-knot nematode and/ or root-nodule bacteria particularly in plants growing under the fly ash stress. However, some efforts have been made at different research stations with referred to as above work (Singh et al., 2010, Singh and Prakash, 2008, Singh and Singh, 2013; Prakash and Singh, 2016). Still there are some lacunae left to make the growth patterns settable and systematizablein the presence of nematode and/or bacteria of above reference type. This aspect has, however, become much fabulous as the chickpeas have been grown with or without fly ash stresses apart from the presence of above micro-organism.

Materials and Methods

The fly ash was collected from the thermal power plant (situated at Kasimpur, Aligarh, India) and brought to the laboratory in gunny bags after proper tagging. This ash was mixed with already autoclaved field soil (68% sand 24% silt, 8% clay and 3% organic matter) to obtain different fly ash levels. Such obtained mixtures were filled in clay pots having 30 cm as basal diameter. Seeds of chickpeas were dipped in 0.01% mercuric chloride in order to get them surface sterilized. Such seeds were sown in the clay pots and inoculated by root nodule bacteria (R. leguminosarum) immediately after the sowing. The seeds were germinated within a week and thinned to one to maintain the healthy seedling per pot. Three-week-oldchickpea seedlings were inoculated by freshly hatched second stage juveniles (J2) of M. incognita. Micropipette controller was used for J2 inoculation in pots. The J2 suspension was inoculated in the hole made near the potted plant so that the roots of chickpea could ingress them through the chance factor. The following were control and fly ash the treatments-

Control Treatments

Treatments without fly ash were considered as controls. The total amount of soil (with or without fly ash) was maintained as 4.0 kg (= 4000 gm) per pot. The detail of control treatment can be described as follows-

Plant (=P) + 4.0 kg (= 4000 gm) field soil (fs)

P + 4.0 kg fs + R. leguminosarum (= RL)

P + 4.0 kg fs + M. incognita (MI)

P + 4.0 kg fs + RL + MI

Fly ash treatment

P + 20% fa = P + 800 g fly ash (fa) + 3200 g fs

P + 20% fa + RL

P + 20% fa + MI

P + 20% fa + RL + MI

P + 40% fa = P + 1600 mg fa + 2400 gmfs

P + 40% fa + RL

P + 40% fa + MI

P + 40% fa + RL + MI

P + 60% fa = P + 2400 mg fa + 1600 gmfs

P + 60% fa + RL
P + 60% fa + MI
P + 60% fa + RL + MI
P + 80% fa = P + 3200 mg fa + 800 gmfs
P + 80% fa + RL
P + 80% fa + MI
P + 80% fa + RL + MI
P + 100% fa = P + 4000 mg fa + 0 gmfs
P + 100% fa + RL
P + 100% fa + MI
P + 810% fa + RL + MI

Each treatment was replicated five times. Termination of the experiment was done 120 days after the sowing.Lengths, fresh and dry weights of shoot and root were determined through standard procedure. Counting of flowers and fruits was done after each 10 daysstarting from their setting onward and an average was calculated by dividing the total summated values by the number of replicates. Chlorophyll (a, b and total) and carotenoid contents of the chickpea leaves were calculated by using the MacKinney (1941) method and MacLachlan and Zalik (1963) method, respectively. Likewise, protein (soluble, insoluble and total protein) of chickpea seeds was evaluated through Lowry et al (1951) method and that of leaf nitrogen contents by Linder (1944) method.

Data analysis was done through two factorial method as suggested by Fischer (1950). To generate two factors, treatments with different fly ash levels were considered as factor one (designated as F1) and that of with root-nodule bacteria and/or root-knot nematode were considered as factor two (designated as F2). CD for these two factors was evaluated separately for F1 and F2 at P = 0.05%. Their interactive CD (F1 x F2) was also determined along side.

Result and Discussion

Fly ash variably affected the plant growth (length, fresh and dry weights of shoot and root), yield (flowering and fruiting), leaf pigments (chlorophyll a, b and total and carotenoids), seed proteins (soluble, insoluble and total) and nitrogen contents of chickpea leaves. Chickpea plants showed enhanced plant growth and yield in 20 and 40% fly ash amended soil (Tables 1-4). Fly ash contains some utilizable plant nutrients (Druzinaet al., 1983) thereby its addition to soil can enrich it in macro and micro-nutrients. So this can be advanced as the reason behind improved plant growth and yield through the favourable effects via improvising the metabolism (Martens and Beahm, 1978). Some physico-chemical properties such as ion exchange capacity, water holding capacity and pore size also improved (Elseewiet al., 1981) along with the neutralization of soil acidity by the 20 and 40% fly ash addition to the soil, which may ameliorate plant growth and yield. These factors mutually or individually, might have played some determinant role in improving the chickpea growth patterns along with their biomass. Chickpea leaf pigments (chlorophylls and carotenoids) and seed proteins were also recorded to be improved at 20 and 40%, being maximum at 40% level (Tables 5-7).However further increase in fly ash level suppressedthe growth and yield along with all concerns. It indicates that the changes exerted in physico-chemical properties by fly ash 40% level additions, were optimal for chick-pea fostering which is reflected in the form of improved growth, yield, leaf pigments and seed protein contents.

Chickpeas showed lesser growth and yield at higher levels (60,80 and 100%) compared to lower fly ash levels (20 and 40%). However, suppression to growth and related concerns also occurred at 60% ash level (compared to 40% ash applied grown plants) but were found at par to fly ash untreated plants. Fly ash added some organic toxic compounds such as dibenzofuran and dibenzo-p-dioxime (Helderet al., 1982) in the fly ash amended field soil. Ahigher (60,80 and 100%) fly ash levels, concentration of these substances may have exceeded the threshold limit so as to caused maximum suppressive effect on growth and yield for chickpeas. Addition of such substances beyond optimal level might have caused significant reductionsto all growth concern. These suppressive effects were compounded more at higher levels due to the high alkalinity and salt excess in the soil (Adrianoet al., 1980).So the chickpeas suffered with the maximum adversaries, as far as the different growth patterns are concerned, due to referred as above causes particularly at 80 and 100% ash amendments.

Growth patterns of chickpeasas referred to all parameters were better in root nodule bacteria inoculated than uninoculated plants at 20 and 40% levels.However such improvement were masked significantly by M. incognitainoculations. Such results were also justified by earlier workers (Yadav and Singh, 2014) in their publications. Chick-pea plants inoculated by R.leguminosarum and M.incognitacollectively at lower fly ash treatments (20and40%), showed a significant enhancement in all the growth parameters compared to the root-nodule bacteria + root-knot nematode inoculated plants grown in fly ash non-amended soils. Such effects were reduced at 60% fly ash level. The evaluated values of growth, and yield parameters in nematode and bacteria inoculated plants were found to differ insignificantly at 100% ash treatments. So clearly the R. leguminosarum and M. incognita were adversely impacted by higher fly ash levels particularly that of 100%. Such nullified effect of nematode and bacteria on different growth pattern can be attributed to accumulation of organic and inorganic substances beyond the bearable and threshold limit for chickpeas. Reports are also available with regard to as suppressive effects of such compounds on microbial activities (Wong and Wong, 1986) such as the nematodes and/or bacteria (Yadav and Singh, 2014).

Nitrogen content of chick-pea leaves were progressively decreased with all level of fly ash increase (Table 8). Gradual reductions in chickpea leaf nitrogen content with increasing fly ash proportion can be correlated to the absence of nitrogen in the fly ash (Mishra and Shukla, 1986). So gradual increase in fly ash proportion means the progressive decrease in nitrogen contents in the field soil.Presence of heavy metals (Eiceman and Vandivar, 1983) in fly ash is claimed to be responsible for growth reduction (Khan et al., 1988). So, all concerned growth and yield parameters, were suffered adversely due to poor nitrogen availability in the ongoing field soil amendments by fly ash.

Reductionsof nitrogen contentsin chickpea leaves were comparatively less in presence of root-nodule bacteria. However,

reverse happened in M. incognitainoculated chickpeas. Concomitant inoculation of both root-nodule bacteria and root-knot nematode could cause more reductionsto nitrogen contentsof chickpea seeds than R. leguminosaruminoculated ones. Earlier reports also showed the gradual reduction in nitrogen contents with progressive increase in the fly ash concentration (Singh et al., 1994).

The study showed that fly ash amendment of soil was beneficial for different considered growth patterns in chickpeas at 20 and 40%, being maximum at 40% level, in either M. incognita and/or R. leguminosarumpresence. At these initial fly ash levels, the beneficial effects were masked by M. incognita but reverse happened due to root-nodule bacteria presence. Fly ash at 80 and 100% levels, suppressed the positive effects of R. leguminosarumon chickpea growth pattern significantly, andthe later were further antagonized by the M. incognita presence.

References

Adriano, D.C., A.L. Page, A.L. Elseewi, A.C. Chang and J.A. Straughan, 1980. Utilization and disposal of fly ash and other coal residues in terrestrial ecosystems: A review. J. Environ. Qual. 9: 333-344.

Druzina, V.D., E.D. Miroshracheuko and O.D. Chertov, 1983.Effect of industrial pollution on nitrogen and ash content in meadow phyto-coenotic plants.BotanizhnylZhurnal. 68: 1853.

Eiceman, G.A. and V.J. Vandiver, 1983. Absorption of polycyclic aromatic hydrocarbons on fly ash from a municipal incinerator and a coal fired power plant. Atmos Environ. 15: 247-259.

Elseewi, A.A., S.R. Grimm, A.L. Page and I.R. Straughan. 1981. Boron-enrichment of plants and soils trated with coal ash. J. Plant Nutr. 3: 409-427.

Fischer, R.A. 1950. Statistical Methods for Research Workers (11thed.) Oliver and Boyd, Edinburgh.

Helder, T., E. Stutterheim and K. Olie. 1982. The toxicity and toxic potential of fly ash from municipal incinerators assessed by means of a fish early life stage test. Chemosphere 11: 965-972.

Jai Prakash and Singh K. 2016. Growth performance of fly ash stressed tomato plants in presence of Meloidogyneincongita. In: Proceedings of CAN-SARC International Conference, New Delhi: India, ISBN: 978-93-86083-86-9, pp. 01-06.

Khan, M.R. and M.W. Khan 1996.The effect of fly ash on plant growth and yield of tomato.Environ. Pollution 92: 105-111.

Khan, M.R., S.K. Singh and M.W. Khan. 1988. Response of lentil to cobalt as soil pollutant. Ann. Appl. Biol. (Supplement) TAC-9: 103-104.

Linder, R.C. 1944. Rapid analytical methods for some of the more common inorganic constituents of plant tissue.Plant Physiol. 19: 76-89.

Lowry, O.H., M.J. Rosebrough, A.L. Farr and R.J. Randoll. 1951. Protein measurement with folin phenol reagent. J. Biol. Chem. 193: 265-275.

Mackinney, G. 1941. Absorption of light of chlorophyll solution.J Biol. Chem. 140: 315-322.

Maclachlan, S and S Zalik. 1963. Plastid structure, chlorophyll concentration and free amino acid composition of chlorophyll mutant of barley. Can. J. Bot. 41: 1053-1062.

Martens, D.C. and B.R. Beahm. 1978. Chemical effects on plant growth of fly ash incorporation into soil. In: Environmental Chemistry and Cycling Processes. EDRA, Symp.

Ser. Conf. 760429, U.S. Dept. Commerce, Springfield, V.A., USA.

Mishra, L.C. and K.N. Shukla 1986.Effects of fly ash deposition on growth metabolism and dry matter production of maize and soyabeanEnviron.Pollution. 42: 1-13.

Singh, D.K. and K. Singh. 2013. Root-knot nematode impact on some leaf epidermal characters of fly ash stressed chickpeas. Nature &Environment, 18(1&2): 81-88.

Singh, K., M.W. Khan and M.R. Khan. 1994. Growth and root-knot disease of soyabean under the stress of fly ash. In: Emerging Technologies in Environmental Conservation National Symposium (Abs), JamiaHamdard and Eco-Transformation Centre, New Delhi, India.

Singh, K., Khan, A.A., Rizvi, I.R. and Saquib, M. 2010. Morphological and biochemical responses of cowpea (cv. PusaBarsati) grown on fly ash amended soil in presence and absence of Meloidogynejavanica and Rhizobium leguminosarum. Ecoprint, 17: 17-22.

Singh, K. and J. Prakash 2008. Impact assessment of root-knot nematode on fly ash stressed plants. National Symposium on Environment of Sustainable Development, Department of Botany, Meerut College Meerut (Ch. Charan Singh University, Meerut), p. 46.

Wong, M.H. and J.W.C. Wong. 1986. Effects of fly ash on soil microbial activity. Environ. Pollution 40: 127-144.

Yadav, D. and Singh, K. 2014. Individual and combined effects of SO2 and O3 on root-knot nematode multiplication.Indian Journal of Science, 3(2): 57-64.

Yadav, D. and Singh, K. 2014. Effect of SO2 and/or O3 on root-knot nematode morphometrics which parasitizes greengram.Journal of Indian Botanical Society, 93(3 & 4): 51-58.

Table 1. Effect of fly ash (P) on length of shoot and root of chickpea in presence and absence of *M. incognita* (Mi) and *R. leguminosarum* (R)

Treatments	Shoot length (cm)							Root length (cm)						
	0	20	40	60	80	100	MM	0	20	40	60	80	100	MM
P	30.30	36.25*	39.68*	32.70*	28.28^{ns}	24.96^{ns}	32.03	12.26	15.75*	20.95*	13.62*	10.95^{ns}	8.65^{ns}	13.70
P+R	39.17*	43.18*	46.32*	40.62*	34.78*	29.32^{ns}	38.90$^{@}$	16.85*	19.35*	24.60*	17.32*	14.86*	12.85^{ns}	17.64$^{@}$
P+Mi	25.72^{ns}	30.65^{ns}	35.74*	28.32^{ns}	25.36^{ns}	23.74^{ns}	28.26$^{@}$	9.45^{ns}	13.70*	17.25*	11.60^{ns}	8.40^{ns}	6.90^{ns}	11.22$^{@}$
P+R+Mi	29.00^{ns}	34.58*	39.36*	31.89*	27.74^{ns}	24.86^{ns}	31.24$^{@}$	14.60*	16.30*	20.50*	14.80*	11.87^{ns}	9.55^{ns}	14.60$^{@}$
MM	31.05	36.17$^{\#}$	40.28$^{\#}$	33.38$^{\#}$	29.04$^{\#}$	25.72$^{\#}$		13.29	16.28$^{\#}$	20.83$^{\#}$	14.34$^{\#}$	11.52$^{\#}$	9.49$^{\#}$	

CD at P=0.05, Treat = 0.654; Fly ash = 0.534; Treat x Fly ash = 1.308 Treat = 0.305, Fly ash = 0.249; Treat x Fly ash = 0.611

Table 2. Effect of fly ash (P) on fresh weight of shoot and root of chickpea in presence and absence of *M. incognita* (Mi) and *R. leguminosarum* (R)

Treatments	Shoot fresh weight (g)							Root fresh weight (g)						
	0	20	40	60	80	100	MM	0	20	40	60	80	100	MM
P	35.21	38.47*	40.19*	36.47^{ns}	33.70^{ns}	30.54^{ns}	35.76	23.90	27.74*	25.48*	24.21^{ns}	23.20^{ns}	22.84^{ns}	24.56
P+R	47.72*	49.40*	50.24*	43.04*	42.74*	33.04^{ns}	45.20$^{@}$	28.67*	29.04*	30.47*	28.87*	27.90*	24.10^{ns}	28.18$^{@}$
P+Mi	28.75^{ns}	30.67^{ns}	33.79^{ns}	29.17^{ns}	28.70^{ns}	28.54^{ns}	29.94$^{@}$	21.37^{ns}	23.42^{ns}	24.22^{ns}	21.94^{ns}	21.24^{ns}	21.80^{ns}	22.33$^{@}$
P+R+Mi	39.20*	40.17*	40.98*	33.87*	35.72^{ns}	32.14^{ns}	37.85$^{@}$	26.12*	26.20*	26.68*	26.22*	25.04*	24.17^{ns}	25.74$^{@}$
MM	37.72	39.68$^{\#}$	41.30$^{\#}$	38.14^{ns}	35.22$^{\#}$	31.07$^{\#}$		25.02	26.60$^{\#}$	26.71$^{\#}$	25.31^{ns}	24.35$^{\#}$	23.23$^{\#}$	

CD at P=0.05, Treat = 0.746; Fly ash = 0.609; Treat x Fly ash = 1.492 Treat = 0.486, Fly ash = 0.397; Treat x Fly ash = 0.973

Table 3. Effect of fly ash (P) on dry weight of shoot and root of chickpea in presence and absence of *M. incognita* (Mi) and *R. leguminosarum* (R)

Treatments	Shoot dry weight (g)							Root dry weight (g)						
	0	20	40	60	80	100	MM	0	20	40	60	80	100	MM
P	9.18	10.10*	11.47*	10.14*	9.04^{ns}	8.98^{ns}	9.82	5.98	6.77*	7.54*	6.04^{ns}	5.77^{ns}	5.12^{ns}	6.20
P+R	11.93*	12.94*	13.88*	12.17*	11.03*	9.67*	11.94$^{@}$	8.23*	9.17*	10.15*	8.94*	7.98*	6.74*	8.54$^{@}$
P+Mi	7.12^{ns}	8.87^{ns}	9.07^{ns}	10.04*	6.99^{ns}	5.74^{ns}	8.14$^{@}$	4.10^{ns}	5.10^{ns}	6.04^{ns}	4.97^{ns}	4.01^{ns}	4.00^{ns}	4.70$^{@}$
P+R+Mi	10.86*	10.97*	11.98*	10.09*	9.72*	8.82^{ns}	10.41$^{@}$	7.14*	7.82*	8.47*	7.01*	6.90*	6.25^{ns}	7.27$^{@}$
MM	9.77	10.72$^{\#}$	11.60$^{\#}$	10.61$^{\#}$	9.20$^{\#}$	8.55$^{\#}$		6.36	7.22$^{\#}$	8.05$^{\#}$	6.74$^{\#}$	6.17$^{\#}$	5.53$^{\#}$	

CD at P=0.05, Treat = 0.201; Fly ash = 0.164; Treat x Fly ash = 0.402 Treat = 0.138, Fly ash = 0.113; Treat x Fly ash = 0.276

Table 4. Effect of fly ash (P) on number of flowering and fruiting of chickpea in presence and absence of *M. incognita* (Mi) and *R. leguminosarum* (R)

Treatments	Flowering							Fruiting						
	0	20	40	60	80	100	MM	0	20	40	60	80	100	MM
P	25.10	30.20*	35.40*	27.25*	23.40^{ns}	18.70^{ns}	26.68	22.15	2730*	32.25*	26.50*	20.70^{ns}	12.50^{ns}	23.57
P+R	32.20*	38.15*	48.05*	35.06*	28.43*	21.30^{ns}	33.87$^{@}$	30.65*	3620*	45.15*	33.45*	25.17*	16.80^{ns}	31.24$^{@}$
P+Mi	22.40^{ns}	25.40^{ns}	30.12*	23.13^{ns}	20.20^{ns}	16.13^{ns}	22.91$^{@}$	20.75^{ns}	23.12^{ns}	27.40*	21.20^{ns}	16.70^{ns}	10.75^{ns}	19.99$^{@}$
P+R+Mi	26.45*	29.06*	35.05*	28.23*	24.20^{ns}	19.20^{ns}	27.20^{ns}	24.60*	2700*	33.12*	26.18*	20.23^{ns}	13.65^{ns}	24.13$^{@}$
MM	26.54	30.70$^{\#}$	37.41$^{\#}$	28.42$^{\#}$	24.06$^{\#}$	18.85$^{\#}$		24.54	2841$^{\#}$	34.48$^{\#}$	26.83$^{\#}$	20.70$^{\#}$	13.43$^{\#}$	

CD at P=0.05, Treat = 0.576; Fly ash = 0.470; Treat x Fly ash = 1.152   Treat = 0.538, Fly ash = 0.439; Treat x Fly ash = 1.076

Table 5. Effect of fly ash (P) on chlorophyll a and b of chickpea in presence and absence of *M. incognita* (Mi) and *R. leguminosarum* (R)

Treatments	Chlorophyll a (mg/g)							Chlorophyll b (mg/g)						
	0	20	40	60	80	100	MM	0	20	40	60	80	100	MM
P	0.994	1.052*	1252*	1.120*	0.934^{ns}	0.823^{ns}	1.029	0.857	0.923*	1.142*	0.830^{ns}	0.798^{ns}	0.683^{ns}	0.872
P+R	1.134*	1.502*	1577*	1.227*	1.008^{ns}	0.829^{ns}	1213$^{@}$	0.984*	1.192*	1.322*	1.004*	0.933*	0.704^{ns}	1.023$^{@}$
P+Mi	0.728^{ns}	0.907^{ns}	1.057*	0.823^{ns}	0.775^{ns}	0.765^{ns}	0.843$^{@}$	0.639^{ns}	0.723^{ns}	1.004*	0.704^{ns}	0.620^{ns}	0.620^{ns}	0.718$^{@}$
P+R+Mi	0.897^{ns}	0.456^{ns}	1214*	0.910^{ns}	0.899^{ns}	0.833^{ns}	0.868$^{@}$	0.844^{ns}	0.921*	1.140*	0.383^{ns}	0.794^{ns}	0.623^{ns}	0.868^{ns}
MM	0.938	0.979$^{\#}$	1275$^{\#}$	1.020$^{\#}$	0.904$^{\#}$	0.813$^{\#}$		0.831	0.940$^{\#}$	1.152$^{\#}$	0.855$^{\#}$	0.786$^{\#}$	0.658$^{\#}$	

CD at P=0.05, Treat = 83.876; Fly ash = 68.485; Treat x Fly ash = 167.752   Treat = 0.042, Fly ash = 0.034; Treat x Fly ash = 0.084

Table 6. Effect of fly ash (P) on total chlorophyll and carotenoid content of leaves of chickpea in presence and absence of *M. incognita* (Mi) and *R. leguminosarum* (R)

Treatments	Total chlorophyll (mg/g)							Carotenoid (mg/g)						
	0	20	40	60	80	100	MM	0	20	40	60	80	100	MM
P	1.950	2.154*	2433*	2.133*	2.004^{ns}	1.487^{ns}	2.027	0.493	0.507^{ns}	0.712*	0.490^{ns}	0.429^{ns}	0.395^{ns}	0.504
P+R	2.217*	2.738*	2938*	2.337*	2.003^{ns}	1.452^{ns}	2.281$^{@}$	0.537*	0.612*	0.699*	0.580*	0.510^{ns}	0.419^{ns}	0.560$^{@}$
P+Mi	1.472^{ns}	1.732^{ns}	2154*	1.944^{ns}	1.437^{ns}	1.451^{ns}	1.698$^{@}$	0.386^{ns}	0.427^{ns}	0.511^{ns}	0.396^{ns}	0.362^{ns}	0.320^{ns}	0.400$^{@}$
P+R+Mi	1.841^{ns}	2.124*	2430*	2.124*	1.635^{ns}	1.437^{ns}	1.932$^{@}$	0.419^{ns}	0.502^{ns}	0.701*	0.421^{ns}	0.419^{ns}	0.397^{ns}	0.477$^{@}$
MM	1.870	2.187$^{\#}$	2489$^{\#}$	2.135$^{\#}$	1.770$^{\#}$	1.457$^{\#}$		0.459	0.512$^{\#}$	0.656$^{\#}$	0.472$^{\#}$	0.430$^{\#}$	0.383$^{\#}$	

CD at P=0.05, Treat = 0.0403 Fly ash = 0.0329; Treat x Fly ash = 0.0805   Treat = 0.0099, Fly ash = 0.0081; Treat x Fly ash = 0.0198

Table 7. Effect of fly ash (P) on soluble and insoluble protein contents of seeds of chickpea in presence and absence of *M. incognita* (Mi) and *R. leguminosarum* (R)

Treatments	Soluble protein (%)							Insoluble protein (%)						
	0	20	40	60	80	100	MM	0	20	40	60	80	100	MM
P	13.19	13.74*	13.87*	13.16^{ns}	12.84^{ns}	12.08^{ns}	13.15	15.62	16.12^{ns}	16.94*	15.68^{ns}	14.60^{ns}	13.98^{ns}	15.49
P + R	14.24*	14.36*	14.57*	14.12*	13.93*	12.10^{ns}	13.89$^{@}$	16.67*	16.96*	17.38*	16.70*	15.14^{ns}	13.87^{ns}	16.12$^{@}$
P +Mi	12.79^{ns}	13.04^{ns}	13.53^{ns}	12.82^{ns}	12.07^{ns}	12.02^{ns}	12.71$^{@}$	14.91^{ns}	15.90^{ns}	16.14^{ns}	14.97^{ns}	14.21^{ns}	13.83^{ns}	14.99$^{@}$
P + R + Mi	13.04^{ns}	13.00^{ns}	13.21^{ns}	13.08^{ns}	12.80^{ns}	12.10^{ns}	12.87$^{@}$	15.66^{ns}	16.43*	17.99*	15.69^{ns}	14.58^{ns}	13.90^{ns}	15.71^{ns}
MM	13.32	13.54$^{\#}$	13.80$^{\#}$	13.30^{ns}	12.91$^{\#}$	12.08$^{\#}$		15.72	16.35$^{\#}$	17.1[illegible]$^{\#}$	15.76^{ns}	14.63$^{\#}$	13.90$^{\#}$	

CD at P=0.05, Treat = 0.251 Fly ash = 0.205 Treat x Fly ash = 0.503   Treat = 0.298, Fly ash = 0.244; Treat x Fly ash = 0.597

Table 8. Effect of fly ash (P) on total protein content of seeds and nitrogen content of leaves of chickpea in presence and absence of *M. incognita* (Mi) and *R. leguminosarum* (R)

Treatments	Total protein (%)							Nitrogen (%)						
	0	20	40	60	80	100	MM	0	20	40	60	80	100	MM
P	28.81	29.86^{ns}	30.81*	28.84^{ns}	27.44^{ns}	26.06^{ns}	28.64	4.46	3.96^{ns}	3.16^{ns}	2.96^{ns}	2.66^{ns}	2.48^{ns}	3.28
P + R	30.91*	31.32*	31.95*	30.82*	29.07^{ns}	25.97^{ns}	30.01$^{@}$	5.91*	4.91*	4.03^{ns}	3.92^{ns}	3.09^{ns}	2.57^{ns}	4.07$^{@}$
P +Mi	27.70^{ns}	28.94^{ns}	29.67^{ns}	27.79^{ns}	26.28^{ns}	25.85^{ns}	27.71$^{@}$	4.33^{ns}	3.87^{ns}	3.09^{ns}	2.89^{ns}	2.59^{ns}	2.38^{ns}	3.19$^{@}$
P + R + Mi	28.70^{ns}	29.43^{ns}	31.20*	28.77^{ns}	27.38^{ns}	26.00^{ns}	28.58^{ns}	5.02*	4.12^{ns}	3.32^{ns}	3.04^{ns}	2.7[illegible]^{ns}	2.38^{ns}	3.43$^{@}$
MM	29.03	29.89$^{\#}$	30.91$^{\#}$	29.06^{ns}	27.54$^{\#}$	25.97$^{\#}$		4.93	4.22$^{\#}$	3.40$^{\#}$	3.20$^{\#}$	2.76$^{\#}$	2.45$^{\#}$	

CD at P=0.05, Treat = 0.549, Fly ash = . 0.449; Treat x Fly ash = 1.099   Treat = 0.074, Fly ash = 0.061; Treat x Fly ash = 0.149

* = data significant with 0% fly ash and at P treatment only at P = 0.05

ns = Not significant

@ = data significant within a column at P=0.05

= data significant in a raw at P =0.05

P = chickpea plant, R = *Rhizobium leguminosarum*, Mi = *Meioidogyne incogrita*

SHODH CHETNA – YEAR-3
(JAN. TO MARCH, 2017) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

ECOLOGY AND TOURISM

❑ Dr. Smt. Asha Gupta*
❑ Mrs. Laxmi Sitani**

ABSTRACT

Eco-tourism or tourism ecology is a tourism development theory *and practice that makes efficient development of different areas possible using natural and eco-social cultural resources. Eco-tourism is used as management tool for environmental and bio-diversity conservation.*

Negative impacts from tourism occur *when the level of visitor use greater than the environment's ability to cope with this use Uncontrolled tourism can put enormous Pressure on an area and lead to soil erosion, increased pollution, discharges into the sea, natural habitual loss and, increased pressure on endangered Species.*

Sidhi District is one of the district of Madhya Pradesh *situated at Baghelkhand plateau, an image of proud history and culture. The panoramic view of kaimoar, Sone valley, Plateau of Majhauli and hills of Kusumi and rich bio-diversity present in its forests evoke natural - tourism possibility.*

ECOLOGY AND TOURISM

Ecology is a branch of biology related to the study of the relationship between biotic and a biotic components of their environment. An ecosystem is a geographic area including all the living organism (human, plants, animals and micro-organism) their physical surrounding (such as soil, water, air, temp.) and the natural cycles that sustain them.

There are many environmental issues to discuss one of them is pollution. In order to control environmental pollution. the Government of India has passed the environment protection Act in 1986 to protect & improve the quality of our environmental (air, water and soil)

Air pollution primary results from burning of fossil fuel for example coal and petroleum in industries and automobiles.

* Principal, G.D.C., Sidhi
** 'Research Scholar (Education), Life Long Learning Centre, Rewa

Domestic sewage, industrial waste waters harm living organisms Municipal solid waste also create problems and must be disposed off in land fills. Radio active wastes and e-wastes require additional efforts.

Two Major **environmental issues of global nature** are increasing green house effect which is warming earth and causing depletion of ozone in the stratosphere. It may drastically change rainfall pattern and global temperature. Another ecological issue is threats to biodiversity.

Objectives of the study

1. To know the impacts of tourism on ecology.
2. To understand the concept of eco-tourism.
3. To know possibilities of eco-tourism development is Sidhi district

Method of Study :- The method of study used is systematic Data and information is collected by study of old literature on this topic. Comparative method and regional method are used to compare the present and past status of environment.

Area of the Study :- Sidhi District, a part of Baghel khand plateau is taken for the study natural splendor of Sidhi makes it a eco-tourism possibility.

3**. When a person spends more than 24 hours at a particular place for entertainment or research is called tourism :-** Tourism industry has proved to be a, beneficial industry for nation's economies. The government are trying to develop tourism business in order to boost their economies. Baghel khand has versatile colors to enhance it as "Tourist Heaven" 9 national parks, 25 sanctuaries and 10862 Km^2 protected area make it a tourist attraction. Baghelkhand plateau is also having the same splendors, There is enormous capability of historical and cultural, business wild life adventure and herbal tourism we can not survive ths without ecological and environmental thinking.

Eco-tourism or tourism ecology is a tourism development theory and practice the makes efficient development of different areas possible using natural and eco-social cultural resources. Eco-tourism is used as management tool for environmental and bio-diversity conservation.

Negative impacts from tourism occur when the level of visitor use greater than the environment's ability to cope with this use Uncontrolled tourism can put enormous Pressure on an area and lead to soil erosion, increased pollution, discharges into the sea, natural habitual loss and, increased pressure on endangered Species. Tourism industry overuses water resource for hotels, swimming pools etc. It can create great pressure on local resources like energy, food and other raw materials. Deforestation is caused in the process of infrastructure development, Tourism can cause pollution tool as any other industry such as air emission, noise , soil waste. and sewage etc.

Physical impacts are caused by tourism related land clearing and construction. the development of tourist facilities such as water supply restaurant and recreation facilities can involve sand erosion and soil erosion road and airport construction can lead to loss of wild life and deforestation.

" Physical environment is suitable and pertinently defined as the aggregate of all

external condition and influence effecting the life and development of an organism human behavior and society."

At global level tourism can become a reason for loss of bio-diversity. It interferes with essential ecological function such as species balance, soil formation and green house gas absorption. It destabilizes eco-system causing natural disaster Like flood draughts and hurricanes.

Tourism is dependent on bio-diversity so loss of bio-diversity means loss of tourism. In addition it is one of the cause of depletion of ozone layer at global level.

Eco-tourism :- **Sidhi District is one of the district of Madhya Pradesh** situated at Baghelkhand plateau, an image of proud history and culture. It forms the north-eastern boundary of the state. Sidhi is well known for its natural, historical importance and rich cultural heritage. Sidhi possesses abundant natural resources with river sone draining it and mineral deposits.

Sidhi District comprises six tehsil Gopad banas, Churhat, Rampur Naikin, Majhauli, Kusumi and Patpara Sihawal. The population of this district is 1,126,515 according to 2011 census. The panoramic view of kaimoar, Sone valley, Plateau of Majhauli and hills of Kusumi and rich bio-diversity present in its forests evoke natural - tourism possibility.

The District has historical destinations too. Caves of Mada' Have great archeological value. 'Temple of Chandreh' 50 km away from head quarter displays its ethnic beauty, may fascinate historians.

Sone Gopad and Banas rivers are flowing in this domain there is a secret passage at the meeting point of son and Gopad river, which is worth seeing.

This region has rich and varied culture heritage. Many tribes reside in the forests of Sidhi. Gond tribe is the major tribe. Their language is Gondi, Bagheli is the language spoken all over Baghelkhand and also in sidhi the cultural heritage should be displayed by developing some places as cultural villages where these specific arts, and craft, folk songs, folk dances would be focused such innovation is seen in Rajasthan at "Chokhi Dhandi " resorts. "Sidhi Lokotsaw" is a good attempt that is being practiced by local N.G.O's. Such attempts must be sponsored and encouraged by government. Recreation center is a new approach in this direction. Natural places like river valleys and used mines have been evolved into shopping centers in foreign. countries. We can also do such experiments. Adventure tourism could be promoted like tracking and other sportive activities in hills areas.

But unfortunately. Sidhi is a deserted district, not having even a railway track the means of transport here is road transport only. that is also in a very bad condition. Infrastructure is a basic need of tourism development, improvement and creation of adequate roads, water facility electricity are must. The situation of all such facilities is critical. The District is lacking hotels, restaurants and medical facilities too. thus in order to promote eco-tourism in sidhi we have to rebuilt and re-design Sidhi in the real sense. Constriction of four lane road and railway track are in process that is really good news.

Some strategies may be followed

1. Improvement and creation of adequate infrastructure.
2. Upgrading of catering and recreation facilities in the District.
3. Improvement of Transport facilities in Sidhi (Plan of railway track and construction of four lane highway is in process.)
4. Marketing of destination.
5. Promotion of arts and craft in the region.

But the concern here is that in the process of development the ecological balance must not be disturbed It ought not to be done at the cost of ecology.

Tourism caused a lot of wastage that must be disposed in a planned and controlled manner. water pollution and wastage of potable water should be checked. Deforestation and loss of bio-diversity are other concerns. They should be conserved in eco-parks and sanctuaries. Thus a parllel promotion of ecology and tourism is needed.

References

1. Rewa Rajya Darpan - page 89.
2. S.H Leavel and E.O Clark (1965) Preventive Medicine for the Doctor in his community.
3. Tourism ecology-New perspective-Dr. Devid.
4. IUCN the world conservation union 2004.
5. UNEP and UNESCO 1997-98 report.
6. World tourism org. 1998 guide for local planner authority.
7. World wild life fund (WWF)1194 Tourism concern sustainable tourism.
8. Sidhi Dairy 2011.
9. A.K Bhattacharya Eco-tourism opportunities in Madhya Pradesh.

 ISSN : 2350-0441

RHEUMATOID ARTHRITIS DOUBTS AND ORIGINALITY

❐ Dr. Vivek Srivasta*

1. Rheumatism is a single disease: This is a big mistake since there are over 120 different types of rheumatism. Also different types of this disease require different treatments since the symptoms of all these are also different.

2. Rheumatism is only for the old: this is another age-old myth since rheumatism can affect people as young as a child\

3. Rheumatism is a problem only with the joints: People believe that rheumatism is a disease of the joints and has no connection with overall health of a person. This is wrong because rheumatism makes it difficult for a person to lead a normal life. This includes difficulty to exercise, to sleep and to earn a living. Thus, the quality of a person's life is fully affected. Rheumatism can also damage skin, eyes, parts of lungs, heart and other internal organs. Also, people with rheumatism are more prone to heart diseases and type 2 diabetes.

4. There is only one single test for rheumatism: This is also concept as there is no one medical test to fully diagnose rheumatism in a person. It is seen that doctors use variety of tests to confirm rheumatism in a person. The different tests include RF test, ESR test and CRP test.

5. There is no cure for rheumatism: this is also wrong since there are many modes of treatments for different types of rheumatism. These include medicines, physiotherapy, mind body techniques, exercises and research tests,, community programs that help treat and improve the quality of life of people suffering from rheumatism.

6. People suffering from rheumatism are easily prone to get cancer: This also is not very true as the connection between rheumatism and cancer is very complicated. Experts finds it difficult to figure out what exactly of rheumatism that causes cancer, whether it's the disease, the medicines used to cure it or a combination of all these factors that raises the cancer risk.

7. People suffering from rheumatism end up being disabled: This is another myth since a person diagnosed with rheumatism today has many medicines and other treatments available to help stave off this fate. More than anything else, this thought of being disabled itself can lead to depression and anxiety. It is seen that very few people with

* Associate Professor, Govt. Ayurved College Rewa (M.P.)

rheumatism suffer serious problems which can lead them on a wheel chair temporarily. But early treatment and consistent self management can lower the risk of the problems that make it difficult to maintain independence and enjoy a fulfilling life.

8. The more number of children the more prone is to rheumatism: This is again another false story. It is true that children born to people suffering from rheumatism have a small risk of ending up with the disease but the chances of this are as low as 4%. This can be tackled by being cautious of rheumatism symptoms appearing in children so that it can be treated early itself. By not worrying about this uncertainty you can avoid unnecessary stress.

9. Rheumatism affected joints should rest most of the time: This also not true and rheumatism affected joints should need some activity everyday in order to avoid stiffness, weakness and pain. Only thing one must note is not to overdo anything. Over activity can result in pain and fatigue that may take several days to recover from. Occupational therapists advice people suffering from rheumatism n the four p's- pacing, planning, prioritizing and problem solving- to help them maintain a good balance between activity and rest.

10. Inflamed joints need joint surgery: A person suffering from rheumatism experience inflamed joints and this is not necessarily a condition requiring surgery. However, in case the inflammation is bad the doctors may advice a surgery. This depends on the severity of the swelling, and the length of the time that joints are swollen. Though joint replacement can dramatically increase mobility and decrease pain, avoiding the need for joint surgery in the first place is clearly preferable.

Refernces :

1. Harrioson's principal of Internal Medicine 14^{th} edition
2. Davidson's principle and practice of medicine 22 edition by brian walker & Nicki R Colledge 2014
3. A.P.I. Text book of Medicine 9^{th} edition by Y.P.Munjal 2012
4. Hutchinson's Clinical methods 21^{st} edition by Glynn
5. Practical Medicine by P.J.Mehta
6. Medicine by golwala

SHODH CHETNA – YEAR-3 ISSN : 2350-0441
(JAN. TO MARCH, 2017) VOL. 1

AN IMPACT OF TERRORISM ON TEXTILE TRADE

❐ Nidhi Yadav*

ABSTRACT

India is a country with full of colours. India is country of traditions, rituals, customs and cultural practices. The country reflects Art and creativity. There are many places to visit & full of heritage. The natural beauty of its states attracts the tourist. Tourism incorporates growth of economy in India. Indian textiles are one of the reasons which grasp the tourist's attention. They are lover of Indian traditional art work and Indian handlooms. The textile and apparel industry is one of the leading segments of the Indian economy and a largest source of foreign exchange earnings for India. Policies, tariffs and other market access are barriers of impending growth in trade and investments. Terrorism increasingly poses risks to the international activities of the firm. It involves the threat or violence to attain the political goals. International firms respond to the effects or threats of terrorism. Results suggest that most firms are largely indifferent about and unprepared for terrorism and other major threats. National and local government can play a key role in rapid restoring confidence in economy by making some policies to reduce terrorism effects.

INTRODUCTION

India is one of the world's oldest civilization and the populated countries in the world. There are several cultures in the Indian history. India is the birthplace of all cultures like Hinduism, Jainism, Buddhism, and Sikhism collectively known as Indian religions. India is one of the most religious, ethnically diverse nations in the world. Religions play a central role in an individual life. India is a colourful and multi religious country. It was monitored that India is a country with full of arts, creativity as well as natural beauty. India speaks for itself as a soul stirring journey and clusters of cultural shades which reflects the raw beauty and

* 'Research Scholar, J.J.T. University, Jhunjhunu (Rajasthan)

captures by the heart of every tourist. Tourism incorporates the growth of economy of India. Indian historical places and natural beauty is the centre of attraction for the foreigners or tourist. These tourists love to have the traditional textile in their wardrobe as well as in their home to decorate the home.

TOURISM IN INDIA

There are many places to visit & full of heritage. The natural beauty of its states attracts the tourist**.** There are the best landscapes in the world with lots of natural wonders and sceneries. **Agra's TajMahal** is one of the most famous buildings in the world and the mausoleum of Shah Jahan's favourite wife, MumtazMahal. It is one of the New Seven Wonders of the world, and one of three World Heritage Sites in Agra. **Jaipur** is also popularly known as the **Pink City**, is the capital of the Indian state of Rajasthan. Jaipur is a very famous tourist destination in India. There are various forts and monuments in Jaipur which reflect its glorious past. Tourism is a significant part of Jaipur's economy. Like HawaMahal, Amber Fort, Jaigarh Fort, Nahargarh Fort, City Palace, JantarMantar, JalMahal, Rambagh Palace, Chandra Mahal, The City Palace, Diwan-e-Aam, City Palace, Central Museum, (Albert Hall Museum). **Goa** is Famous for its pristine beaches, infact 90% of all tourists. **Kashmir** was once called Heaven on Earth, and once of the most beautiful places in the world. **Kanyakumari**, there are several places of tourist-interest in the town and district, Kanyakumari is especially popular in India for its spectacular and unique sunrise and sunset. **Kerala**, situated on the lush and tropical Malabar Coast, is one of the most popular tourist destinations in India**,** Named as one of the **"**ten paradises of the world." **Delhi**, Capital of India has many attractions like mosques, forts and other monuments that represent India's history. **Ajanta Ellora** is famous for their caves and paintings. **Darjeeling** in India owes' its grandeur to its natural beauty. **Mysore** is a tourism hot spot within the state of Karnataka and also acts as a base for other tourist places in the vicinity of the city. The **Ladakh** capital city of Leh lies near the eastern parts of Jammu and Kashmir. **Gangtok**, the capital of the state of Sikkim, Gangtok is an attractive tourist destination, reflecting a unique ambience which derives from its happy blend of tradition and modernity. Tourism is one of the fastest growing service industries in the country with great potentials for its further expansion and diversification.

TOURISM & TRADE IN INDIA

Indian traditional textiles provide traditional designs for the decoration of home with the royal touch. Tourists like to have Indian textiles. Indian embroideries also grasp their interest; they are lovers of Indian handloom and artwork. The textile and apparel industry is one of the leading industry is one of the Indian economy and largest source of foreign exchange earnings for India. Indian artists use inherits patterns, unique designs, rich quality to make their product lively. Different countries in the world have their own decorative textiles. India has many varieties of traditional textiles. This variety of textile may give different and colourful look depending from which part of India they came Like Pashmina shawls (embroidered), Jamawar shawls (Applique) of Jammu &

Kashmir. Kullu shawls, chambarumal embroidery of Himachal Pradesh. Phulkari, Bagh of Punjab. Chikankari embroidery and appliqué work of Uttar Pradesh. Paithanisaree, Mangalagiri, Amru&Himru Woven of Maharashtra is famous. Kutch, Kathiawar, mirror work, Patola, Patch work of Gujarat. Bandhani , tie & dye, camel skin product, lehriya prints of Rajasthan. DaccaiJamdani, Kantha of Bengal. Ikat of Orissa.Pocchampalli (resist dye & woven), DharmaverumSarees of Andhra Pradesh. Kangiverum of Tamilnadu.Kasutisarees of Karnataka.

Textile industry accounts for 4% of GDP. Tariffs and other market access barriers, impending growth in trade and investments. Terrorism increasingly poses risks to the international activities of the industry. It involves the threat or violence to attain the political goals.

TERRORISM IMPACT/ PROBLEM

Terrorism involves the threat or violence to attain political goals or to communicate a political message by fear. International firms respond affects or threat of terrorism. Terrorism is a systematic threat or violence across the national borders to achieve the goals by fear. It sometimes holds important implications in business and international business in respective fields. Consumers are all buyers of goods and services whose behaviour towards the purchasing affected by the terrorism, state, national, and international garments. Some of the major effects of terrorism on trade are below-

- Declines in customer demand.
- Harmful macro-economic phenomena
- Deteriorating international relations
- Unable to predict the future events
- Discontinued export/import
- Delay in supply chains
- Shortage of raw materials
- Less efficiency of global transportation
- Lack of resources
- Higher cost in product development and higher prices for consumer

It is a fact that trade with a nation affected by terrorism involves higher risks. Terrorism indeed tends to a nation's trade. It can deplete a nation's supply of scare productive factors. This depletion may result from terrorist groups drawing the nation's radicalized elements in to terrorism activities or attacks on the people.

The negative impact on economy may also cause for foreign investors being dissuaded the investigation because of potential terrorism activities. It may hurt a large nation's economy because trade effects.

SOLUTIONS

Policies, regulations and laws are introduces by the government to improve the security conditions but such actions are necessary for the business world. Government actions will helps to make the business world secure. India is exploring the membership in regional organisations. It is trying to get SAARC going by pushing for the SAARC preferential trading arrangements (SAPTA) with a free trade area to follow. There are some ideas to prevent the effect of terrorism on trade-

- Strengthen the partnership between the private and public sectors

- Providing educational programs for firms
- Expand disaster recovery and loans guarantee programs
- Providing better intelligence support
- Strengthen the information and communications infrastructures (detect the or prevent terrorist attacks, maximise the efficiency with firms & prepare for deals, help to minimise the post-event recovery)
- Encourage more economic resiliency and dynamism,
- Encourage the free trade and economy development worldwide.

All India's small neighbours have been prey to internal instability from pro-democracy forces. India itself looms large in the security calculus of the small states. The main objectives of securing trade-

- To maintain the quality control
- To develop product on time
- To produce in time fashion
- To remain with cost specification

CONCLUSION

To fulfil all the objectives for smooth running trade government tried to take some actions. Such policies take the Indian trade higher and terrorism effect lower. These objectives can be fulfil by strengthen the partnership between the private and public sectors, providing educational programs for firms, Expand disaster recovery and loans guarantee programs, providing better intelligence support, strengthen the information and communications infrastructures (detect the or prevent terrorist attacks, maximise the efficiency with firms & prepare for deals, help to minimise the post-event recovery), Encourage more economic resiliency and dynamism, Encourage the free trade and economy development worldwide. Pro-active efforts are needed to deal with terrorism. Such efforts will be more salient in future. these disasters indirectly effects the international trade. Government need to introduce some policies for business world to make the trade terrorism free.

REFERENCES

Dr. Nayak P., PanigrahiR.,"Textile exports in India", Trade globalisation & textiles, Vol-1, Issue-1, Dec 2014, p-9.0

Upadhyay B, Sandler, " The effect of terrorism on Trade: A Factor supply Approach" Third quarter 2014, pp 229-41.

Egger P.,Gassebner M., International terrorism as a trade impediment?", May 2014.

ZoelickR.,"countering terror with trade", Washington post, September 20, 2011.

Knight Gray A., Czinkota M. R."Terrorism and international trade", August 2008

Abadie A,Javier G, "Terrorism and the world economy", European economic review. January 2008

Knight Gray A., Czinkota M. R."Terrorism and international business: conceptual foundations" England: Edward Elgar, 2003

Shetty Sunder A.," Indian textile and apparel industry: growth potential and trade and investment opportunity", march 2001.

SHODH CHETNA – YEAR-3
(JAN. TO MARCH, 2017) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

SYNTHESIS, CHARACTERIZATION AND ANTI-MICROBIAL INVESTIGATIONS OF CU(II) COMPLEX OF A NEW LIGAND, BIS (THIOTRITHIAZYLCARBAMIDE)

❐ Anjul Singh*

ABSTRACT

The complex of Cu(II) with a new ligand bis (thiotrithiazylcarbamide) have been synthesized and characterized on the basis of quantitative analysis, mass, I.R., ^{1}HNMR, EPR, X-ray and electronic spectral studies. The spectroscopic data suggested that the ligand is quadridentatedly coordinated to the Cu(II). The FAB mass spectrum leads to formulate the complex as $[(S_4N_3NHCONH)_2Cu]$. The complex has also been screened against gram –ve bacteria E. coli, S. typhi and fungi C. albicans, C. neoformans and found too much effective at 100 μg/ml concentration.

Introduction

The chemistry of sulphur nitrogen[1-3] compounds has been the subject of immense importance due to the reasons like the stability of S-N bonds, tendency to polymerise, antibacterial and antifungal activity. Thiotrithiazyl chloride[4,5] (S_4N_3Cl) is the most stable cyclic derivative of tetrasulphurtetranitride.[6,7] In continuation of our work reported earier[8-11] on the derivatives of thiotrithiazyl chloride and their transition metal complexes, we are reporting here, the synthesis and characterization of the bivalent metal complex with a new ligand derived from thiotrithiazyl chloride and urea.

Results and Discussion :

The complex of Cu(II) with the novel ligand, bis (thiotrithiazylcarbamide), which was assigned (loc.cit) as $[S_4N_3NHCONH_2)_2]$. The complex was insoluble in water and organic solvents like ethanol and ether but soluble in DMF and DMSO. The results of the elemental analyses showed that the complex has 1:1 stoichiometry.

* Department of Chemistry, D.S. College, Aligarh (Dr. B.R.A. University, Agra), INDIA

Mass Spectrum

The FAB mass spectrum of the complex shows the molecular ion peak at m/z 519.0 (Fig. 1) which is in the close agreement with the experimentally determined molecular weight 512.0 g/mol. The molecular weight of the complex is equal to the sum of the fragments $(S_4N_3)_2NHCONHCu$ (m/z = 461) and NHCONH (m/z = 58) formed by the dissociation of the complex, supporting the molecular formula $[(S_4N_3NHCONH)_2Cu]$.

The schematic diagram of mass fragmentation may be shown as:

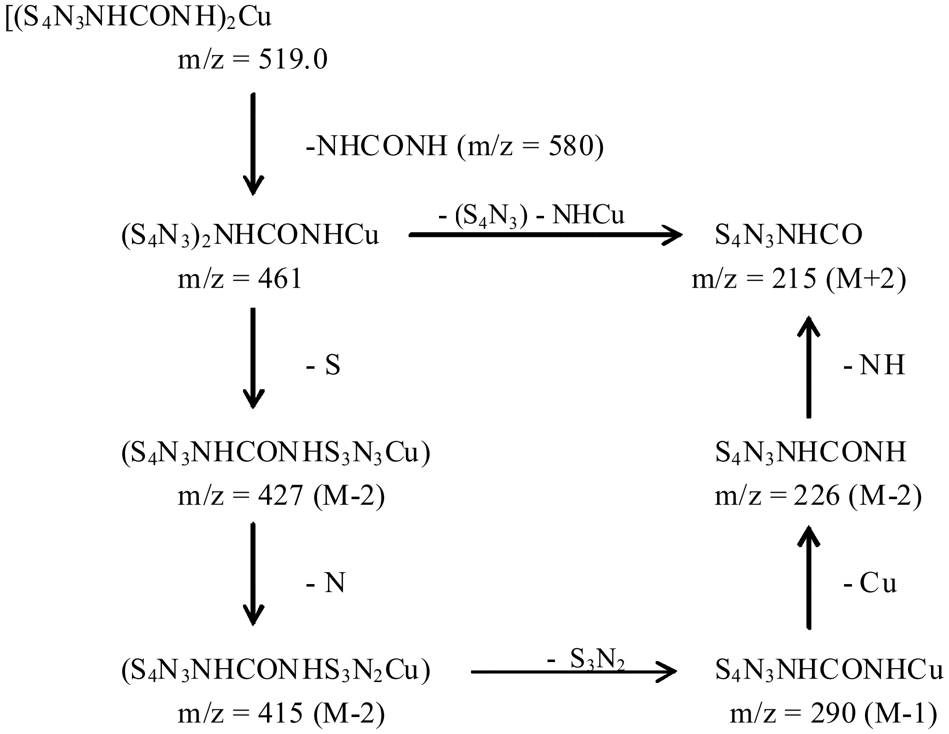

On the basis of above fragmentation pattern, the complex may be formulated as $[(S_4N_3NHCONH)_2Cu]$. The mass spectral data also supports the results obtained gravimetrically. The chemical reaction may be represented by the following equation.

$$[(S_4N_3NHCONH_2)_2] + Cu(CH_3COO)_2.H_2O \xrightarrow[\text{Reflux, 6h}]{\text{DMF}} [(S_4N_3NHCONH)_2Cu] + 2CH_3COOH + H_2O$$

I.R. Spectrum

I.R. spectrum[13] of the ligand showed characteristic bands at 617 cm^{-1}, 1623 cm^{-1} and 3130 cm^{-1} which are assigned to υ(S-S), υ(CO) and υ(NH_2) respectively. Another bands at 646, 685 and 721 cm^{-1} has been assigned to the S-N vibrations in the thiotrithiazyl ring of the ligand. The

deprotonation of the amine group (-NH_2) is indicated by the shifting of the band at 3130 cm^{-1} in the ligand to 3370 cm^{-1} in the spectrum of the complex. The shifting of the bands due to S-N vibration in the ligand to 736, 779 and 880 cm^{-1} confirmed the coordination of S-N group in the thiotrithiazyl ring to the metal. The splitting of the sharp band at 618 cm^{-1} showed the bonding of the sulfur atom to the metal. The bands at 484 cm^{-1} and 512 cm^{-1} may be attributed to υ_M !S and υ_M !N respectively.

Electronic Spectrum

Electronic spectrum (Table 1) of Cu(II) complex exhibited the bands at 47619 and 41666 cm^{-1} which may be assigned to σ N (L) ’ ! $d_{x^2-y^2}$ (M), ligand to metal charge transfer. The third band at 39682 cm^{-1} is attributed to pπ – dπ transition with in the S_4N_3 ring. The complex also showed a distinct electronic spectral band at 34246 cm^{-1} having shoulder which may be assigned to ^2Eg ’ ! $^2T_{2g}$ transition.[14]The shoulder is due to John Teller distortion. Electronic data favours the distorted tetrahedral geometry for the complex. The value of υ_1 / υ_2< 1 and oscillator strength, (f) of the order of 10^{-3} showed the transition to be spin allowed and Laporte forbidden. The value of β = 0.63 shows the metal-ligand bond to be partial covalent in nature, while the low value of band gap energy ΔEg. = 0.67 eV and high value of $n_c = 1.8x10^{17}$, suggest its conductive behaviour.

E.P.R. Spectrum

The E.P.R. spectrum (Table-1) of the Cu(II) complex were recorded at room temperature as well as L.N.T. The spectrum showed two signals suggesting its paramagnetic nature.

The values of effective magnetic moment (1.71 B.M) and magnetic susceptibility (10^{-4}) suggested the presence of single unpaired electron whose orbital motion is quenched due to the presence of two thiotrithiazyl rings around the metal ion. The paramagnetic nature of the complex may be expressed as:

Cu^{2+} $3d^9sp^3$ hybridization

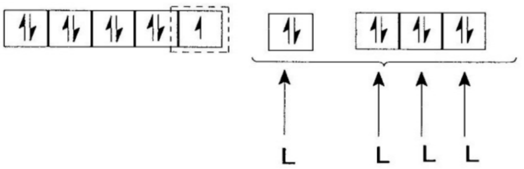

The values of $g_{\parallel} > g_{\perp} > 2.003$ indicates that unpaired electron lies in the orbital with the probability of some mixing of due to lower symmetry, forming tetrahedral and quadridentately coordinated complex.

^{1}H NMR Spectrum

The ^{1}H NMR spectrum of the ligand exhibited signals at δ 3.32 (S, 2H, -NH_2) and δ 2.51-2.47 (m, H, S_4N_3NH). The Cu(II) complex showed the signals at δ 2.50-2.51 ppm (t, H, S_4N_3NH), δ 2.270-2.275 ppm (d, H, S_4H_3NH) and δ 3.31 ppm (s, H, NH). The splitting of the sextet peak in the ligand into doublet and triplet indicates the chelation of the ligand through sulphur and nitrogen atoms of S_4N_3 ring. Slight shifting of the

peak at δ 3.31 ppm due to NH proton in the ligand to δ 3.32 ppm showed the involvement of NH proton in ionic interaction with the metal ion.

XRD Analysis :

From the XRD data, the values of $\sin^2\theta$, d_{hkl}, axial ratios, a_0, b_0, c_0 and axial angles α, β, γ have been determined.[15] From the values obtained, it is inferred that there is triclinic geometrical array of atoms as $a_0 \# b_0 \# c_0$ and $\alpha \# \beta \# \gamma \# 90^o$.

Antimicrobial studies

The biological activity of the complex against gram (-ve) bacteria *E. coli, S. typhi*and fungi *C. albicans, C. neoformans* was investigated using filter paper disc method. The zone of inhibition was determined at three test concentration 10, 50 and 100 μg/ml as shown in Table 2.

	Conc. (μg/mL)	Zone of inhibition (mm)			
		Bacteria		Fungi	
		E.coli	*S. typhi*	*C. albicans*	C. *neoformans*
Ligand	100	21	00	21	24
Complex	100	14	14	18	15
	50	07	06	10	06
	10	06	05	07	04

From the screening data, it is evident that the complex exhibited mild to moderate activity against both the bacterial as well as fungal species at 100 μg/mL. The anti-bacterial activity increases with increase in the concentration of the test compound. The ligand was inactive against *S. typhi* but the complex showed activity. The study revealed that on complexation the antibacterial and antifungal activity of the ligand decreased in case of bacteria *E. coli* and fungi *C. albicans* and *C. neoformans*. This decreased activity may be attributed to the less availability of the coordinating sites on the complex.

Conclusion :

The tetradentate mode of chelation of the ligand bis (thiotrithiazylcarbamide) is confirmed by IR and ^{1}H NMR spectral studies. The distorted tetrahedral geometry of the complex is assigned by U.V. and E.P.R. spectral studies. The X-ray studies show the triclinic geometrical arrangement of the atoms in the complex. The complex also exhibits the antibacterial as well as antifungal activity. On the basis of above spectral studies, following structure may be proposed to the complex.

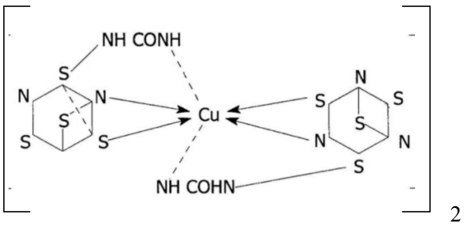

Structure of Cu(II) Complex

Experimental :

All the chemical and solvents used were of A.R. grade. S_4N_3Cl was synthesized by the reaction of S_4N_3 with acetyl chloride as reported (loc. Cit). The elemental analyses was done using CHN microanalyser and also gravimetrically using standard methods.[16] Mass spectrum was recorded on Jeol SX 102 (FAB) mass spectrometer. Infrared spectrum was recorded on Shimadzu 8201 PC IR/ Hitachi spectrophotometer in the region 4000-450 cm^{-1}. The electronic spectrum was recorded on Perkin-Elmer Lambda 15 UV/ VIS spectrophotometer in the range 200-860 nm. The ^1H NMR spectrum was recorded on Bruker DRX 300 MHz spectrometer. The M.P. was determined on electrical melting point apparatus and was uncorrected.

Preparation of Ligand (bisthiotri-thiazylcarbamide)

The ligand was prepared by heating, under reflux, a mixture of equimolar quantities of urea and S_4N_3Cl in DMF. The reaction mixture was refluxed for 6 hours. The brown coloured product obtained was filtered, washed with alcohol and ether and kept in vacuo. The ligand is insoluble in water and soluble in organic solvent DMSO m.p. >280°C, yield 40%.

Preparation of Cu(II) complex :

The suspension of the ligand in DMF was treated with hydrated copper acetate in 1: 1 ratio. The resulting reaction mixture was stirred and then refluxed for 6 h on a water bath. The dark blue coloured precipitate separated out which was filtered, washed with ethanol, dried and stored in vacuum. m.p. >300°C, yield 30%, mol. Wt. 519 (521.0) $gmol^{-1}$ C; 4.62 (4.60); H; 0.78 (0.76), N; 26.97 (27.00), S; 49.13 (49.32), Cu; 12.62 (12.57).

References

1. L. Niinistro and R. Latinen, Inorg. Nucl. Chem. Let. (1976) 12, 191.
2. Wolmerhauser and G. Street, Inorg. Chem. (1979), 18(2), 383-85.
3. H.W. Roesky, Chem. Ber., (1977), 110(8), 2695-98.
4. William L. Jolly, Maguie and D. Rabinovich, Inorg. Chem., (1963), 2(6), 1304.
5. A.G. MacDiarmid, J. Am. Chem. Soc., (1956), 78, 3871.
6. M.B. Goehring and H.P. Latsche, Z. Naturforsch, (1962), 17B, 125.
7. M.B. Goehring, Progr. Inorg. Chem., (1959), 1, 207.
8. S.S. Yadav and S.P.S. Jadon, J. Ind. Chem. Soc., (2002), 79, 751-752.
9. Anjul Singh and S.P.S. Jadon, Asian J. Chem., (2007), 19(7), 5775-5777.
10. Anjul Singh and S.P.S. Jadon, Int. J. Chem. Sci., (2007), 5(2), 769-775.
11. Anjul Singh and S.P.S. Jadon, Oriental J. Chem., (2007).
12. K. Nakamoto, "Infra Red and Raman spectra of Inorganic and Coordination Compounds", John Wiley, New York, (1963).
13. B.N. Figgis, "Introduction to Ligand fields", Wiley Eastern Ltd., (1976), p. 209.
14. F.C. Phillips, "An introduction to Crystallography", 3rd ed. (Longman), (1964).
15. A.I. Vogel, "A text book of quantitative inorganic analysis", 3rd edn. (ELBS, Longman, London), (1969).

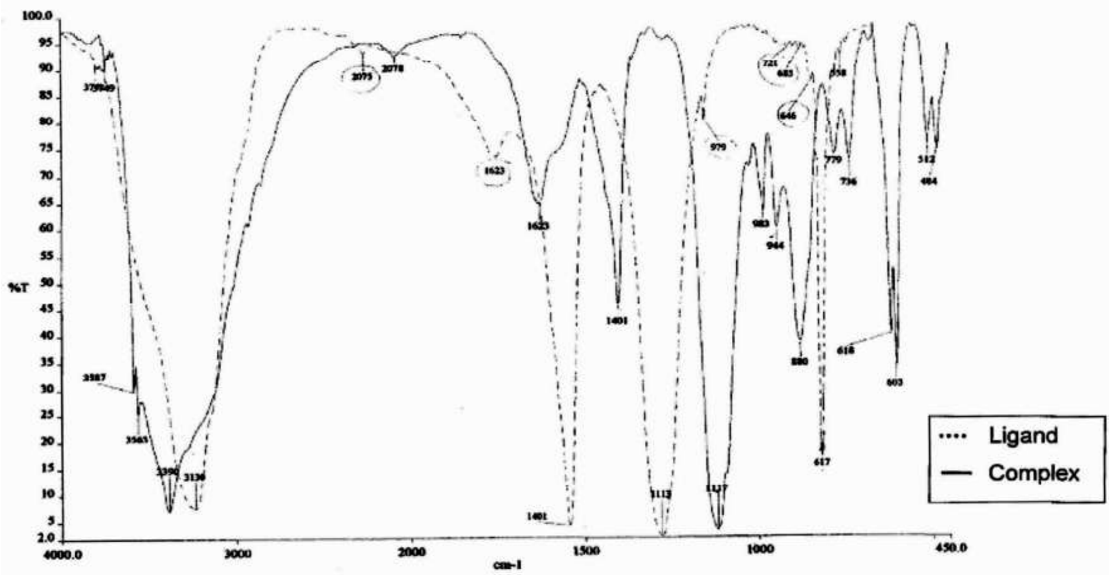

← λ (cm^{-1}) →

Fig. 1: I.R. Spectrum of (a) Ligand and (b) Complex

SHODH CHETNA – YEAR-3 ISSN : 2350-0441
(JAN. TO MARCH, 2017) VOL. 1

RELEASES OF PREDATORS (*Coccinellidae*) AS BIOLOGICAL CONTROL AGENTS OF ONION THRIPS (*Thripstabaci*) IN EXPERIMENTAL NET HOUSE CONDITION

❑ **Neetu Singh***

ABSTRACT

To investigate the potential of thrips predator as biological control agent of onion thrips, Thripstabaci, experimental releases were performed. Predator species Coccinellidae (Ladybird beetle) was released in different micro plots under net house condition. An account is given on the release, dispersal, establishment, population dynamics and control capacity of predator species. Predator spread readily and established themselves throughout the crops, but release did not result in reduction of thrips during first week, but at the end of month population of thrips reduces at marked scale (1- 2 no. of thrips per onion plant). The potential of predator Coccinellidae as biological agent of thrips pest in horticulture crop is discussed. Result showed that there was comparatively lower insect pest infestation on onion yield.

Key Words: *Predator, Coccinellidae, dynamics, horticulture crop, biological control.*

INTRODUCTION

Thripsare important pests of green house vegetable and ornamental crops around the world (**Moritz, 2002** and **Morse &Hoodle, 2006**). More specially, *Thripstabaci* is among the most important pests of green jouse crops in India. Thrips cause considerable damage to commercial onion crops, through direct feeding on marketable produce (i.e, flowers or leaves) or as occasional vectors of plant pathogens (**Brodsgaord 2004**, **Jones 2005**). There are major problems associated with usage of insecticides; resistant straints are appearing (**Esponsia*et al.* 2002; Humeres& Morse 2006; Bielza*et al.* 2007**) and it is now well known that they have considerable impacts on human health and non- target organinsm (**Desneus*et al.*2007**). These

* 'Research Scholar, J.J.T. University, Jhunjhunu, Rajasthan, India,
E-mail : neetu.singhrana03@gmail.com

concerns are leading to legal restriction on the insecticides allowed. In addition, the thrips live mainly on the leaves of onion where they are difficult to research by non-systemic insecticides. Therefore, environmentally sound alternatives to pesticides are needed and increase the interest of using Integrated Pest Management (IPM). IPM is an approach that aims to reduce pest status to tolerable levels by using methods that are effective, economically sound while minimizing environmental impact. One essential component of IPM is to use predators and parasitoids against thrips as biological control. Onion is the primary vegetable of routine food, rich with high antioxidants as visible distortation off leaves and necrosis of fruits. The natural enemies currently studied to control thrips pests are thrips predators, *Coccinellidae*. We investigated the percentage reduction due to thrips predators in onion crop.

MATERIAL AND METHODS

Experimental design of net house

Experiments were carried out in a net house compartment at Research laboratory of D.S. College, Aligarh. During second half of December of 2016 to first half of February of 2016. Total three experimental micro plots under net house were design for carrying the research experiment. Each micro plots were design under the size of 1.829m ×1.219m. Plantings of onion cultivated under net house micro plots. Total 45 plants of onion in each micro plots were planted.

Figure 1 Pants of onion were planted in experimental micro plots under net house.

Crop maintenance and harvest of onion crop was carried out conform common practices. Pests and diseases (caused by onion thrips) were controlled biologically. No chemical insecticides and pesticides were used during this experimental research.

Host and predator

Coccinellidae (Ladybird beetle) originating from North America with lie in order Coleoptera (largest order of class insect) was frequently distributed in all parts of the world. It is known best predator for controlling the thrips without effect the plant and environment.

Figure 2 Releases predators, Coccinellidae (Ladybird beetle) on onion plant in each experimental micro plots.

Here we use fixed no. of predators on each micro plots with no. of 20, 25 and 30 in I, II and III micro plot respectively.

Population development experiments on both thrips and predators were started from second half of December of 2016. For population studies, onion plants in each micro plots were infested by sixty (5 female:1 male) *Thripstabaci* adults once. Predators were released on weekly bases in three periods from glass jars placed on wool at the base of onion plants, number equally divided over space.

OBSERVATION

Immediately before their harvest all plants were regularly checked twice or three times a week for thrips damage.

Figure 3 Onion thrips,Thripstabcicontinuously infested on young leaf of onion plant.

All data were calculated and placed in table (table 1) for knowing the final result. Final reduction in thrips population find out.

S.No.	First release				Second release (after one week)				Third release (after one week)		
	initial no. of *T.t.*/ plant	No. of c. release**	No. of alive *T.t.* after 3 days	% reduction	No. of remaining *T.t.*/ plant	No. of c. release**	No. of alive *T.t.* after 3 days	% reduction	No. of remaining *T.t.*/ plant	No. of c. release**	% reduction
1.	45	20	39.61	11.9	70.4	20	33.7	52.1	36.5	20	68.4
2.	45	25	35.54	21.02	63.5	25	28.34	55.3	33.5	25	75.01
3.	45	30	32.43	27.93	57.6	30	20.26	64.8	30.6	30	78.75z

**mean value, **all the no of parasitoids were release in each micro plot, T.t.=Thripstabaci, C.= Coccinellidae*

RESULTS

The possibility of use of predator, Coccinellidaefor control the natural infestation of onion thrips, Thripstabacion onion plants under net house condition was tested. Adults ofCoccinellidaespread immediately after first release. Tests on the capacity to disperse in three experimental micro plots showed that adults spread horizontally on leaves and flowers of onion plant and remained almost the 3 week (table 1). Results show that after three days of release parasitoid the percentage reduction was calculated 11.9, 21.02 and 27.93. After one week of first release the percentage reduction was concluded 52.1, 55.3 and 64.8. After one week of second release the percentage reduction was calculated 68.4, 75.01 and 78.75 during first, second and third experiment respectively. Result of predators release in experimental net house indicated that the no. alivethrips was observed very low from its economic threshold level. Therefore, the damage threshold of thrips is very high, which gives more opportunity for biological measures to control thrips pest.

DISCUSSION

Result of predator release *Coccinellidae* on onion plants under the condition experimental net house indicated that this species played major role in control of onion thrips, *Thripstabaci*. In commercial onion crop *Coccinellidae*recovered after releases (after one week) in very low density. Later in the season thrips population were controlled (after third release). Theoretically the good performance could, in part, be

explained by positive interactions between predator and thrips pest in commercial green house. Predators maintained themselves during the season, but were not able to build up their population in high density to overcome this predator releases again and again after a fixed interval of time.

ACKNOWLEDGME

Author would like to thank Dr. Virendra Kumar (Assistant Professor) Deptt. of Zoology, Dr. AnjanaBansal (Principal), D. S. College, Alligarh(U.P.)and Dr. Dinesh Kumar Singh (Assistant Professor) Deptt.of Botany, J.J.T.U., Jhunjhunu, (Rajasthan) for assist about this biological experimental research and providing the all research facilities.

REFRENECES

1. Bielza P, Quinto V, Fernadez E, Gravalos C, Contreras J (2007). Genetics of Spinosad resistance in *Franklniellaoccidentalis* (Thysanoptera: Thripidae. *Journal of Econ. Entomolo.* Vol. 100, pp. 916- 920.

2. Brodsgaard HF (2004). BIOLOGICAL CONTROL OF THRIPS ON ORNAMENTAL CROPS. In: Heinz KM, van Driessche RG and Parella MP (eds). Biocontrol in protected culture. Ball Publishing. Batavia, pp. 235- 264.

3. Desneux N, Decourtye A, Delpuech JM (2007). The sublethal effects of pesticides on beneficial arthropods. *Journal of Annu. Rev. Entomol.* Vol.52, pp.81- 106.

4. Esponisa PJ, Bielza P, Contreras J, Alfonso P (2002). Insecticide resistance in field populations of *Franklniellaocciden-talis*(Pergande_ inMurcia (south- east Spain). *Journal of Pest Management Science*. Vol. 58, pp. 967- 971.

5. Humeres E, Morse JC (2006). Resistance of avocado thrips (Thysanoptera: Thripidae) to sadadilla, a botanically derived bait. *Journal of Pest Management*. Vol. 62, pp. 886- 889.

6. Jones DR (2005). Plant viruses transmitted by thrips. *Eur. J. Plant Pathol*. Vol. 113, pp. 119- 157.

SHODH CHETNA – YEAR-3 ISSN : 2350-0441
(JAN. TO MARCH, 2017) VOL. 1

FEEDING PRACTICES AND NUTRITIONAL STATUS OF KOL TRIBAL CHILDREN UNDER 5 YEARS OF AGE IN REWA DIVESION, MADHYA PRADESH

❒ Dr. Gokul Prasad Dwivedi*
❒ Vijay Shankar Chodhari**

ABSTRACT

Introduction : Nutritional status of any community is influenced by interplay of various factors including beliefs, customs, food availability in the region. children from Kol tribals are particularly under privileged. They have higher rates of morbidity and are known to receive less then desired nutritional intake. The present study was conducted with the objectives to study the feeding practices of Kol Tribal Children aged 6 months to 5 years and to assess the nutritional status of these children.

Feeding practices of tribal children in the early infancy are satisfactory. However in the late infancy and early childhood, there is deficiency in the frequency and adequacy of the feeds leading to wasting and stunting.

Key Words – Feeding practices, IYCF, Nutritional status, Kol Tribal children, Age in Rewa Division Madhya Pradesh.

Introduction

Nutritional status of any community is influenced by interplay of various factors including beliefs, customs, food availability in the region. This in turn influences the physical growth and nutritional status of the whole community. According to the 2011census, the scheduled tribes comprise about 8.6% of total India's

* Professor, Sociology, Yamuna Shastri College, Sirmour, Distt. Rewa (M.P.) India
** Scholar, Govt. T.R.S. College, Rewa (M.P.) India

population. Since most of the tribal habitations are located in isolated villages and hamlets coinciding with forest areas, there ate natural hurdles in their ability to access nutritious food and also health care. The literacy, economic and health indicators for tribal people are poorer than for the rest of the population which into influence their food intake. Women and children from these groups are particularly under privileged. They have higher fates of morbidity, and are known to receive less than desired nutritional intake. According to NFHS-3, 54.5 % children under 5years belonging to Scheduled Tribes (Kol) have been reported to be under weight.

Methodology

A Community based cross-sectional study was conducted in Kol Tribal children in Rewa Division Madhya pradesh with objectives1) To study the feeding practices of Kol Tribal Children aged 6 months to 5 years 2). To assess the nutritional status of these children. A sample of 150 children (calculated based on prevalence as reported by NNMB study) between 6 months to 5 years were surveyed. Multistage simple random sampling technique was applied to select 9 villages in tribal Rewa Division located in 3 community Health and Nutrition centres. A house to house survey was conducted to interview 20 children in each village. In case of less populated villages/ small hamlets, where 20 children could not be covered, the subsequent village was included. After taking consent, information was obtained from mother/care taker (above 15 years of age) on feeding practices according IYCF and IMNCI guidelines. As feeding practices differ in children of different age groups, the study population were categorized into two groups 1) 6 to 23 months of age 2) 2 to 5 year of age. Feeding Practices and Nutritional Status of Kol Tribal children Under 5 Years of Age Information on indicators such as exclusive breast feeding. continued breast feeding, age at introduction of solid and semisolid food was obtained for all the children.

For children between 2 to 5 years, information on feedingg as per IMNCI guidelines was obtained. Anthropometric measurements such as height, weight and mid upper arm circumference were measured for all the children. Three standard indices of physical growth such as Weight-for-age (underweight), Height-fir-age (stunting), Weight-for-height (wasting) expressed in terms of WHO Z scores were used to describe the nutritional status of children.

Results

Among the study population, 47% were male and 53%were female children. The total number of children in 6 to 23 months were 66.66, and 2 to 5 years were 115. Among all, majority (86.66%) received exclusive breast feeding,

13.33% children received artificial feeding along with breast mil in the first 6 months of age (table 1). In 80.95% of the children, introduction of solid and semisolid feeding was in the 6th month of their age. In19.04% of children it was delayed beyond 6 months.

Table no 2 shows that 86.66 % of the children had 4 of more (out of seven) types of food groups included in their diet as per the definition of the minimum diversity of foods by WHO under IYCF guidelines however only 19.7% of children were consuming less than 4 varieties of food groups in their diet. Regarding the meal frequency,80.95 % children were consuming meals more than required minimum number or frequency. Only33.33% of children were taking at least or more than minimum acceptable diet. Table no.3 shows that 66.66% of children in the age group of 2 yrs to 5 yrs were taking 3 meals and 2 nutritious foods per day as per IMNCI guidelines. Majority of them (80.95%) were taking feeds on their own, 19.04% were being fed by parents or care taker. Sharing of food from the same plate along with other children or parents was observed in 8.5%.

Discussion

Feeding practices of tribal children: It was observed that during the first six months of age of the study children, majority (86.66%) received exclusive breast milk. Among the tribal people, the practice of consuming cow or buffalo milk or any other daily product is very negligible. Even for the purpose of feeding infants and young children mothers depend on breast milk as compared to other sources indicating a positive cultural factor benefitting the health of the new born. However this finding is in contrast to other studies which reported a poor percentage of exclusive breast feeding among other tribes. It was reported as low as 20.8% among Kol tribes of Madhya Pradesh by Tiwari et al where as in studies by Burhanuddin et al, Mondal et al and Sinhababu et al5,6,7,8 it was between 31 % to 57%. The child rearing practices followed by the tribal women in our study are favorable to the children.

Practice of introduction of solid of semisolid food (complimentary foods)by six months of age was observed in 74 % of children This is similar to finding of Laxmiah et al9 who reported it as 76%. Other studies among Santals by Modal et al5 and among tribes of Bankura district by Sinha babu et al7 reported it as 46.6% and 55.7% respectively.

Regarding the IYCF practices, most of the children in the age group of 6-24 months received more than 4 types of food groups such as grains, roots, legumes, fruits, dairy products, eggs and flesh food in their diet. Mothers of more than80% of the children demonstrated Minimum dietary diversity. Also majority

of the children were receiving foods more than the recommended number of times in a day for their age. In contrast to this finding, Mondal et al5 has reported a low minimum diversity standards (30.85%) and minimum meal frequency (41.49%) in their study. However in the present study it is observed that only half (48.5%) of Feeding Practices and Nutritional Status of Tribal Children Under 5 Years of Age... the children had minimum acceptable diet ie having both minimum dietary diversity and minimum meal frequency. Which means rest of the children were either receiving more food groups less frequently in a day or less food groups more number of times in a day. Therefore mothers need to be educated on these IYCF guidelines10 to include more food groups and feed as frequently as advised. regarding feeding practices of children more than 24 months, IMNCI recommends at least 3 meals and 2 nutritious foods per day. In this study 62.6% of the children of 2 years to 5 years, were receiving adequate frequent meals as per the IMNCI guidelines4 and 90.8% were had separate plate for food. Majority of them (86.2%) were taking feeds on their own.

Nutritional status of Tribal children

In our study, the prevalence of underweight among children under five was found to be 49.2% Among the underweight 35.29% were severely underweight(<-3 of WHO Z score). The age wise weight distribution of the children shows that less percentage of children were underweight during their infancy and as the age progresses more number of children are falling in to the bracket of underweight. This can be attributed to the fact that practices such exclusive breast feeding and timely initiation of complimentary feeds are keeping the infant well-nourished but as age progresses and the milk feed is slowly withdrawn, the quantity of food supplementation are not adequate to meet the demands of the young child's growth and development thus forcing him into the bracket of underweight. Other studies7 have also attributed the problem of underweight to inappropriate complementary feeding practices along with late initiation and low rates of breast feeding.

Height for age index reflects chronic energy deficiency. In this study, it is observed that the percentage of children being stunted increases as the age progresses which means children in the younger age groups being well nourished are gaining good height but as the age progresses, due to inadequate complementary feeds, they gradually end up having low height for their age or severe stunting. However the weight for height index (wasting) indicating acute malnutrition shows that more percentage of children in the 13-24 months are wasted. This is the critical age bracket

where the inadequacy in the complimentary feeds directly affects the weight of the child leading to acute malnutrition. Gradually it is found to be zero in the older age groups suggesting that for the low height gained over a period of time, weight for that height is normal. According to Mid upper arm circumference, out of 181 children 100 children (55.24%). were malnourished i.e., were having< 13.5 cm.

Conclusion

Kol Tribals follow child friendly feeding practices as reflected in the breast feeding and weaning practices. It is understood from this study that feeding practices in the early infancy are satisfactory.

However as the child grows old, there is deficiency in the frequency and adequacy of the feeds because of which the child becomes wasted and stunted. Illiteracy and non-accessibility to nutritious foods and health education. due to reasons for which may be poverty.

Reference:

1. Varadarajan A, Prasad S, Regional variations in Nutritional status among tribals of Andhra Pradesh, Stud Tribes Tribals. 2009;7(2): p137-141.
2. Ministry of Tribal affairs. Demographic Status of Scheduled Tribe population of India [internet]. Availablefrom:ttp:// tribal.nic.in/WriteReadData/CMS/ Documents/201306110208002203444 Demographic Status of Scheduled Trebe Population of India.pdf
3. Ministry of Women and Child development. Scheduled Tribe Women and Children: Issues and challenges for development. New Delhi; Ministry of Women and Child development. 2011.Available from: http://www.pib. nic.inniwsite.erelease.aspx?relid=72382
4. Integrated management of neonatal And childhood illness (imnci) Modules 1to9. New delhi. Ministry of health and family welfare. Government of indea.2009/ p356.
5. Mondal TK, Sarkar AP, Shivam S, ThakurRP. Assessment of infant and young child feeding practice among tribal women in Bhatkar block of burdwan district in West Bengal, India. Int J Med Sci public Health.2014;3;324-326
6. Burhanuddin M, Rahman S.M.B., Imtiaz Hussain. Infants feeding practices among Garo and non Garo Mothers FromNetrakona District Bangladesh. World Journal of Medical Sciences. 2011;6(4);202-208.
7. Sinhababu A, Dipta K. Mukhopadhyay, Tanmay K. Panja,Asit B. Saren, Nirmal K.Mandal, Akhil B. Biswas. Infant and Young Child-feeding practices in Bankura District, West Bingal, India.Jhealth populNutr. 2010 Jun; 28(3):294-299
8. Tiwari B K, Rao V G, Mishra D K, Thakur C. Infanr-feeding practices among Kol tribal community of Madhya Pradesh. Indian J Community med. 2007;32;:228-228
9. Laxmaiah A, Mallikharjuna Rao K, Hari Kumar R,Arlappa N, Vinkaiah K,

G.N.V. Brahmam. Diet and Nutritional Status of Tribal population in ITDA Project Areas of Khammam District, Andhra Pradesh.J. Hum. Ecol.,2007 21 (2): 79-86

10. Indicators for assessing infant and young child feeding practices par 1 Definitions. France. World Health Organaization. 208.p26.

Table no.1 Breast feeding and complementary feeding practices of tribal children

Breast feeding	Number(%)n=150
Exclusive breast feed	130(86.66)
Artificial; feed along with	20(13.33)
Continued breast feeding	Number(%)n=150
<1yr	30(20)
1-2yrs	33(22)
>2yrs	87(58)
Age at Initiation of solid or semisolid feeds	Number(%)n=150
5months	6(4)
6months	110(73.33)
7months	19(12.6)
8months	9(6)
9months	4(2.66)
12months	2(1.33)

Table No.2 IYCF indicators in children between 6 to 24 months age

Frequency of intake of meals	Number(%)n=115
Taking 3 meals and 2 nutritious foods per day	70(66.66)
Not taking 3 meals and 2 nutritious foods per day	35(33.33)
Feeding practice	Number(%)n=115
Self-feeding	85(80.95)
feeding by care taker	20(19.04)
Shared feeding in same plate	Number(%)n=115
Yes	9(8.5)
No	96(91.4)

Table no. 4. Prevalence of Underweight in study children

Age groups	Total number of children	Normal n (%)	Under weight<-2 of WHO Z score n (%)	Severe Underweight among underweight<-3of WHO Z score n (%)
6-12months	28	18(64.28)	10(35.71)	5(45.45)
13-24months	33	11(33.3)	22(66.67)	7(30.43)
25-36months	42	25(59.5)	17(40.7)	11(40.7)
37-48months	25	16(64)	9(36)	1()7.14
49-60 months	25	9(36)	16(64)	5(35.71)
Total	150	81(54)	69(46)	29(32.58)

Table no. 5, Prevalence of stunting in study children

Age groups	Total number of children	Normal n (%)	Under weight<-2 of WHO Z score n (%)	Severe stunting among stunting< -3 of WHO Z score n(%)
6-12months	28	19(67.85)	11(39.28)	7(58.33)
13-24months	33	13(39.39)	20(60.60)	11(68.75)
25-36months	42	23(54.76)	19(45.23)	24(77.41)
37-48months	25	17(68)	8(32)	7(35)
49-60months	25	11(44)	14(56)	21(75)
Total	150	90(60)	60(40)	69(64.48)

Table no. 6. Prevalence of wasting in study children

Age groups	Total number of children	Normal n (%)	Wasting<-2 of WHO Z score n (%)	Severe wasting among wasting<- 3 of WHO Z score n (%)
6-12months	28	20(71.4)	8(28.57)	2(25)
13-24months	33	22()66.66	11(33.34)	11(55)
25-36months	42	32(76.19)	10(23.80)	1(12.5)
37-48months	25	20(80)	5(20)	0(0)
49-60months	25	0(0)	0(0)	0(0)
Total	150	110(73.34)	40(26.67)	14(35)

SHODH CHETNA – YEAR-3
(JAN. TO MARCH, 2017) VOL. 1

ISSN : 2350-0441

GROWTH BEHAVIOUR AND DRY MATTER PRODUCTION OF WRIGHTIA TINCTORIA

❑ Dr. Narayan Dutt Tripathi*
❑ Dr. Sunita Dwivedi**

ABSTRACT

This paper deals with the growth behaviour and dry matter production for different seasons in one year old saplings of Wrightia tinctoria. The study also include aspects of biomass and dry matter accumulation in different plant parts. The species was analysed for the growth rates in its one year old seedling. Wrightia seeds were collected in the month of April-May farm from the Patehara forest site. Biomass studies are important for forecasting the productivity, nutrient dynamics fixation of rotation and for efficient management of forest plantations of sustained basis (Negi et al. 1990).

Introduction

Wrightia tinctoria is is commonly known as "Dudhi" is a small deciduous tree of the central Indian forests. It is one of the most economically important tree species. present investigation deals with the studies of growth patterns i.e. growth rates and ratio analysis in different seasons in one year old seedling. forest are the productive systems, they are much capable of fixing solar energy and farming organic matter (Carbohydrate, protein etc.) through the process of photosynthesis. This capacity of photosynthetic carbohydrate production is measured in terms of ovr-dry organic substance, "dry matter" or "biomass". Biomass partitioning amount different plant parts, such as root, stem and leaves, has been decribed as a function of stability and predictability of environment (Gaines et al, 1974).

This study of growth pattern and productivity of dominant tree species is of great importance. It provides information on the energy and material which is stored in different parts of the plant (i.e., shoots, branches, leaves and roots) in the form of organic substances and materials and role of

* Department of Botany, Govt. S.K.N.P.G. College Mauganj Rewa (M.P.)
** Department of Botany, Govt. S.K.N.P.G. College Mauganj Rewa (M.P.)

the species in energy flow. The energy and material stored when passed on to the consumer ogranisms and when decomposed goes to the continuous circulation between biotic and abiotic components in the ecosystem. Dry matter production widely influence the ecological life of the plant, thus is a key function in plant life. (Boysen-Jensen, 1932). The dry matter production estimations provide the basis for further studeis in production Ecology (Lieth, 1968).

Dry matter production helped in the understanding of energy capture through photosysnthesis, a key function of foliage. In a plant species presence of total number of leaves is totally dependent on the quality of site. Poor sites produces less dry matter than good sites, because in poor site the nutrient and water deficiencies in soil, affects the rate of phototsynthesis as well as formation of new tissues.

Soil-oxygen deficiency and low temperature also reduces rate of photosynthesis. High temperature may causes stomatal closure and inhibits photosynthesis. Thus, we get an idea, that unfavourable environmental conditions at a poor site can reduce photosynthetic activity even if the amount of foliage is same a more favourable site.

Present investigation aims to report on growth patterns, dry matter production and accumulation in young seedlings of Wrightia tinctoria.

Materials and Methods

The study also include aspects of growth rates and dry matter production in different plant parts.

(i) Growth Rates - The species was analysed for the growth rates in its one year old seedling, Wrightia seeds were collected in the moth of April-May

From the forest Locality :

The seeds were sown at 5x5 cm. spacing on August in soil beds. The date of germination was considered as the initial date for further study. Periodical removal of weeds and grasses was done to avoid interspecific competition. The seedling were uniformly irrigated at one day interval to maintain the adequate moisture level in the seasons other than rains.

Experiment was initiated in the month of Aug. When the seedling were established and attained a height of 8-10 cm. with two pairs leaf. Five plants were harvested randomly at an interval of one month starting from Aug to next Aug 1995. Seedlings were immediately separated for root, stem and leaf fractions. The whole operation was done in such a manner that roots suffered minimum damage. Dry weight of each fraction was taken after 24 hours of drying in an oven at 800C. After counting the average number of leaves of the plants the leaf area was measured with the help of graph paper. To measure the leaf area, complete square centimeters were conted. The totl leaf area of the plant was obtained by multiplying the average leaf area to the total number of leaves of the plant.

Samples which consisted of root, stem and leaves were subjected to oven drying at 800C for nearly 24 hrs. Woody plants with more than one centimeter diameter were split into small fractions before they were

subjected to drying. The average total weight of root, stem and leaves were taken as indicator of biomass of the standing crop per plant per month.

The growth parameters studied include R.G.R. (Relative growth Rate)., NAR (Net Assimilation Rate) and LAR (Leaf Area Ratio). Radford (1967) has stated that RGR of the Plant at any instant of time is defined as an increase of plant material, per unit plant material present, per unit time. It is a rate which is expressed as g/g/day. The mean R.G.R. was estimated using the following formula :-

$$R.G.R. = \frac{(\log w_2 - \log w_1)}{t_2 - t_1}$$

Where w= Plant dry weight
t = time (harvest interval)

Suffix 1 and 2 denotes first and second harvest respectively.

The NAR is defined as increase of plant matter per unit of assimilatory area per unit of time (Radfored, 1967).

$$NAR = \frac{(w_2 - w_1)(\log A_2 - \log A_1)}{(t_2 - t_1)(A_2 - A_1)}$$

Where W= Plant dry weight
A= Area of the leaf, and
t = time (harvest interval)

Suffix 1 and refer to the first and seond harvest respectively.

The Leaf Area Ratio (LAR) is a simple relationship of leaf area and total plant dry weight. The ratio falls during the leaf fall within deciduous species (Pathak 1969). The formula given by Red ford (1967) is as follows -

$$LAR = \frac{(A_2 - A_1)(\log w_2 - \log w_1)}{(w_2 - w_1)(\log A_2 - \log A_1)}$$

Where W= Plant dry weight
A= Area of the leaf, and
t = time (harvest interval)

Suffix 1 and 2 stands for the two successive harvests.

II- Dry matter production :-

This aspect deals with the studies on dry matter production and accumulation and distribution in different plant part during the year for different seasons. The method has already been discussed.

Result and discussion :

Growth rates like relative growth rate (RGR), Net assimilation rate (NAR) and leaf area ratio (LAR) have been studied in present investigation. The data and the trends for R.G.R., NAR and LAR have been presented in table 1, 2, and 3.

Relative growth rate (RGR) presents the relative growth rate trend in Wrightia tinctoria (Table 1). The growth trend obtained clearly indicates higher RGR value in the month of September and then fall in the preceding months and again it shoots in February and then shows again gradual fall in the proceeding month. One during post monsoon months of October and November than the winter decline is followed by flushes in post winter months February-April and then again fall in the hot summer month.

Net assimilation rate (NAR) is a parameter through which photosynthetic efficiency is measured. It is difined as the rate of increase of dry weight per unit of leaf area (Gregory, 1917). The net result of entire metabolism in a species is also described as net assimilation rate. The NAR value obtained for any species is thus the result of

three physiological process i.e. respiration, photosynthesis and mineral uptake.

Table 2 presents NAR trend in Wrightia tinctoria . The NAR value should gradual increase from the monsoon months on wards in post winter months with peak in February and highest NAR in May than again fall. The high temperature in summer season with leaf fall as well as low temperature in winter months significantly impact N.A.R.

Leaf area Ratio (LAR) express the simple relationship of leaf area and total dry weight. It is a measure of photosynthetic area of a plant.

A perusal of LAR values given in table 3, clearly indicates that it continuously increase from monsoon months to winter months showing a marked peak in the month of October and November and shows a decline in post winter and summer months.

Dry matter production presents (Table 4) data on monthly dry matter production of different plant part i.e. root, stem and leaves. The data indicates that the total biomass obtained in twelve months old seedling was 10.435 g/plant of which contribution of root, stem and leaves was 3.510 g/plant, 2.735 g/ plant and 4.190 g/plant respectively.

The initial value was 0.154 g/plant in one month old seedling and then after a continuous increase in the total dry matter production was noticed. (Table 4).

The leaf biomass was recorded higher than stem and root throughout the year (all the twelve monts). Gain in root biomass was recoded to exceed after third-harvest and the trend was the same for the rest of the period of the year. The stem biomass showed a sudden increase in the month of May by one gram per plant to that of stem biomass gained by the month of April. Stem biomass was recorded less than after 9th harvest (May) and continued to increase in the preceding months, but was always less than root and foliage.

The root biomass was recorded less than one till sixth harvest (Feb) and showed a substantial gain in the month of march and continued to increase but was always less than the foliage biomass. Leaf biomass was recorded less than one till 5th month (Jan) and gained substantial biomass in the 6th month of harvest (Feb) and continued to increase and was alsways higher than root and stem biomass. The trend in the dry matter production in the different plant parts charcterises the species as a fast growing one.

Table 5 present data on root/shoot dry weight ratio in Wrightia tinctoria seedling in relation to age. The root shoot dry weight ratio was higher in the first seven months with a peak value of 1.908 and than showed a continuous decline in the summer month with minimum value of 1.180 in May than again showed in increase in monsoon months. The root/shoot ratio recorded was always more than one except in September and October with an average value of 1.319 for all the twelve months.

Table 1
Monthly distribution of RGR in Wrightia tinctoria

S.No.	Harvesting month	Relative Growth Rate (RGR) (g/g/day)
1	SEP	0.005133
2	OCT	0.009262
3	NOV	0.007958
4	DEC	0.001749
5	JAN	0.003714
6	FEB	0.018124
7	MAR	0.003025
8	APR	0.005330
9	MAY	0.005805
10	JUN	0.002269
11	JUL	0.001542
12	AUG	0.002249

Table 2
Monthly distribution of NAR in Wrightia tinctoria

S.No.	Harvesting month	Net assimilation rate (NAR) (mg/cm2/day)
1	SEP	0.0001558
2	OCT	0.0000279
3	NOV	0.0000346
4	DEC	0.0000100
5	JAN	0.0000253
6	FEB	0.0002753
7	MAR	0.0000881
8	APR	0.0002021
9	MAY	0.0003119
10	JUN	0.0001572
11	JUL	0.0001209
12	AUG	0.0001987

Table 3
Monthly distribution of LAR in Wrightia tinctoria

S.No.	Harvesting month	Leaf area Ratio (LAR) (cm2/day)
1	SEP	173.750
2	OCT	331.028
3	NOV	229.961
4	DEC	174.225
5	JAN	146.718
6	FEB	65.825
7	MAR	34.314
8	APR	26.363
9	MAY	18.608
10	JUN	14.431
11	JUL	12.751
12	AUG	11.319

Table 4
Monthly average dry matter production (g/p) in seedling of Wrightia tinctoria

Age	Month	Leaves	Stem	Root	Total
1	SEP	0.103	0.26	0.25	0.154
2	OCT	0.163	0.65	0.64	0.292
3	NOV	0.217	0.126	0.163	0.506
4	DEC	0.233	0.165	0.173	0.571
5	JAN	0.285	0.213	0.240	0.738
6	FEB	1.113	0.573	0.895	2.581
7	MAR	1.174	0.690	1.317	3.181
8	APR	2.109	0.873	1.615	4.597
9	MAY	2.930	1.805	2.130	6.865
10	JUN	3.125	2.115	2.790	8.03
11	JUL	3.435	2.373	3.125	8.933
12	AUG	4.190	2.735	3.510	10.435

Table 5
Monthly root/shoot dry weight ratio in Wrightia tinctoria.

S.No.	Harvesting month	Root / shoot ratio
1	SEP	0.962
2	OCT	0.984
3	NOV	1.293
4	DEC	1.048
5	JAN	1.126
6	FEB	1.561
7	MAR	1.908
8	APR	1.849
9	MAY	1.180
10	JUN	1.319
11	JUL	1.316
12	AUG	1.238
	AVERAGE	**1.319**

References

Ajay K. Awasthi, Narayan Dutt Tripathi and Parul Sharma, Seed production and seed germination studies in Prosopis juliflora. A fast growing three species.

Awasthi Ajay K., Narayan Dutt Tripathi and Dhirendra Singh 1994. Seed production and seed germination studies in Leucaena leucocepalla and cassia siamia, Env. and Ecol. 12 (i) - 86-88

Boysen -Jensen, P. (1932). Die staff production der paflanzen. Fisher Jem pp. 108.

Gains, M.S., vogt, K.J. Hamrik J.L. and Caldwell, J. (1974). Reproductive strategies and growth patterns in sunflowers (Helianthus). Amer. Nat. 108: 889-894.

Negi, J.D.S., Bahuguna, V.K. and Sharma, D.C. (1990). Biomass production and distribution of Nutrients in 20 years Old Teak and Gamar plantation in Tripura. Indian for. 116 (9): 681-686

Radford, P.J. (1967). Growth analysis formulae-thier use and a bus crop. science 7(3) : 171-174.

Tripathi Dr. Narayan Dutt and Anita Dwivedi, The seed production and seed germination studies in Wrightia tinctoria R.Br. a fast growing tree species, Vindhyayan Sep. 2016 Page. 30-32.

Tripathi Dr. Narayan Dutt and Dr. Anita Dwivedi, Phenological studies of Wrightia tinctoria, Vindhyayan Sep. 2016, Page. 21-23.

Tripathi, Narayan Dutt, (1997). Ecology and Eco-Economics of Wrightia tinctoria R.Br. A Ph.D. thesis, APS. University Rewa. (M.P.)

EFFECT OF DIETS CONTAINING OILSEED MEALS (REPLACEMENT OF FISHMEAL WITH SOYABEAN MEAL) ON GROWTH AND BODY COMPOSITION OF ROHU, LABEO ROHITA (HAMILTON)

❐ Dr.Suhail Ahmad Chadoo*

ABSTRACT

Labio rohita fed diet containing SBM/GNM; or their combination (include CM), with or without FM, as major dietary protein ingredient, could not produce growth comparable to those receiving diet that contained FM as the main dietary protein source. Growth in fish fed SBM based diet (diet II) was marginally (9%) less than those receiving FM based diet (diet-I). However, feed efficiency in terms of FCR and PER was comparable in both the groups. Amongst several plant protein sources, soya bean oil cake is most efficiently utilized by fingerling L. rohita. SBM is reported to partially replace FM in fish diets without reduction in growth and feed efficiency. However few researchers reported total replacement of FM with SBM. L. rohita fed diets III (GNM) and IV (SBM+GNM+CM) attained less weight than those receiving FM based diet (diet I). FCR and PER were also poor in groups receiving the above diets. These results support the findings that fish diets containing plant ingredients as major protein source produce poor growth and feed efficiency than diets containing fish meal as the main dietary protein contributor. However, when oil seed proteins (SBM, GNM and CM) were used in combination with FM at equal inclusion levels (diet V), fish attained significantly better growth, the study is in agreement with the findings of other workers that fish utilize fish meal- free, all plant protein diet less efficiently than diets containing different plant protein ingredients in combination with FM. In spite of reports of poor growth and feed

* Department of Zoology, D.S College, Aligarh

utilization, deoiled cakes of groundnut and rape seed/mustard are widely used by Indian farmers as feed ingredients for Indian major carps in semi intensive culture system.

Key words: Labio rohita, OilseedMeals, Soya BeanMeal, Fishmeal

Introduction

Rising cost and uncertain supply of fishmeal an important component in most aquafeeds has necessitated the work for its replacement with alternate protein sources whose production can keep pace with increasing demand for aquaculture feed (Olsen et.al., 2007; Umar and Ali 2009; Chebbaki, 2010; Saadiah et.al., 2011). The use of plant proteins seems most appropriate and significant as such proteins are likely to be more consistently available and cheaper to produce than fish meal/other animal proteins (Kalla and Garg 2004; Gatlin et.al., 2007). Selection of alternate protein sources to replace fish meal largely depends on their availability and consistent supply in a particular region.

Plant proteins have been extensively used in combination with fishmeal in aquafeeds (Suarez et. al., 2009). Information on the use of all plant protein diet is, however, limited (Biswas et. al., 2011; Lim et. al., 2011). Although oilseeds are more likely to replace fishmeal, the antinutritional compounds like trypsin inhibitors, phytic acid, glucosinolates, hemagglutinins, saponins, tannins etc. and some limiting essential amino acids present in them often render a limit to the level of their incorporation in fish diets.

Rapeseed/canola meal, even though a good source of quality protein, finds limit to its level of inclusion in aqua feed due to the presence of glucosinolates. Several workers have reported the use of rapeseed/canola meal as a potential ingredient in aqua feeds (Hansen et. al., 2007; Cheng et .al., 2010). Higgs et.al. (1995) concluded that with the exception of one study, rapeseed meal (regardless of glucosinolate content) and canola meal can comprise at least 28% of dry matter or protein in diets for common carp and tilapia.

In many parts of India, groundnut (peanut) is used as dietary protein source in fish feed. However, there are relatively few scientific reports on the incorporation of groundnut meal in fish diets (Natasha and Souza, 2006; Yigit et. al., 2010).

Review of Literature

Protein is the most expensive component in fish feeds accounting for up to 64% of feed cost in high energy extruded diets (Goddard, 1996). Fish meal owing to its nutritional quality is an important component of feeds for most of the cultivable fish species. Rising cost, uncertain supply and growing social and environmental concerns regarding its susceptibility (Nayleretal., 2000; Tacon et al., 2006; Thongrod, 2007) has necessitated investigations to identify potential alternative protein sources whose production can keep pace with increasing demand of feeds for aquaculture (Tacon and Barg, 1998; Hardy, 2000; Li et al., 2000; Nayler et al., 2000;

Ashraf et al., 2008). As plant protein sources are more consistently available and cheaper to produce than fish meal/other animal proteins, their use in aqua feed appears most appropriate and significant (Jauncey, 1982; Sugiura and Hardy, 2000).

Protential oil seed proteins used in fish feeds include soya bean, groundnut, canola/ rapeseed, cotton seed, sunflower and sesame. Oil seed meals have been used with variable success by several workers to replace fish meal in diets for various fish species (Cowey et al., 1971; Reigh and Ellis, 1992; Viyakarn et al., 1992; Webster et al., 1992b; Khan and Jafri, 1994; Satoh et al., 1998; Fagberno and Davies, 2001; Abery et al., 2002; Umar and Ali 2009). Amongst this soya bean meal has been successfully used for total replacement of fish meal in the diets for channel cat fish, Ictaluruspunctatus (Belal and Assens, 1995) and blue cat fish, Ictalurus furcatus (Webster et al., 1995 a,b).

Materials and Methods

Experimental trial :

A 56 day growth trail was conducted to test the efficacy of oilseed meals, with or without fishmeal. L. rohita (4.6 ± 0.2 cm; 2.59 ± 0.04g), from the acclimated lot, were stocked in indoor polyvinyl flow through (1-1.5 L min-1) tanks (55 L water capacity) at the rate of 25 fish/tank with three replications per treatment. A second growth trial was conducted for 70 days to observe the effects of gradual replacement of FM with SBM in the diets for the same fish (6.8 ± 0.4 cm; 4.08 ± 0.029) details of diets, feeding method water quality and water exchange rate are described elsewhere (General methodology). Natural photoperiod was maintained during the trials. Water temperature and dissolved O2 during the period averaged 25.9 ± 1.4oC and 6.42 ± 0.93 ppm respectively.

Growth parameters and conversation efficiencies were calculated using standard definition (Tabachek, 1986; Hardy 1989; Hanley, 1991; Kim and Kaushik, 1992) described elsewhere.

Experimental diets :

Details of ingredients and method of diet preparation are described under G. methodology. Five isonitrogenous (35% C.P) and isocaloric (3.75 kcal g-1 metabolisable energy) diets were formulated to observe the effects of oil seed meals, with or without FM, in diets for L.rohita. Details of ingredients and proximate composition of the diets are given in table 1, and calculated amino acid composition (NRC, 1993) in table 2. For the second growth trial, six isonitrogenous (35% C.P) and isocaloric (3.75 kcal g-1 metabolisable energy) diets were formulated using different levels of FM and SBM. Ingredient and proximate composition of the diets are given in table 3, and calculated amino acid composition in table 4.

Analytical methods:

Proximate composition of feed ingredients, experimental diets and fish carcass was determined using standard methodology (AOAC, 1995). Details of analytical technology are given in General Methodology.

Statistical analysis:

Details of statistical analysis are described elsewhere (General Methodology).

Observation :

A 56 day feeding trial was conducted to evaluate the growth, feed utilization and body composition of fingerling rohu, Labeorohita (4.6 ± 0.2cm; 2.59 ± 0.04g), fed diets containing oil seed meals with or without fishmeal. Five isonitrogenous (35% CP) and isocaloric (3.75 kcal g-1Metabolisable energy) diets were formulated. Fish were stocked in 55litre water capacity indoor polyvinyl flow through (1-1.5 Lmin-1) tanks, in triplicate, and fed twice daily (900 and 1700 hrs) to apparent satiation.

Percent live weight gain and specific growth rate (SGR %) were significantly higher (P<0.05) in fish fed diet I (FM), followed by fish receiving diet II (SBM) and V (FM+SBM+GNM+CM). Fish fed diet III (GNM) and IV (SBM+GNM+CM) exhibited significantly lower values for these parameters. Feed conversion ratio (FCR) was better (P<0.05) in fish fed diets I and II protein efficiency ratio (PER) followed the pattern similar to that of FCR. Proximate composition of fish carcass showed that crude protein was higher (P<0.05) in fish fed diets I, II and V. Fish fed diet IV showed higher (p<0.05) fat content, while lower fat was found in fish fed diets I and II. Maximum (p<0.05) ash content was obtained in fish fed diet 3 and minimum in fish fed diet II. Moisture content did not vary significantly (p>0.05) among dietary groups. Results of 70 day growth trial conducted to observe the effects of gradual replacement of FM with SBM in diets for fingerling Labeo rohita revealed comparable (P>0.05) growth, feed utilization and carcass composition among fish of different dietary groups. The finding of the study indicates that Soya bean meal was most efficiently utilized and could totally replace fish meal in the diets for fingerling Labeo rohita when supplemented with methionine and fortified with minerals.

Result

Growth performance and feed utilization in finger ling L. rohita fed diets containing oil seed meals with or without FM are presented in table 5. Percent live

weight gain and SGR% were significantly (p<0.05) higher in fish diet I (FM), followed by fish receiving diets II (SBM) and V (FM+SBM+GNM+CM). Fish fed diets III (GNM) and IV (SBM+GNM+CM) exhibited significantly lower values for these parameters. Feed conversion ratio (FCR) was better (p<0.05) in fish fed diets I+II. Protein efficiency ratio (PER) followed the pattern similar to that of FCR.

Carcass composition of fish is given in table 6. Crude protein was higher (p<0.05) in fish fed diets I, II and V. Fish fed diets III, IV and V showed higher (p<0.05) fat content, while lower fat was found in fish feed diets III and minimum in fish fed diets II. Moisture content did not vary significantly (p>0.05) among dietary groups.

Results of the trial conducted for gradual replacement of FM and SBM in diets for fingerling L. rohita are presented in table.7. Growth and feed utilization in fish fed diets with varying levels of FM and SBM were comparable (p>0.05). Carcass composition did not show significant (p>0.05) variation among different dietary groups (table-8).

References

1. Abery N.W., Gunasakera R.M. and De Silva S.S. (2002): Growth and nutrient utilization of Murray and Maccullochella Peelii (Mitchel) fingerlins fed diets with varying levels of soya bean meal and blood meal, Aquaculture Research, 33: 279-289.

2. Ashraf M., Ayub M. and Rauf A. (2008): Effect of different feed ingredients and low temperature on diet acceptability, growth and survival of Mrigal, Chrrhinus mrigala fingerlings. Pakistan. J. Zool., 40(2): 83-90.

3. Belal I.E.H. and Assem H. (1995): Substitution of soya bean meal and oil for fish meal in practical diets fed to channel catfish, Ictalurus punctatus (Rafinesque): Effects on body composition, Aquaculture Research, 26: 141-145.

4. Biswas A., Biswas B.K., Ito J., Takaoka O., Yagi N., Itoh S. and Takii K. (2011): Soybean meal can partially replace enzyme-treated fish meal in the diet of juvenile Pacific bluefin tuna Thunnus orientalis. Fisheries Sciences, 77: 615-621.

5. Chebbaki K. (2010): Effect of fish meal replacement by protein sources on the extruded and pressed diet of European sea bass juvenile (Dicentrarchus labrax). Agric. Biol. J. North America, 1: 704-710.

6. Colburn H.R., Walker A.B., Breton T.S., Stilwell J.M., Sidor I.F., Gannam A.L. and Berlinsky D.L. (2012): Partial replacement of fishmeal with soybean meal and soy protein concentrate in diets of Atlantic cod. North American Journal Aquaculture 74: 330–337.

7. Cowey C.B., Pope, J.A., Adron, J.W. and Blair, A. (1971). Studies on the nutrition of marine flat fish: growth of plaice Pleuronectes platessa on diets containing proteins derived from plants and other sources. Marine Biology, 10, 145-153

8. Fagbenro, O.A. and Davies, S.J. (2001). Use of soya bean flour (Dehulled, Solvent-extracted soyabean) as a fish meal substitute in practical diets for African catfish, Clarias gariepinus (Burchell 1822): growth, feed utilization and digestion. Journal of Applied Ichthyology, 17, 64-69.

9. Goddard, S. (1996). Feed management in Intensive Aquaculture. Champan and Hall, London, UK.

10. Hanlay, F. (1991).Effects of feeding supplementary diet containing varying levels of lipid on growth, food conversion and body composition of N. tilapia, O. niloticus (L.) Aq., 93, 323-334.

11. Hardy, R.W. (1989). Diet preparation. In: Fish Nutrition (Halver, J.E. ed.), pp. 475-548. Academic Press Inc; San Diego, CA, USA.

12. Hardy, R.W. (2000). Fish feeds and nutrition in the new millennium. Aquaculture Magazine, 26, 85-89.

13. Jauncey K and Ross B. (1982). A guide to Tilapia Feeds and Feeding. Institute of Aquaculture University of Stirling, Stirling.

14. Jauncey, K. (1982 a). Carp (C. capio L.). Nutrition - a review. In: Recent Advances in Aquaculture (Muir, J.F and Roberts, R.J. eds.), pp. 215-263. Croom Helm, London, U.K.

15. Khan, M.A and Jafri, A.K (1994). Replacement of fish meal with soya bean meal in diets formulated for fingerling carp, L. rohita. (Ham.) In: proceedings of the third

Asian Fisheries Forum, (Chou, L.M., Munro, A.D., Lam, T.J., Chen, T.W., Chenog, L.K.K., Ding, J.K., Hooi, K.K., Khoo, H.W., Phang, V.P.E., Shim, K.F. and Tan, C.H. eds.), PP.663-666. Asian Fish Society, Manila, Philippines.

16. Khan, N., Ashraf, M., Qureshi, N. A., Sarker, P. K., Vandenberg, G. W. and Rasool, F. (2012). Effect of similar feeding regime on growth and body composition of Indian major carps (Catla catla, Cirrhinus mrigala and Labeo rohita) under mono and polyculture. African Journal of Biotechnology, 11(44): 10280-10290.

17. Kim, J.D. and Kasushik, S.J. (1992). Contribution of digestible energy from carbohydrates and estimation of protein/ energy requirements for growth of rainbow trout (O. mykiss). Aquaculture, 106, 161-169.

18. Li, M.H., Robinson, E.H. and Hardy, R.W. (2000). Protein sources for feeds. In: Encyclopedia of Aquaculture (Stickney, R.R. ed.), PP. 688-695. John Wiley and Sons Inc., New York.

19. Lim, S. J., Kim, S. S., Ko, G. Y., Song, J. W., Oh, D. H., Kim, J. D., …Lee, K. J. (2011). Fish meal replacement by soybean meal in diets for tiger puffer, Takifugurubripes. Aquaculture, 313, 165-170.

20. Naylor R.L., Goldburg, R.J., Primavera, J.H., Kautsky, N., Beveridge, M.C.M., Clay, J., Folke, C., Lubchenco, J., Mooney, H. and Troell, M. (2000). Effect of Aquaculture onWorld Fish Supplies. Nature, 405, 1017-1024.

21. Reigh, R.C. and Ellis, S.C. (1992). Effects of dietary soyabean and fish protein ratios on growth and body composition of red drum (Sciaenopsocellatus) fed isonitrogenous diets. Aquaculture, 104, 279-292.

22. Suárez, J.A., Gaxiola, G., Mendoza, R., Cadavid, S., Garcia, G., Alanis, G., Suárez, A., Faillace, J. and Cuzon, G. (2009). Substitution of fish meal with plant protein sources and energy budget for white shrimp Litopenaeusvannamei (Boone, 1931). Aquaculture, 289:118-123. doi: 10.1016/ j.aquaculture.2009.01.001

23. Sugiura, S.H, and Hardy R.W (2000). Environmentally friendly feeds in encyclopedia of Aquaculture (Stickney, R.R, ed.). pp. 299-310. John Willey and Sons Inc., New York, USA.

24. Tabachek, J.L. (1986). Influence of dietary protein and lipid levels on growth, body composition and utilization efficiencies of Arctic charr, Salvelinus alpinus L. Journal of Fish Biology, 29, 139-151.

25. Tacon, A.G.J. Hasan, M.R. and Subasinghe, R.P. 2006. Use of fishery resources as feed inputs for aquaculture development: trends and policy implications. FAO Fisheries Circular No. 1018, Rome, FAO.99 pp.

26. Tacon, A.G.J., Barg, U.C. (1998). Major challenges to feed development for marine and diadromous finfish and crustacean species In: Tropical Mariculture (De Silva, S.S. ed.). pp. 171-207. Academic Press New York, USA.

27. Thongrod, S. 2007. Analysis of feeds and fertilizers for sustainable aquaculture development in Thailand. In M.R. Hasan, T. Hecht, S.S. De Silva and A.G.J. Tacon, eds. Study and Analysis of Feeds and Fertilizers for Sustainable Aquaculture Development.

pp. 309-330. FAO Fisheries Technical Paper. No. 497. Rome, FAO.510pp.

28. Umer K, Ali M (2009). Replacement of fishmeal with blend of canola meal and corn gluten meal, and an attempt to find alternate source of milk fat for rohu (Labeo rohita). Pak. J. Zool. 4: 469-474.

29. Webster, C.D., Tidwell, J.H., Tiu, L.S. and Yancey, D.H (1995b). Use of soya bean meal as partial or total substitute of fish meal in diets for blue catfish (I. punctatus). Aquaculture Living Research, 8, 379-384.

30. Yigit, M., Ergün, S., Türker, A., Harmantepe, B., and Erteken, A. (2010).Evaluation of soybean meal as a protein source and its effect on growth and nitrogen utilization of black sea turbot (Psetta maeotica) Juveniles. Journal of Marine Science and Technology, 18(5), 682-688.

31. Zhou, Q.C., Mai, K.S., Tan, B.P., Liu, Y.J., 2005. Partial replacement of fishmeal by soybean meal in diets for juvenile cobia (Rachycentron canadum). Aquaculture Nutrition 11, 175–182.

Table : Ingredients & Proximate composition of diets used for the first experiment trial on L. rohita.

Ingredients	Diets				
(g/100g diet)	I	II	III	IV	V
Tuna fish meal	50.90	-	-	-	15.95
Soya bean meal	-	61.69	-	23.31	15.95
Groundnut meal	-	-	68.25	23.31	15.95
Canola meal	-	-	-	23.31	15.95
Corn flour	17.00	11.71	8.39	7.65	10.76
Rice bran	17.00	11.71	8.39	7.65	10.76
Vit.premix[a]	1.00	1.00	1.00	1.00	1.00
Min. premix [b]	1.50	1.50	1.50	1.50	1.50
Oil premix (2:1 corn & cod liver oil)	5.80	6.48	8.68	8.32	7.49
Carboxylmethly-Cellulose	2.00	2.00	2.00	2.00	2.00
Alpha-cellulose	4.80	4.07	1.87	2.21	3.04
(Proximate comp. %) [c]					
Crude protein	34.64±0.30	34.34±0.38	35.04±0.15	35.44±0.25	34.54±0.17
Crude fat	8.79±0.15	7.98±0.16	11.04±0.12	10.26±0.12	10.04±0.18
Ash	10.04±0.23	7.59±0.11	8.45±0.19	8.24±0.12	8.54±0.15
Crude fibre	5.66±0.22	6.74±0.37	11.09±0.47	9.58±0.30	8.14±0.40
Nitrogen free extract	40.91	43.35	34.38	36.48	38.74
Metabolisable energy $(kcalg^{-1})$[d]	3.76	3.76	3.74	3.76	3.78

Halver (1989); bAgrimin (Agrivet farm care, Glaxo, India Ltd, Mumbai, India) contains copper 312 mg, cobalt 45mg, magnesium 2.114g, iron 979mg, zinc 2.13g, iodine 156mg, DL-methionine 1.92g, L-lysine HCL 4.4g, calcium 30% & phosphorous 8.25% in 1kg; cResults are mean of triplicate estimations ± SE; d calculated.

Table 2.Amino acid composition* of diets used for the first experimental trial on *L. rohita*.

Amino acids g/100g dietary protein	Diets I	II	III	IV	V
Arginine	6.10	7.61	12.86	8.79	8.12
Histidine	3.05	2.59	2.99	2.73	2.86
Isoleucine	4.33	4.51	3.99	4.06	4.22
Leucine	7.17	7.90	7.66	7.35	7.48
Lysine [a]	6.77	6.25	3.84	5.21	5.81
Methionine	2.52	1.49	1.17	1.44	1.80
Cystine	0.97	1.65	1.39	1.43	1.30
Meth+cyst[b]	3.46	3.11	2.53	2.84	3.06
Phenylalanine	3.98	5.12	5.59	4.85	4.69
Tyrosine	3.11	3.75	4.99	3.72	3.61
Threonine	4.11	3.99	3.77	3.96	4.03
Tryptophan	1.09	1.48	1.13	1.23	1.21
Valine	4.93	5.36	4.31	4.82	4.92

*Calculated Values, based on tabular values of feed ingredients (NRC, 1993)

a, b Required for fingerling L. rohita (g/100g protein)

[a] lysine= 5.68 (Murthy & Varghese, 1997); [b] Methionine + cystine = 3.23 (Murthy & Varghese 98).

Table 3. Ingredients & proximate composition of diets used for the 2nd experimental trial on *L.rohita*.

Ingredients g/100g diet	Diets I	II	III	IV	V	VI
Tuna Fish Meal	50.90	40.00	30.05	19.35	10.00	-
Soya bean Meal	-	14.10	26.10	37.80	49.40	61.40
Corn flour	17.00	12.50	12.50	12.50	12.50	12.50
Rice bran	17.00	12.50	12.50	12.50	12.50	12.50
Vitamin Premix[a]	1.50	1.501.50	1.501.50	1.50		
Mineral Premix[b]	2.0	2.0	2.0	2.0	3.00	3.00
Oil premix (2.1 corn & Cod liver oil)	6.06	5.105.85	6.106.60	6.75		
Carboxyl methyl cellulose	2.00	2.002.00	2.002.00	1.90		
L methionine[b]	-	-	0.250.25	0.45	0.45	
? - cellulose	3.45	10.30	8.006.00	2.05	-	
Proximate composition[c]						
Crude protein	34.60±0.55	34.78±0.28	35.13±0.17	34.56±0.15	36.00±0.20	35.07±0.39
Crude fat	9.34±0.17	8.02±0.22	7.27±0.39	8.21±0.10	9.19±0.13	9.22±0.12
Ash	10.35±0.31	9.17±0.12	8.97±0.09	8.86±0.4	9.41±0.11	9.25±0.5
Crude fibre	5.92±0.21	5.30±0.46	5.55±0.38	5.86±0.57	6.40±0.41	6.72±0.27
Nitrogen free extract	39.79	42.73	43.08	42.51	39.00	39.74
Metabolisable energy[d]	3.76	3.763.73	3.763.78	3.77		

[a]Halver (1989);[b]Loba chemical Pvt. Ltd. Mumbai India; [C]Results are mean of triplicate estimation ± SE; [d] Calculated

Table 4. Amino acid composition of diets used for the second experimental trial on *L. rohita*.

Amino acid g/100g diets protein	Diets I	II	III	IV	V	VI
Arginine	6.19	6.47	6.69	7.09	7.24	7.53
Histidine	3.09	2.99	2.88	2.84	2.68	2.59
Isoleucine	4.37	4.40	4.36	4.46	4.39	4.43
Leucine	7.20	6.22	6.32	7.58	7.61	7.76
Lysine[a]	7.80	6.71	6.50	6.49	6.28	6.14
Methionine	2.51	2.27	2.93	2.78	3.06	2.88
Cystine	0.98	1.12	1.22	1.38	1.48	1.62
Methionine+ cystine[b]	3.48	3.37	4.14	4.15	4.54	4.49
Phenylalanine	3.81	4.20	4.39	4.63	4.79	5.02
Tyrosine	3.12	3.22	3.30	3.48	3.54	4.66
Threonine	4.12	4.07	3.99	4.03	3.94	3.92
Tryptophan	1.10	1.18	1.20	1.30	1.36	1.45
Valine	4.95	5.01	5.07	5.18	5.19	5.29

Calculated Values, based on tabular values of feed ingredients (NRC, 1993)

[a, b] Required for fingerling *L.rohita* (g/100g protein)

[a]lysine= 5.68 (Murthy & Varghese, 1997) [b] Methionine &cystine= 3.23 (Murthy & Varghese 98).

Table 5. Growth performance and feed utilization in *L. rohita* fed experimental diets. (First trial)

	Diet				
	I	II	III	IV	V
Initial Body Wt. (g)	2.60±0.06	2.50±0.05	2.71±0.06	2.59±0.10	2.62±0.04
Final Body Wt. (g)	10.17±0.12	9.15±0.06	7.59±0.07	7.77±0.09	9.43±0.11
Live Wt. Gain (%)	291.5±8.52[a]	266.1±6.57[b]	180.3±5.16[c]	200.5±7.00[c]	261.9±4.17[b]
Specific Growth Rate (%)	2.44±0.04[a]	2.32±0.03[b]	1.84d±0.03[d]	1.96±0.04[c]	2.30±0.02[b]
Feed Conversion Ratio[1]	1.53±0.04[c]	1.53±0.04[c]	1.93±0.03[a]	1.84±0.02[a]	1.63±0.01[b]
Protein Efficiency Ratio	1.89±0.04[a]	1.90±0.04[a]	1.48±0.03[c]	1.53±0.01[c]	1.78±0.02[b]

Results are mean of three tanks/treatment; Mean ± SE values with different letters in each row are significantly ($p<0.05$) different; [1]dry to wet basis.

T6. Carcass composition of *L. rohita* fed experimental diets (first trial).

	Diets					
	I	II	III	IV	V	initial
Moisture	77.45±0.22[a]	77.90±0.92[a]	77.20±0.55[a]	76.90±0.68[a]	77.05±0.8[a]	80.90±0.35
Crude protein[1]	70.60±0.44[a]	69.50±0.76[a]	65.10±0.09[b]	66.85±0.05[b]	70.15±0.90[a]	64.90±0.18
Crude fat[1]	16.25±0.50[b]	15.99±0.10[b]	17.65±0.15[a]	17.95±0.05[a]	17.55±0.40[a]	13.28±0.14
Ash[1]	8.58±0.15[b]	7.48±0.15[c]	9.82±0.30[a]	8.65±0.39[b]	8.09±.22b[c]	12.04±0.22

Results are mean of three tanks/treatment; Mean ± SE values with different letters in each row are significantly ($p<0.05$) different; [1]dry weight basis.

Table 7. Growth performance and feed utilization in *Labeorohita* fed experimental diets (second trial).

	Diets					
	I	II	III	IV	V	VI
Initial body wt. (g)	4.05±0.09	4.10±0.14	4.00±0.06	4.00±0.05	4.10±0.05	4.15±0.08
Final body weight (g)	12.16±0.18	12.66±0.28	12.82±0.56	12.07±0.32	12.60±0.42	12.33±0.36
Live weight gain (%)	200.5±6.43[a]	209.1±3.83[a]	220.3±11.13[a]	216.7±2.64[a]	207.2±6.68[a]	197.4±8.99[a]
Specific growth rate (%)	1.57±0.03[a]	1.61±0.02[a]	1.66±0.05[a]	1.64±0.01[a]	1.60±0.03[a]	1.56±0.04[a]
Feed conversion ratio[1]	2.22±0.02[a]	2.17±0.01[a]	2.13±0.11[a]	2.05±0.04[a]	2.17±0.07[a]	2.22±0.06[a]
Protein efficiency ratio	1.30±0.02[a]	1.33±0.01[a]	1.35±0.07[a]	1.42±0.03[a]	1.31±0.04[a]	1.29±0.04[a]

Results are mean of three tanks/treatment; mean ± SE values with similar letter in each row are insignificantly ($p>0.05$) different; [1]dry to wet basis.

Table 8. Carcass composition of *L. rohita* fed experimental diets (second trial).

	Diets						
	I	II	III	IV	V	VI	Initial
Moisture	76.82±0.43[a]	76.14±0.18[a]	75.62±0.56[a]	75.04±0.40[a]	77.05±0.96[a]	77.15±0.22[a]	79.76±0.26
C.protein[1]	69.08±0.30[a]	68.94±0.57[a]	69.54±0.25[a]	70.12±0.78[a]	69.05±0.70[a]	70.34±0.25[a]	65.84±0.65
Crude fat[1]	17.36±0.40[a]	17.26±0.52[a]	18.02±0.58[a]	17.90±0.06[a]	18.42±0.56[a]	17.52±0.44[a]	12.42±0.12
Ash[1]	7.96±0.16[a]	7.76±0.32[a]	7.46±0.38[a]	7.55±0.30[a]	7.66±0.20[a]	7.22±0.20[a]	11.18±0.12

Results are mean of triplicate estimations; mean ± SE values with similar letters in each row are insignificantly ($p>0.05$) different; [1]Dry weight basis.

ISSN : 2350-0441

POLYGRAPHIC TEST/LIE DETECTOR TEST : AS OVERVIEW

❑ **Dr. Neelesh Sharma***

ABSTRACT

The core debate arising out of lie-detector test or Polygraphic test is its legality of using inhuman, degrading treatment/methods to confess the crime . The interrogation of the accused plays a vital role in collecting evidence. If the accused remain silent and does not answer any question to investigating agencies than to what extent the investigating agencies can coerce or force the accused to reveal information. In a civilized world police torture is inacceptable. Even in the court of law, confession made to the police is not valid. Now the question is "can police use Polygraphic test to extract information from the accused"? There are less to support it and many others rejecting it as a clear violation of Constitution provisions. The view points looks into resent Supreme Court Judgements and Scientific basis of Polygraphic test.

1. INTRODUCTION :

Often endorsed as an antitode to "3rd degree method", the polygraphic test is being increasingly used bu the police in India to collect evidence in Criminal cases.

Polygraphic test is a process which measures several physiological indices such as, Pulse,Blood pressure, Respiration and Skin conductivity, while the subject is asked and answer a series of questions. This test is based on the principle of psychosomatic interaction of an individual means that psychologically, a change take place in person who consciously holds its feelings.

2. SPECIAL FEATURES :

- It was basically designed to record Blood pressure, and change in the pulse rate.
- It is conducted by various probes attached to the body of the person who is interrogated by an expert.

* Assistant Professor (law), Career College of Law, Govindpura, BHEL, Bhopal. pin – 462023. Ph No. 08989208445. Email No. neeleshnavsharma@gmail.com

- The variation in the pulse rate , heart rate, the skin conductance and blood pressure etc. are measured.

3. QUESTIONING TECHNIQUES IN POLYGRAPHIC TEST :

The questioning part require repetition in the form of "yes" or "no". Generally, the examiner practice 3 types of questioning techniques in the intervals of 20 seconds each.

A. Irrelevant Questions: In it ,several irrelevant questions are framed which have no relation with the case. The relevant questions are inter-posed in between irrelevant questions to draw stressed response from a guilty subjects.

B. Control questions :These questions are posed among the relevant and irrelevant questions. They do not directly relate to the crime , but to a similar situation in which his answer may have a feeling of concern with respect to either its truthfulness.

C. Peak of tension questions : It is framed when some of the important details of the offence in question are not made known to the subject. The test questions in this case are framed in such a way that only one question will have bearing upon the matter and all other coming close to the guilty knowledge.

The series of questions framed are first read to the subject and later they are administered with the instrument attached . During the first reading if the subject has no knowledge on the pertinent question, then no tension is built up. But it has the knowledge than as the question approaches, he is likely to experience tension and hence the term "peak of tension".

4. POLYGRAPHIC TEST IN INDIAN PERSPECTIVE :

The main legal provisions which governs the expert evidence (polygraphic test)are in Indian Constitution, Cr.pc 1973, Evidence act 1872.

On may 5 .2010 , the Supreme court of India in Smt. Selvi V/S Karnataka, declares - Brain mapping, Lie-Detector test (polygraphic test), Narco Analysis, to be unconstitutional, violating article 20(3) of Fundamental Right. These techniques connot be conducted forcefully and require consent for the same.

When they are conducted with consent, the material so obtained is regarded as evidence during trial of cases according to section 27 of Evidence Act.

In our Criminal Procedure Code 1973, the legislature has guarded a citizens right against self incrimination. Section 161(2) states that every person is bound to answer truthfully all questions.........put to him/her by a police officer, other than questions the answer to which would have a tendency to expose that person to a criminal charge.

Evidently, it has been left to the person being interrogated to decide whether the answer to a question would be self incriminated and if so, to withhold answer and keep silent.

Section 45 of the Indian Evidence Act 1872, explains the opinion of experts, as admissible in the court of law, however, it is silent on the complicated questions of Narco and Polygraphic test. On this complicated issue Our Supreme Court said that even when the subject has given consent to undergo any of these tests, the test results by themselves

cannot be admitted as evidence because the subject does not exercise conscious control over the responses during the tests.

However, any information are material that is subsequently discovered with the help of Polygraphic test can be admitted in accordance with sec tion 27 of Evidence Act 1872.

5. CONCLUSION :

Polygraphic test involves the fundamental question relating to the rights of an accused and also the Human Rights.

The legal positions of applying this techniques raises genuine issues like encroachment of an individuals rights, liberties, and freedom.

This act will be considered as a blatant violation of Article 20(3) of the constitution . It also goes against the maxim " Nomo Tenetur se IpsumAccusare", which means no man not even an accused himself can be compelled to answer any question, which may tend to prove him/her guilty of Crime, he has been accused of.

6. SUGGESSIONS/GUIDELINES :

Following are some suggestions which is prepared with the help of Human Right commission guidelines 2010, for Lie-Detector Test:

- No Lie- Detector Test should be administered except on the basis of consent of accused.
- If the accused volunteers for lie-detector test, he should be given access to a lawyer and the physical, emotional and legal implication of such a test should be explained to him by the police.
- The consent should be reached before the judicial magistrate.
- During the hearing before the magistrate, the person alleged to have agreed should be duly represented by a lawyer.
- At the hearing, the person in question should also be told in clear term that the statement that is made shall not be a "confessional" statement to the magistrate, but will have the status of a statement made to the police.
- The magistrate shall consider all factors relating to the detention including the length of detention and the nature of interrogation.
- The actual recording to lie-detector test shall be done in an independent agency (such as hospital) and to be conducted in the presence of lawyer.
- A full medical and factual narration of manner of the information received must be taken on record.

7. REFERENCES :

1. Selvi v/s State of Karnataka,AIR S.C. judgement dated 05.05.2010. www.judic.nic.in.
2. 22nd report of Dr. Ramanandan memorial meetingon "Narco-Analysis,forensic,and democratic rights", conducted by NGO Peoples Union for Democratic Rights.
3. Article of parminderPindu in Law Z magazine.
4. Dr. J.N. Pandey "constitution of India".
5. Dr. N.V. Paranjpe "Criminal procedure code -1973".
6. Dr. N.V.Paranjpe "Indian Evidence Act 1872".

SHODH CHETNA – YEAR-3
(JAN. TO MARCH, 2017) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

'SYNTHESIS, CHARACTERIZATION AND BIOLOGICAL ACTIVITY OF AN ADDUCT DERIVED FROM THIOTRITHIAZYL CHLORIDE AND UREA

❑ Anjul Singh*

ABSTRACT

New adduct of thiotrithiazyl chloride have been prepared with urea and characterized by elemental analysis and spectral (electronic, IR ^{1}H NMR, EPR, FAB mass) data. On the basis of spectroscopic studies, it was suggested that thiotrithiazyl chloride binds to the nitrogen of urea through its electropositive sulphur. On the basis of mass spectrum the adduct was formulated as $(S_4N_3NHCONH_2)_2$.

INTRODUCTION

Thiotrithiazylchloride(1-2) is the most stable cyclic derivative of tetrasulphurtetranitride(3-4). It has the tendency to combine with transition metal ions(5-8) as well as organic compounds. The reaction of S_4N_3Cl with triphenylphosphine(9) and thiourea(10) have already been studied. The literature survey shows that the reaction of S_4N_3Cl with urea have not been carried out so far. This prompted us to undertake an investigation on the reacting tendency of thiotrithiazyl chloride with urea.

EXPERIMENTAL:

All the chemicals used are of AR grade. The S_4N_3Cl was prepared by the reaction of S_4N_4 with acetyl chloride as reported (loc.cit.) The elemental analysis was done using CHN microanalyser and also gravimetrically using standard methods(11). Mass spectrum was recorded on Jeol SX 102 FAB mass spectrometer. The U.V., I.R. spectra were carried out on Perkin Elmer Lambda 15 UV/VIS spectrophotometer and shimadzu 8201 PC IR / Hitachi spectrometer respectively. NMR spectrum was recorded on Bruker DRX 300 NMR spectrometer. The M.P. was determined on electrical M.P. apparatus and are uncorrected.

SYNTHESIS OF AN ADDUCT

Dry finely powdered S_4N_3Cl was refluxed with urea in DMF for 6hr. The brown coloured product was filtered, washed

* Department of Chemistry, D.S. College, Aligarh (Dr. R.A. Universtity, Agra) India

with DMF and ether and kept in vacuum. The adduct is insoluble in water but soluble in polar organic solvent DMSO. The adduct decomposes above 280°C. Analytical data% found (calculated) C; 5.24 (5.21), H; 1.31 (1.30), N; N 30. 50 (30.43), S; 55.89 (55.65) and molecular weight 458 (460.0) assign the product as $(S_4N_3NHCONH_2)_2$.

RESULT AND DISCUSSION:

The adduct of S_4N_3Cl with urea estimated qualitatively and quantitatively. Analytical data shows that urea forms the 1 : 1 adduct withS_4N_3Cl. On the basis of elemental analysis and its mass spectrum, the complex was formulated as $(S_4N_3NHCONH_2)_2$.

Mass spectrum

The FAB mass spectrum of the adduct shows the molecular ion peak at m/z = 458.0 which is in close agreement with the experimentally determined molecular weight (460.0). The schematic diagram of an adduct showing the important m/z peaks may be shown as:

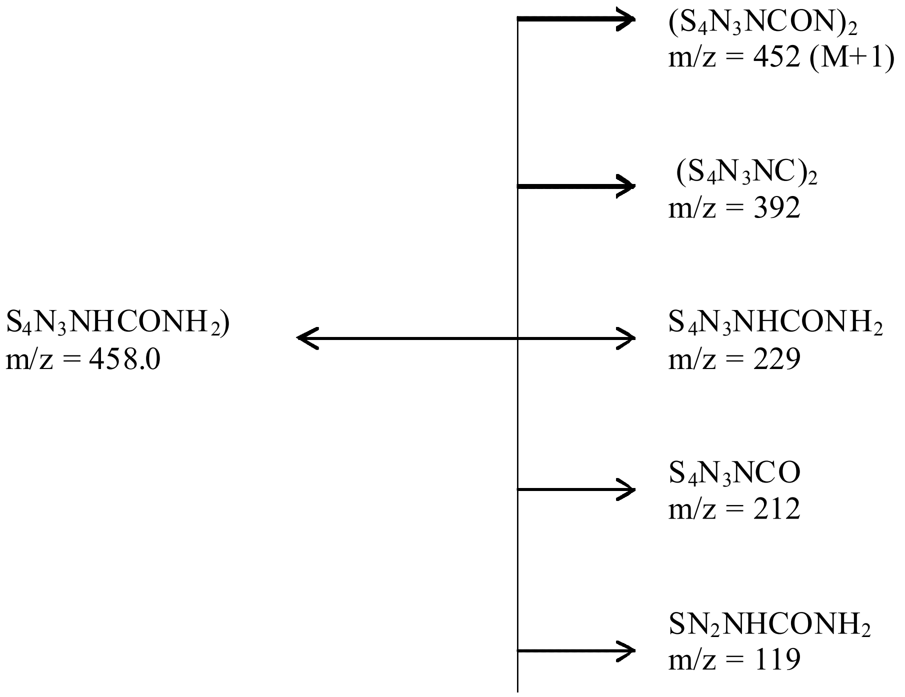

On the basis of above fragments, the adduct may be formulated as $(S_4N_3NHCONH_2)_2$. Thus the mass spectrum data supports the results obtained gravimetrically and shows that the adduct formed, is a dimer. The chemical reaction may be represented by following equation.

$$2\ S_4N_3Cl + 2NH_2CONH_2 \xrightarrow[\text{Reflux, 6h}]{\text{DMF}} (S_4N_3NHCO\text{-}NH_2)_2 + 2HCl$$

I.R spectrum

The IR spectrum[12] of the adduct **(Table1)**shows the bands at 3130 which may be assigned to u_{NH}. The peak at 670 cm^{-1} in the ligand due to S-S str is decreased to 617 cm^{-1} showing the coordination of sulphur atom to urea. The presence of a new band at 979 cm^{-1} is due to the formation of new S-N bond, showing the linkage of urea through N-atom to the sulphur of thiotrithiazyl ring. The absence of bands in the adduct in between 1435-2055 cm^{-1} due tou_{S-Cl}shows the replacement of chloride ion from the ligand and the linking of sulphur to nitrogen atom of urea.

U.V. Spectrum

The spectrum of adduct is recorded **(Table2)** The adduct shows two high energy bands at 34482 and 43103 cm^{-1} (4.276 and 5.345 e.v) which are due to intra ligand charge transfer within the adduct which is also supported by the value $u_1/u_2< 1$. The value of the oscillator strength of order of 10^{-3} supports the Spin Allowed Laporte Forbidden transitions.

The values of Band gap energy DEg (1.06e.V) and number of conducting electrons (n_c=1.15x10^{17}) infers that the adduct is a good conductor of electricity.

EPR Spectrum

The EPR spectrum of an adduct (**Table 2)** is recorded at room temperature using DPPH as internal standard (3355G) showing the six signals in the g// region.g $_{4\%}$ lines are caused by hyperfine structure of H-atoms present in the adduct U. The effective magnetic moment values (1.73) suggest the paramagnetic nature of the derivative.

^{1}H NMR spectrum

The ^{1}HNMR spectrum of an adduct exhibits a singlet and multiplet atd3.324 and between d 2.515-2.474 respectively for NH band and S_4N_3 ring having symmetric N-atom.

XRD Analysis

The values of sin^2q, d_{hkl} have been determined along with the value of axial ratios $a_{0,}$ b_0 and axial angles a, b and g. From the values obtained it is inferred that the stereo packing of the atoms in the ligand is triclinic as $a_0{}^1b_0{}^1c_0$ anda¹b¹g 90^0

Biological activity

The biological activity of the adduct bis (thiotrithiazylcarbamide) was screened against the bacteria *E. coil* and*S. typhi,* fungi *C. albicans* and *C.neoformans,* the zone of inhibition of the adduct on the bacteria and fungi at different concentrations is given in the **table 3**.

The antimicrobial data show that zone of inhibition is best at 100mg/mL and the adduct Bis-(thiotrithizylcarbamide) is more effective against bacteria *E. coli* and fungi *C. neoformans*. The adduct shows no activity against bacteria *S. typhi.* The activity of this adduct may be due to the presence of NCS moiety[12-13].

Conclusion

Table 3: Antimicrobial data of the adduct

Adduct	Concentration (µg/mL)	Zone of inhibition			
		Bacteria		Fungi	
		E.coli	*S.typhi*	*C.albicans*	*C. neoformans*
	100	21	0	21	24
	50	17	0	12	13
	10	08	0	09	05

Thiotrithiazyl chloride (Str.1) has the tendency to bind with urea through its electropositive sulfhur. The adduct formed is a dimer and it is showing antibacterial as well as antifungal activity. On the basis above spectralstudies the following structure (Str. 2) is assigned to adduct.

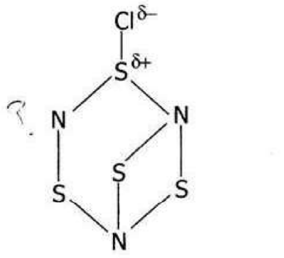

Str.1: Structure of S_4N_3Cl

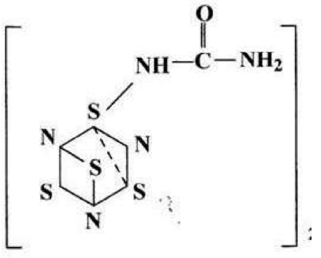

ACKNOWLEDGEMENT

The author are very much thankful to director, C.D. R.I. Lucknow for providing necessary instrument facilities and Mr. Atif, Deptt of Biochemistry, Aligarh for carrying out biological studies.

REFERENCES

1. OGlemser, Angew, Chem. Int. Eng., 2, 530 (1963)
2. A.G. MacDiarmid, J.Am. Chem. Soc., 78,3871 (1956).
3. M.B.Gochring and H.P. Latsche, Z. Naturforsch, 17B, 125 (1962).
4. M.B.Gochring, Progr. Inorg. Chem, 1, 207 (1959).
5. S.S. Yadav and S.P.S. Jadon, Ultra Sci. 15, 143 (2003).
6. S.S. Yadav and S.P.S Jadon, J India. Chem. Soc., 79 751 (2002).
7. S.Upadhyay and S.P.S. Jadon Asian, J. Chem., 15, 1065 (2003)
8. T. Mohan, P. Senthivel, M.N. SudheendraRoa, Indian, J. Chem. 34 A, 961-966 (1995).
9. Anjul Singh and S.P.S. Jadon, Asian J. Chem., 19(7), 5775-5777. (2007).
10. A.I. Vogel, "A Text Book of quantitative Inorganic analysis" E.L.B.S. Pub. London (1968).
11. K. Nakamato, TheInfra Red and Roman Spectra of Inorganic and Coordination compounds, Johan Wiley & Sons, Inc., New York (1978).
12. Goldsworthy, M.C., Green, E.L. and Smith, M.A.J. Agr. Res., 66, 277 (1943).
13. Campbell, M.J.M., Coord. Chem. Rev., 15,279 (1975).

Table-1.IR Spectral data of an adduct

S.No	Compound	υ_{S-Cl} (cm^{-1})	υ_{S-S} (cm^{-1})	υ_{S-N} -(cm^{-1})	δ_{S-N-S} (cm^{-1})	υ_{CO} (cm^{-1})	V_{N-H} (cm^{-1})
1	S_4N_3Cl	484	670	1168	1404	-	-
2	$(S_4N_3NHCONH_2)_2$	-	617	1113	1401	1623	3130(br)

Table- 2. UV & EPR spectral data of the adduct

U.V. Parameters						EPR Parameters					
Bands (cm^{-1})	υ_1/υ_2	B	$\Delta\upsilon_{1/2}$	ΔEg (cm^{-1})	n_c	Temp	H(guass)	g	G	V_{eff}	χ_A(e.s.u)
43104_{v1}	0.799	2392	4784	$1.06x10^{-12}$ev	$1.15x10^{17}$	AtRT	3148	2.135	1.962	1.699	6.11
n-π *							3240	2.074	1.979	1.713	5.17
$34482v_2$							3332	2.017	1.997	1.729	6.11
							3424	1.961	1.961	1.698	5.90

SHODH CHETNA – YEAR-3
(JAN. TO MARCH, 2017) VOL. 1

ISSN : 2350-0441

मानव जीवन में मानवीय संवेदना की महत्ता

❑ डॉ. उमाकान्त मिश्र*

शोध सारांश

मानवीय संवेदना मानव जीवन का अनिवार्य तत्त्व है। जिस व्यक्ति के जीवन में मानवीय संवेदना की स्वच्छ निर्मल धारा प्रवाहित नहीं है, उसका जीवन कभी भी मधुर, स्पृहणीय और श्लाघनीय नहीं हो सकता। मानव की संवेदन शक्ति और सामाजिक सरोकार उसे अन्य प्राणियों से उत्कृष्ट सिद्ध करते हैं। सामाजिक और संवेदनशील प्राणी होने के कारण उसका दायित्व है कि वह दूसरों के लिए, लोक कल्याण के लिए काम करे।

मानवीय संवेदना मानव जीवन का अनिवार्य तत्त्व है। जिस व्यक्ति के जीवन में व्यापक मानवीय संवेदना की स्वच्छ निर्मल धारा प्रवाहित नहीं है, उसका जीवन कभी भी मधुर, स्पृहणीय और श्लाघनीय नहीं हो सकता। मानव जीवन में अभिव्यक्त संवेदना आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक और कलात्मक धरातल पर निरंतर बदलती हुई परिस्थितियों की प्रतीक है। इसके केन्द्र में मनुष्य होता है। मनुष्य का इतिहास भी उसके आस-पास ही रहता है। इसलिए संवेदना में एक प्रकार का सातत्य रहता है। यदि उसकी संवेदना शाश्वत है तो वह काल विशेष को ही प्रभावित न कर आने वाले युग को भी प्रभावित करती है। संवेदना जीवन का आधार तत्त्व है, जीवन का भावतत्त्व है, चेतना तत्त्व है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—''मनुष्य अपने भावों, विचारों और व्यापारों के लिए दूसरों के भावों, विचारों और व्यापारों के साथ कहीं मिलाता और कहीं लड़ाता हुआ अंत तक चला चलता है और इसी को जीना कहता है। जिस अनन्त रूपात्मक क्षेत्र में यह व्यवसाय चलता रहता है उसका नाम है जगत्।''[1] मनुष्य दूसरों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने में कभी मधुर अनुभव करता है, प्रसन्नता प्राप्त करता है तो कभी दुःखी होता है, पीड़ा का अनुभव करता है। कभी मधुर और कटु दोनों तरह के अनुभव करता है। कभी-कभी सामान्य अनुभव भी करता है जो कटु होते और मधुर होते हैं। मानव जीवन में ऐसे अनेक क्षण आते हैं जब दूसरों के साथ कार्य व्यापार में वह अनेक प्रकार के अनुभवों से निकलता है, क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिकता मनुष्य का सबसे महत्त्वपूर्ण गुण और अनिवार्य आवश्यकता है। यूनानी दार्शनिक अरस्तू ने समाज की आवश्यकता के सन्दर्भ में कहा था—''समाज का निर्माण जीवन के लिए किया गया है।''[2] वैसे तो प्रत्येक व्यक्ति समाज के प्रति जागरूक रहता है परन्तु साहित्यकार अधिक संवेदनशील

* प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष (संस्कृत) अकादमिक, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

होने के कारण विशेष रूप से जागरूक रहता है। मनुष्य की सामाजिकता तो महत्त्वपूर्ण है ही पर उसकी मानसिकता, उसकी संवेदनशीलता कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। यही मानसिकता कवि और शास्त्रकार को समाज से और युगीन सन्दर्भ से जोड़ती है।

मानव की संवेदनशक्ति और सामाजिक सरोकार उसे अन्य प्राणियों से उत्कृष्ट सिद्ध करते हैं। इस प्रयास में मनुष्य की विवेक-बुद्धि जागृत हुई और आज प्रत्येक क्षेत्र में उसकी पहुँच की इयन्ता नहीं है। इस पहुँच के लिए उसे अपनी कल्पनाशीलता और ऊर्जस्विता का सहारा लेना पड़ता है, साधना करनी पड़ती है, इसलिए साधना के माध्यम से ही मानव मूल्यों की स्थापना की जाती है। मनुष्य ने अपनी श्रमयात्रा में जिन कतिपय उदात्त मूल्यों की प्राप्ति की है वही उसे पशु जगत् से पृथक् करते हैं। ऐसे मानव मूल्यों में करुणा, क्षमा, शील, सौहार्द, सामंजस्य, सौजन्य, शान्ति, अहिंसा, सहअस्तित्व आदि मानवीय तत्त्व सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं जो दोनों जगत् में विभाजन-रेखा खीचते हैं। सामाजिक और संवेदनशील प्राणी होने के कारण उसका दायित्व है कि वह दूसरों के लिए लोक कल्याण के लिए काम करें।

मनुष्य में जिजीविषा है, वह जीना चाहता है। वह अपने को प्रकट भी करना चाहता है। अभिव्यक्ति उसकी मूल आवश्यकता है। जिस प्रकार जीने के लिए भोजन-पानी, शयन-जागरण की आवश्यकता है, उसी प्रकार अपने आपको अभिव्यक्ति करने की भी है। वह अपने आपको प्रकट करने का अवसर ढूंढता है। अवसर मिलते ही वह 'जो कुछ भी है', उससे अधिक अपने आपको प्रकट करता है। यह प्रकटीकरण कभी अपने हृदय के आनन्द के लिए और कभी दूसरों को आकृष्ट करने के लिए, उनके मनोरंजन और उपदेश के लिए होता है। जब वह धीरे-धीरे गुनगुनाता है तब अपने ही सुख-दुःख को वाणी देता है और जब वह पूरे सुर के साथ लोगों के सामने गाता है तब वह दूसरे को अपनी ओर आकृष्ट करता है। जिस प्रकार सघन बादलों को देखकर वर्षा अनुमान लगाया जा सकता है, उसी प्रकार चेहरे पर बिछी लकीरों को देखकर उस व्यक्ति में व्याप्त भय, क्रोध, प्रेम, विवशता और निरीहता को अच्छी तरह देखा और परखा जा सकता हैं। इसका निरीक्षण और परीक्षण हर किसी के सामर्थ्य की बात नहीं है। कोई पारखी व्यक्ति ही इसे पढ़ सकता है। जिस प्रकार राह चलते व्यक्ति से प्रेम नहीं किया जा सकता, घृणा नहीं की जा सकती; उसी प्रकार राह चलते व्यक्ति के सामने अपने आपको अभिव्यक्त भी नहीं किया जा सकता। अभिव्यक्ति को सही रूप देने के लिए दो बातों की आवश्यकता रहती है। पहली आवश्यकता है वक्ता की जीवन की गहराई में पैठ और दूसरी है श्रोता में समझने की शुद्ध सामर्थ्य।

यहाँ भी मूल में संवेदना ही रहती है। मानव ने कभी रंगों को गहराई दी, कभी तूलिका द्वारा आड़ी-तिरछी-सीधी-सपाट रेखाओं को वाणी दी। कभी छेनी द्वारा निर्जीव वस्तुओं में प्राण फूँके और कभी शब्दों द्वारा दूसरों को आर्द्र किया। इस प्रकार रंगों की गहराई, रेखाओं की वाणी, प्रस्तरखण्डों की जीवन्तता तथा शब्दों के गीलेपन द्वारा कला का जन्म हुआ। अटूट आस्था और अनवरत साधन द्वारा कला का संस्कार हुआ। यही संस्कारित कला मानव के अन्तरमत को बांधने में सफल होती है। वह कालगत और देशगत सीमा का अतिक्रमण कर सहृदय के दूरस्थ संसार में पहुँच जाती है। यही कारण है कि प्रत्येक देश और युग की कला का महत्त्व सर्व स्वीकार किया जाता है।

काव्य में शब्द और अर्थ कला का माध्यम बनते हैं। रचनाकार शब्दों के माध्यम से सहृदय पाठक या अध्येता के साथ साक्षात्कार करता है। जिस प्रकार पदचाप में व्यक्ति का आकार छिपा रहता है, उसी प्रकार शब्दों में भी कवि का आकार-रूप छिपा रहता है। रचनाकार अपने भीतर को प्रकट करता है—उन भीतरी भावनाओं को जो पहले किसी कारणवश नहीं प्रकट हो पाई थीं। जिस प्रकार उचित समय में वायु, जल, ऊष्मा, पाकर बीज से अंकुर फूट निकलता है उसी प्रकार समुचित कारण में

सुख-दुःख के गहरे अनुभवों से कवि का हृदय शब्द बनकर फूट निकलता है। व्याघ्र के बाणों से बिद्ध, क्रौंच पक्षी की मर्मान्तक पीड़ा और उसके सहचर के करुण क्रन्दन से महर्षि वाल्मीकि की संवेदना मुखरित हो उठी—

मा निषाद। प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।

हे निषाद। तुमने प्रेम में डूबे हुए क्रौंच पक्षी को मार डाला; अतः तुम अनन्त वर्षों तक प्रतिष्ठा को प्राप्त न करो। महर्षि की संवेदनामयी वाणी को सुनकर स्वयं ब्रह्मा उपस्थित हुए और उन्होंने रामचरित लिखने के लिए उनसे कहा। इसी प्रेरणा के फलस्वरूप महर्षि बाल्मीकि ने उत्तम काव्य रामायण की रचना की। इस रचना से हम भारतीय ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व उपकृत हुआ है। कवि सार्वजनिक सत्य का उद्‌घाटन करता है। वह अपनी विशिष्ट संवेदनाओं को प्रकट करता है—उन्हीं संवेदनाओं को वाणी देता है जो पाठक के अन्तस्तल का स्पर्श कर सकती हैं। जहाँ साधारण अभिव्यक्ति में मनुष्य का उद्देश्य केवल विचारों का आदान-प्रदान रहता है वहाँ साहित्यिक अभिव्यक्ति में विषय और शैली की समन्वित शक्तिमत्ता विद्यमान होती है। यही कारण है कि काव्य की अभिव्यक्ति इतिहास, भूगोल, दर्शन और अर्थशास्त्र से भिन्न है।

रचनाकार अपनी अनुभूति को कल्पना द्वारा सुन्दर बनाता है और बाद में शब्दों द्वारा पाठक को छूता-सहलाता है। कल्पना के अभाव में कोई भी अनुभूति काव्य नहीं हो सकती। प्रत्येक मनुष्य में समान भावनाएँ रहती हैं, परन्तु कवि उन्हें काल्पनिक सौन्दर्य देकर काल की सीमा तक पहुँचाता है। प्रेम, घृणा, दया, क्रोध आदि प्रवृत्तियाँ सभी मनुष्यों में समान रूप से पाई जाती हैं अन्तर केवल परिणाम में है। प्रकृतिक सौन्दर्य देखकर केवल कवि हृदय की काव्य रचना कर सकता है। वह केवल काव्य रचना ही नहीं करता बल्कि पाठक के मन में वैसी ही अनुभूति उत्पन्न कर देता है जैसी उसके मन में होती है। सत्य तो यह है कि उक्ति की विविधता ही साधारण मनुष्य और कवि में अंतर ला देती है। यही उक्ति-वैविध्य या उक्ति-वैचित्र्य कवि को साधारण से असाधारण बना देता है। वस्तुतः उक्ति-सौन्दर्य ही कवि की भावना-कला का मापदण्ड है। भाव चाहे कितना ही सुन्दर क्यों न हो। शैली की मूलवत्ता को नकारा नहीं जा सकता। सब्जी चाहे कितनी ही ताजा और महंगी क्यों न हो, बनाने की भी कला होती है, नमक, मिर्च की मात्रा का अपना महत्त्व होता है। भोजन चाहे कितना ही बढ़िया क्यों न हो परोसने की कला को नकारा नहीं जा सकता। घर-आंगन कितना ही बड़ा क्यों न हो उसकी लिपाई-पुताई का भी अपना महत्त्व होता है। जब तक कवि अपनी अनुभूति को शब्दों के सांचे में नहीं ढाले—अपनी बात दूसरों तक पहुँचाने की योजना न बनाये और किसी हृदय की गहराई तक नहीं पहुँचे, तब तक उसका कार्य पूरा नहीं होता। उसकी कल्पना अलंकरण-सौन्दर्य के बिना अधूरी है। जिस प्रकार बिना शरीर के आत्मा आकारहीन है, उसी प्रकार शब्द-विलास के बिना कविता भी आकार-विहीन है। अपने काव्य को चिरंजीवी बनाने के लिए कवि सुन्दर शब्द-विन्यास, समर्थ सिद्ध भाषा, प्रणय-सौन्दर्यजन्य अलंकरण, सजीव-जीवन्त-चित्रमयता तथा मधुर कोमलता का चयन करता है।

कविता कवि की प्रतिच्छवि है, यह वह दर्पण है जिसमें कवि का आंतरिक फलक प्रतिबिम्बित होता है। उसमें कवि का चेतन-अचेतन तत्त्व, युग परिवेश, संस्कार-निर्माण सब कुछ देखा जा सकता है। कविता में से न कवि को निकाला जा सकता है और न उसके युग को। दोनों में से एक को भी निकाल देने से कविता निश्चित रूप से पंगु हो जाती है।

साहित्य समाज का दर्पण है। सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, काम-क्रोध, अच्छा-बुरा, मान-अपमान इन सबका विस्तार ही तो समाज है। इन सबके मूल में संवेदनाएँ ही हैं। कभी हम लोगों के सुख में सुखी होते हैं, कभी उनके दुःख में दुःखी होते हैं, कभी हम अन्याय के विरोध में उनका साथ देते हैं, कभी उनके प्रणय व्यापार के सहयोगी बनते हैं। कभी हम स्वदेश की रक्षा के लिए अपने प्राणों

का उत्सर्ग करने वाले सैनिकों के देश-प्रेम पर रीझते हैं, पति परायणा नारी के शुद्ध चरित्र पर मुग्ध होते हैं, सर्वस्व का परित्याग करने वाले परोपकारी की उदात्त भावना पर आनन्द से खिल उठते हैं और प्राणों की बाजी लगाकर डूबते बालक को बचाने वाले साहसी के साहस पर 'वाह-वाह' कह उठते हैं। मानवीय संवेदना की यही भूमिका है कि हम मानव के साथ मानव बनकर रहते हैं और अन्य प्राणियों के साथ भी वही मानवीय व्यवहार करने की चेष्टा करते हैं। यह हमारी संवेदना पर निर्भर है कि हम रति, करुणा, क्रोध, उत्साह, भावों तथा सौन्दर्य, रहस्य, गंभीर आदि भावनाओं को अपने हृदय में कैसा अनुभव करते हैं और मनुष्य मात्र की भावात्मक सत्ता पर हम कैसा प्रभाव डालते हैं। जहाँ लोक में इन भावों या भावनाओं का हम प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं, वहीं साहित्य रूपी दर्पण में हम इनका प्रतिबिम्ब देखते हैं। लोक के इन भावों का ही 'काव्य' में 'साधारणीकरण' होता है। मानव वहीं है जिसे लोक की पहचान हो, जो अनेक विशेषताओं और विचित्रताओं के बीच मानव जाति के हृदय को देख सके और उसके सुख-दुःख की पहचान कर सके।

जिस मनुष्य की हृत्तन्त्री दूसरे के आनन्द के अवलोकन से स्वतः बजने लगती है, जिसका हृदय दीन तथा आर्त्तजनों के करुण क्रंदन से पिघल उठता है, जो जगत् के प्राणिमात्र के साथ तादात्म्य का अनुभव कर उनके हर्ष में हृष्ट, विषाद में विषण्ण, हास्य में प्रसन्न, क्रोध में दीप्त, अनुराग में अनुरक्त होने की शक्ति से युक्त होता है, वह मानव नहीं महामानव है। ऐसा व्यक्ति ही सही अर्थों में मानवीय संवेदना से युक्त होता है। ऐसे व्यक्ति के हृदय को छुद्र स्वार्थ की भावना कभी प्रेरित नहीं करती, प्रत्युत परोपकार के नाम पर उसका चित्त नाच उठता है। उसके जीवन का 'स्व' 'पर' रूप में स्वतः परिणत हो जाता है और वह मानव के चरम विकास पर पहुँच जाता है। भागवत के कृष्णा ऐसे ही महामानव थे। हृदय की संकीर्णता ही बंधन है और हृदय की उदारता ही मुक्ति है।

जो मनुष्य अपना-पराया, जाति-पाति, छुआ-छूत, धनी-निर्धन, लाभ-हानि के विवेचन में दिन काटता है, वह खुले स्थान में रहने पर भी हृदय के कारागार में निवास करता है; परन्तु जिसका हृदय 'वसुधैव कुटुम्बकम्' मंत्र की उपासना से उदात्त तथा विशाल है, वह मनुष्य मुक्ति का आनन्द प्राप्त करता है। जिस प्रकार ज्ञान योग प्राणिमात्र में एक ही परमात्मा का प्रतिपादन कर अद्वैत का उपदेश देता है, उसी प्रकार प्राणिमात्र में रागात्मिका वृत्ति का प्रतिपादन भी भावयोग की चरम सीमा है। इस उदात्त भावयोग की सिद्धि मानवीय संवेदना के द्वारा ही होती है।

सन्दर्भ सूची

1. चिन्तामणि भाग-1,संस्करण 1990 पृष्ठ 113
2. अरस्तु—पोलिटिक्स, खण्ड 3, अध्याय 3

SHODH CHETNA – YEAR-3
(JAN. TO MARCH, 2017) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

पर्यावरण का मानव समाज पर प्रभाव

❒ डॉ. कमल प्रताप सिंह परमार*
❒ डॉ. रश्मि पटैरिया**

प्रत्येक जीव अपने पर्यावरण की उपज होता है। मानव तो थोड़ा बहुत अपने को पर्यावरण के अनुकूल ढाल ही लेता है परन्तु पौधे और पषु जगत तो पूरी तरह से पर्यावरण पर निर्भर होते हैं। मानव जीवन और पर्यावरण दोनों इतने घनिष्ठ रूप से गुथे हुये हैं कि जीवन की प्रत्येक भिन्नता, नस्ल, रूप–रंग, खान–पान यहां तक की मानव का व्यक्तित्व भी पर्यावरण की ही उपज होता है। अनुकूल पर्यावरण में मानव का समुचित विकास होता है वही प्रतिकूल पर्यावरण विकास को अवरुद्ध भी करता है। एक तरह मानव अपनी बुद्धि एवं क्षमता के कारण पर्यावरण को बदलने में समर्थ हुआ है वहीं दूसरी ओर विज्ञानिक अविष्कारों, नवीन प्रौद्योगिकी एवं सहन शक्ति का विकास करके मानव ने अपने को पर्यावरण के अनुकूल ढालने का प्रयत्न भी किया है।

पर्यावरण एक अविभाज्य समष्टि है। भौतिक, जैविक एवं सांस्कृतिक तत्वों वाले पारस्पारिक क्रियाषक्ति तन्त्रों से इसकी रचना होती है। मानव की पर्यावरण में दो तरफा भूमिका होती है, एक तरफ तो वह भौतिक पर्यावरण के जैविक संगठक का भाग होता है तो, दूसरी ओर वह पर्यावरण निर्माण का महत्त्वपूर्ण कारक भी होता है। आदिमानव की पर्यावरण में दो तरफा भूमिका थी। 'पाता और दाता' की नई प्राद्योगिकी से मानव ने स्वनिर्मित पर्यावरण, सांस्कृतिक पर्यावरण का निर्माण किया। वहीं विकसित प्राद्योगिकी ने भौतिक एवं मानव को आर्थिक मानव में बदल दिया है। प्राकृतिक पर्यावरण मानवीय संबंधों एवं व्यवहारों को निरंतर प्रभावित करता रहता है। मानव ने प्रगति पर विजय पाने का प्रयास किया फिर भी प्राकृतिक शक्ति से नहीं बच सका है। भूकंप, बाढ़, आकाल, महामारी, मानव समाज को बर्बाद कर देती है। हजारों परिवार उजड़ जाते हैं। लोग एक स्थान से दूसरे स्थान पर शरण लेते हैं। इसी प्रकार हैजा, प्लेग भी मानवीय संबंधों को प्रभावित करते हैं। प्राकृतिक विपदाएँ गांव एवं शहरों को उजाड़ देती हैं। व्यक्ति एक स्थान से दूसरे स्थान को भागता है जिससे नये विवाहिक एवं परिवारिक संबंध बनते हैं। नयी संस्कृति एवं सभ्यता से लोक परिचित होते हैं। नई प्रथाओं एवं मूल्यों को अपनाते हैं। लोगों के रहन–सहन, खान–पान, फैशन एवं व्यवहारों में परिवर्तन हो जाता है। प्राकृतिक प्रकोप के डर से ही मानव प्रकृति के सम्मुख नत–मस्तक हो जाता है एवं प्रकृति की पूजा करने लगता है तथा धर्म एवं ईष्वर को मानने लगता है। निर्माण कार्य प्रारंभ होते हैं विज्ञान एवं नई प्रौद्योगिकी का विकास होता है।

भौगोलिक पर्यावरण के समान ही सांस्कृतिक पर्यावरण भी समाज को प्रभावित करता है।

* समाजशास्त्र विभाग, शासकीय महाविद्यालय पवई, जिला- पन्ना (म.प्र.)
** भूगोल विभाग, स्वामी विवेकानंद महाविद्यालय, झाँसी (उ.प्र.)

सांस्कृतिक पर्यावरण व्यक्तियों के विष्वासों, मूल्यों, विचारों, आदतों एवं व्यवहारों को प्रभावित करता है। संस्कृति व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण करती है। यही वजह है कि ऐस्कीमो, मसाई, टोडा, खस एवं नायर इत्यादि जनजातियों के लोगों में अजीबो–गरीब रीति–रिवाज देखने को मिलते हैं। जहां ऐस्कीमो लोग अपने वृद्ध माता–पिता को मार देते हैं, वहीं खस टोडा, नायर मातृ–सत्तात्मक, मातृ–वंषीय हैं। ये सब तथ्य बताते हैं कि, जहां का जैसा प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण होता है वहां के लोगों का स्वभाव, रहन–सहन एवं चाल–चलन उसी प्रकार का होता चला जाता है। जो लोग प्रकृति की चुनौतियों का सामना करने में सक्षम होते हैं वे लोग ही आगे चलकर सभ्यता एवं समाज का निर्माण करते हैं। विष्व की महान् संस्कृतियों का उदय अधिकांषता नदी घाटियों के पास से ही हुआ है। क्योंकि वहां का भौगोलिक वातावरण उनके अनुकूल था। पहाड़ी एवं रेगिस्तानी क्षेत्रों के लोग क्रूर एवं निर्दयी होते हैं। जबकि मैदानी क्षेत्रों के लोग दयालू, सहिष्णु एवं ईमानदार होते हैं। जब हम विष्व के विभिन्न क्षेत्रों का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं तो स्पष्ट तस्वीर समाने आती है कि भौगोलिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण निष्चित रूप से मानव समाज को प्रभावित करता है। व्यक्ति को समाज में जिन्दा रहने के लिये पर्यावरण से संतुलन बनाकर ही चलना पड़ता है।

निष्कर्ष :

हमारे चारों और जी आवरण है उसे ही पर्यावरण कहते हैं। पौधों की भांति प्राणी भी पर्यावरण पर निर्भर होते हैं। मानव ने अपने विकसित मस्तिष्क के कारण अपनी इच्छानुसार वातावरण में फेर–बदल करने का प्रयास किया फिर भी उसे प्रकृति के सामने नतमस्तक होना पड़ा और धर्म, पूजा–पाठ, प्रार्थना आदि उदय हुआ। मानव जीवन की प्रत्येक भिन्नता, रहन–सहन, जनसंख्या, खान–पान, पहनावा, रीति–रिवाज, शारीरिक बनावट, व्यक्ति एवं उसकी सभ्यता सभी पर्यावरण से प्रभावित होती है। जहां का पर्यावरण मानव के अनुकूल होता है वहां विकास तेज गति से होता है एवं जहां का पर्यावरण संकटापन्न होता है, वहां का मानव दुष्ट, क्रूर एवं घातक होता है, ऐसी स्थिति में विकास अवरुद्ध होता है। सांस्कृतिक प्रभाव के कारण भी मानव समाज के रीति–रिवाज, विवाह, परिवार एवं व्यवहार आदि परिवर्तित होते हैं। प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण से मानव का प्रत्येक पक्ष प्रभावित होता है। सेवरिन ने तो यहां तक कह दिया कि, आप बता दीजिए कि आप क्या खाते हैं और मैं बता दूंगा की आप क्या हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. गुप्ता एम.एल. एवं शर्मा डी.डी., समाजषास्त्र – साहित्य भवन, आगरा।
2. ओझा एस.के., पारिस्थितिकि एवं पर्यावरण बौद्धिक प्रकाषन, इलाहाबाद।
3. पाण्डेय आनन्द कुमार एवं पाण्डेय अर्चना– सामान्य अध्ययन हिन्दी, ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
4. प्रेम भारती– सामाजिक विज्ञान 2014 – राज्य षिक्षा केन्द्र, भोपाल (म0प्र0)।
5. दीक्षित ध्रुव कुमार– समाजषास्त्र – षिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी।
6. प्रतियोगिता दर्पण – हिन्दी मासिक पत्रिका, इन्दौर (म0प्र0)।
7. शुक्ला शषि तिवारी एन.के. – पर्यावरण अध्ययन – राम प्रसाद एण्ड सन्स।
8. सक्सेना एस.एम. एवं सीमा मोहन – पर्यावरण अध्ययन कैलाष पुस्तक सदन, भोपाल।
9. ओझा ओमप्रकाष – नगरीय एवं ग्रामीण समाजषास्त्र – रिसर्च पाब्लिकेषन, जयपुर।
10. सक्सेना एस.एम. – जन्तु विज्ञान – राम प्रसाद एण्ड सन्स।
11. पारिख डॉ0 डी. अषोक भदौलिया, डॉ0 एस.एस, समाजषास्त्र का परिचय– म0प्र0 हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।

SHODH CHETNA – YEAR-3
(JAN. TO MARCH, 2017) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

प्राथमिक शिक्षा में पर्यावरणीय शिक्षा की भूमिका

❑ चारूल सिंह*

प्रस्तावना

'पर्यावरण' शब्द से तात्पर्य है कि जो आपके आसपास का वातावरण हो। वातावरण से तात्पर्य है जो पेड़–पौधों से बनता है जिसके अन्तर्गत छोटे–छोटे जीव भी शामिल होते हैं। पर्यावरण नमी, ताप पदार्थों के गठन, मृदा, चट्टान, वायु, जल, पादप व प्राणी इन सबसे निर्मित होता है। पर्यावरण का महत्व मानव जीवन में प्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता है। इसके बिना मानव जीवन का अस्तित्व है ही नहीं। क्योंकि प्रकृति द्वारा प्रदत्त प्रत्येक जीव एक दूसरे से सम्बन्धित हैं यह एक चक्र रूप में कार्य करता है। परन्तु यह मानव की मूर्खता है कि जो वस्तु उसे निःशुल्क मिलती है उसका मूल्य नहीं करता तथा जिनको खरीदता है उनका मूल्य ही उसे समझ आता है यद्यपि वह वस्तुयें मानव जीवन के लिए अति मूल्यवान नहीं होतीं। अर्थात् प्रकृति द्वारा प्रदत्त वायु, जल, मृदा उसे निःशुल्क प्राप्त है उनको वह दिन–प्रतिदिन और प्रदूषित व खत्म करता जा रहा है।

सी0सी0 पार्क के अनुसार, ''मनुष्य एक विशेष स्थान पर विशेष समय पर जिन सम्पूर्ण परिस्थितियों से घिरा हुआ है उसे पर्यावरण कहा जाता है।'', सी0सी0 पार्क पर्यावरणविद् का यह तथ्य सत्य है तथा उन्होंने इसे स्पष्ट रूप से विश्लेषित किया कि पर्यावरण क्या है? वर्तमान समय में पर्यावरण का जो स्वरूप परिलक्षित होता रहा है भविष्य में वह रूप अत्यन्त भयावह होगा यदि इसको अभी हमने नहीं संभाला।

यह कहा भी जाता है कि अभी सभी संसाधनों का प्रयोग कर लिया तो भावी पीढ़ी को क्या देकर जायेंगे? भावी पीढ़ी अपनी वर्तमान का अनुसरण करती है अर्थात् एक छोटा बच्चा अपने बड़ों को देखता है उनका ही अनुसरण करता है। यदि हम अपने पर्यावरण को सुरक्षित करना चाहते हैं तो हमें अभी से अपने बालकों में पर्यावरण के प्रति प्रेम का बीज बोना होगा। परन्तु बीज रोपण से पहले इस समस्या की जड़ का पता करना होगा। पर्यावरण की शिक्षा की आवश्यकता और इसका महत्व आज सभी देशों के लिए समान रूप से है। क्योंकि विश्व के सभी देश आज किसी–न–किसी प्रकार के पर्यावरणीय संकट से ग्रस्त हैं। विकासशील व विकसित देश अपनी भिन्न–भिन्न समस्याओं के बावजूद इस बात पर एकमत हैं कि जितनी तेजी से आज पर्यावरण की समस्यायें उठ रही हैं चाहे वह जनसंख्या वृद्धि के दुष्प्रभावों के कारण हो अथवा औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप हो या कोई अन्य कारण हो उसको सरकार अथवा जनता द्वारा व दोनों ही सुधार कर पिछले रूप में नहीं ला सकती।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि 'पर्यावरण की गुणवत्ता' के बारे में चिन्तन सर्वप्रथम वैज्ञानिकों ने

* शोध छात्रा, जे.जे.टी. यूनिवर्सिटी, झुंझनू (राजस्थान)

किया और धीरे–धीरे समाज के सभी वर्गों में ही नहीं बल्कि पूरे विश्व के देशों में इसने स्थान पाया और व्यापक रूप से सोचने और विचार–विमर्श का विषय बन गया। इससे सम्बन्धित कुछ प्रबुद्ध पर्यावरणविद्ों ने इससे सम्बन्धित कुछ सुझाव दिये। जिसमें जनमानस को इसमें शामिल करना अतिआवश्यक माना गया।

पर्यावरण शिक्षा का अर्थ

पर्यावरण शिक्षा का अर्थ इसकी परिभाषाओं में निहित है–

यूनेस्को (1970) कार्यसमिति अनुसार, ''पर्यावरण शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत मनुष्य तथा उसके पर्यावरण के पारस्परिक सम्बन्ध तथा निर्भरता को समझने का प्रयास किया जाता है और उसको स्पष्ट करने हेतु कौशलों, अभिवृत्ति मूल्यों का विकास करते हैं। यह निर्णय लिया जाता है क्या किया जाए? जिससे वातावरण की समस्याओं का समाधान किया जा सके और पर्यावरण में गुणवत्ता लाई जा सके।''

यूनेस्को (1976) जम्मी में सेमिनार, ''पर्यावरण शिक्षा एक ढंग है जिससे पर्यावरण संरक्षण के लक्ष्यों को प्राप्त किये जाये। विज्ञान तथा अध्ययन क्षेत्र की पृथक शाखा नहीं है अपितु जीवन पर्यन्त खलने वाली शिक्षा की एकीकृत प्रक्रिया है।''

मिश्र (1993) अनुसार, ''पर्यावरण शिक्षा एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य को पर्यावरण के प्रति जागरूकता, ज्ञान कौशल, अभिवृत्तियों तथा मूल्यों को विकसित किया जाता है जिससे पर्यावरण का सुधार किया जा सके।

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि पर्यावरण शिक्षा एक प्रक्रिया है जिसमें छात्र–छात्राओं को ऐसे अधिगम प्रदान किये जाते हैं जिससे पर्यावरण का ज्ञान, समक्ष, कौशल, जागरूकता प्राप्त करके अपेक्षित अभिवृत्तियों को विकसित कर सकें। प्राकृतिक तथा मानवकृत परिस्थितियों में सम्बन्ध स्थापित कर सकें। वास्तव में पर्यावरण शिक्षा से तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जो विश्व समुदाय को पर्यावरण की समस्याओं के सम्बन्ध में सचेत करता है। उसकी समस्याओं को समझकर उनका समाधान खोज सके तथा भावी समस्याओं को भी रोक सकें।''

'पर्यावरण शिक्षा' प्राणियों को वर्तमान समस्याओं से बचाये रखने तथा भविष्य में सुरक्षित रहने की जागरूकता का प्रशिक्षण देता है। यह प्रशिक्षण सामान्यतः बालकों को दिया जाता है परन्तु वर्तमान समय में पर्यावरण की स्थिति देखकर लगता है कि पर्यावरण शिक्षा समाज के प्रत्येक वर्ग अमीर–गरीब, मध्यम वर्ग, छात्र–छात्राओं चाहे वह प्राथमिक स्तर, माध्यमिक स्तर व उच्च वर्ग के क्यों न हो, शिक्षकों, कलाकारों, उच्चवर्गीय अधिकारी सभी को क्योंकि स्वयं के अस्तित्व को हम स्वयं ही बचा सकते हैं। 'पर्यावरण शिक्षा' द्वारा हम आगे आने वाली पीढ़ी को भी इसके प्रति जागरूक कर सकते हैं।

बालक ऐसा व्यक्तित्व जिसके हाथों में देश की सुरक्षा, पर्यावरण रक्षा विकास की बागडोर होती है। अतः पर्यावरण शिक्षा प्रदान करने एवं जागरूकता प्रदान करने के लिए शिक्षा का पहला स्तर अर्थात प्राथमिक स्तर के बालकों को शिक्षा प्रदान करना है। प्राथमिक स्तर ऐसा स्तर जहाँ बालकों के मस्तिष्क जो भी प्रदान किया जाये वो अधिकाशंता चिरस्थायी होता है। अतः उपरोक्त पेपर द्वारा यह प्रयास किया गया है कि पर्यावरण के प्रति ये उपेक्षा क्यों? क्या प्राथमिक स्तर के बालकों को पर्यावरण शिक्षा दी जा सकती है तथा कौन–सी समस्यायें है जो उनको शिक्षा प्राप्त करने से रोकती है व उन समस्याओं का क्या निवारण हो सकता है जिससे पर्यावरण का संरक्षण किया जा सके।

समस्यायें :

प्राथमिक स्तर वह स्तर है जहाँ बालकों की विद्या आरम्भ होती है यही वह प्रथम सीढ़ी है जहाँ बालक सीखना प्रारम्भ करता है। यहीं से अच्छे–बुरे का ज्ञान मिलना शुरू होता है परन्तु सीखने के बीच इतनी बाधायें होती हैं कि उसका अधिगम अधूरा रहा जाता है।

- अस्वच्छ व असुन्दर बाह्य ढांचा
- नीरस किताबें
- खिलौने व अन्य आकर्षक वस्तु का न होना
- अकुशल शिक्षक
- पर्यावरण के प्रतिकूल वातावरण

1. बाह्य ढाँचा–अंग्रेजी में एक कहावत है– "First Impression is the last Impression". यह कहावत प्रत्येक स्तर पर काम करती है। जब एक छोटा बच्चा विद्यालय में प्रवेश करता है उसके लिए विद्यालय का भवन, कक्षायें उसको आकर्षित करता है हांलाकि यह तथ्य सरकारी स्कूलों में ही कार्य करता है। क्योंकि वर्तमान परिवेश में निजी स्कूलों की स्थिति अत्यधिक सुदृढ़ है। अतः प्राथमिक स्तर पर बालकों को शिक्षा प्रदान करने हेतु विद्यालय का भवन या बाह्य ढाँचा सुन्दर व सुदृढ़ होना आवश्यक है जिससे बालक खुशी से वहाँ बैठकर अध्ययन ग्रहण करें। शिक्षा के लिए वातावरण अनुकूल होना चाहिये क्योंकि यदि प्रारम्भ में वह शिक्षा के प्रति रुचि नहीं रख पाया तो कभी भी वह उच्च अधिगम मूल्य व जागरूकता का बीज रोपित नहीं कर सकते।

2. खिलौने व अन्य आकर्षक वस्तु का न होना–बालक जो चंचल स्वभाव के होते है उन्हें विद्यालय में कोई आकर्षक ही रोक सकता है जैसे नये–नये खिलौने, झूले इत्यादि। प्राथमिक स्तर 1 से 8 कक्षा तक होती है जिसमें से भी 1 से 5 कक्षा तक बच्चा अत्यन्त ही मासूम एवं चंचल होता है। इस प्रकार के बच्चों को शिक्षा के लिए प्रेरित करना आवश्यक है इसलिए खिलौने, कवितायें, खेलते हुए पढ़ाया जाता है परन्तु कुछ विद्यालय को छोड़कर पूरे भारत के ऐसे विद्यालयों की संख्या ज्यादा है जहाँ ये सुविधायें नहीं हैं। जिस कारण बच्चा पढ़ने नहीं आता है, यदि पढ़ने आ भी जाये तो भी उनको पढ़ने के प्रति वो रुचि नहीं आती। ऐसे में सवाल यही आता है कि पर्यावरण के प्रति लगाव, प्रेम, जागरूकता की शिक्षा कैसे दी जाये।

3. आकर्षक पुस्तकों का न होना–पुस्तकें प्रत्येक स्तर को शिक्षा प्रदान करने के लिए आवश्यक हैं। विद्यालयी जीवन में इनका अत्यन्त महत्व है। इनके बिना ज्ञान अधूरा है। हाँलाकि इनके स्थान पर कम्प्यूटर, मोबाइल ने वैकल्पिक स्थान ले लिया है परन्तु आज भी इनके बिना ज्ञान की कल्पना नहीं हो सकती। यह कहा भी जाता है कि किताबें मनुष्य की सच्ची मित्र होती हैं परन्तु यदि बालकों के हाथ में प्रारम्भ से ही ऐसी पुस्तकें दे दी जाये जो सदा नीरस हो तो बालक की मित्रता कैसे हो?

4. अकुशल शिक्षक–शिक्षक स्वयं में एक सम्पूर्ण शब्द है। शिक्षक वह है जो बालक को अन्धकार से दूर कर ज्ञान की ओर ले जाये। बालक किसी भी उम्र का क्यों न हो वह अपने शिक्षक पर सम्पूर्ण विश्वास रखता है एवं स्वयं को उनके जैसा बनाने की कोशिश करता है। शिक्षक की महिमा का वर्णन इनसे ही व्यक्त होता है,

"गुरू गोविन्द दोउ खड़े काके लागों पाए
बलहारि गुरू आपने गोविन्द दियो बताए"

गुरू वह जो ईश्वर के साथ मिलवा दे ऐसे में यदि प्रारम्भिक स्तर पर स्वार्थी, अज्ञानी शिक्षक उसे ज्ञान दे तो बालक किस प्रकार एक जिम्मेदार नागरिक बन सकता है। शिक्षक समाज का निर्माण करता है परन्तु शिक्षा के व्यापारीकरण से शिक्षकों की महत्वता पर सन्देहास्पद प्रश्न उठता है।

प्राथमिक स्तर ने अधिकांश शिक्षकों के ज्ञान का प्रदर्शन न्यूज चैनलों द्वारा दिखाया जाता है ऐसे में हम किस प्रकार पर्यावरण शिक्षा के प्रति जनचेतना को जाग्रत करें।

5. पर्यावरण के प्रतिकूल वातावरण–प्राथमिक स्तर पर हम भवन निर्माण व कृत्रिम सजावट पर ज्यादा ध्यान देते है परन्तु पेड़ पौधों से भरा Campus नहीं देते हैं। बालकों के विकास के लिए यह सबसे ज्यादा उपयोगी है क्योंकि इसके द्वारा ही बालक को पर्यावरण के प्रति जागरूक किया जा सकता है। विद्यालय में पेड़–पौधों का न होना बालकों को स्वच्छ पर्यावरण से दूर करना है तथा बालकों के मन में पर्यावरण के प्रति प्रेम का भाव भी उत्पन्न नहीं हो पाता इस कारण भी पर्यावरण महत्व को नहीं समझ पा रहे हैं।

बालक बहुत ही सहज व सरल स्वभाव के होते हैं। पर्यावरण के प्रति शिक्षा प्रदान करने में एक अन्य कठिनाई यह भी है कि उसे अपनी Books, Education के प्रति कोई रुचि नहीं होती न ही उसके पाठ्यक्रम में पर्यावरण से सम्बन्धित कोई पाठ होता है जिस कारण वह स्कूल में शिक्षा को बोझ समझता है।

सुझाव व निष्कर्ष

प्राथमिक स्तर वह स्तर है जहाँ बालक में एक उच्च सभ्य नागरिक की नींव डाली जा सके परन्तु यह शिक्षा किस माध्यम से उसे दी जाये यह भी एक समस्या है तथा प्राथमिक स्तर पर बालकों को शिक्षा प्रदान कैसे की जाये? क्योंकि बालक उम्र तो जितना सरल होता है उतना ही हठी भी। जितना चंचल होता है उतना ही भावुक भी। अतः इस स्तर पर बालक के स्वभाव को समझना मुश्किल है। इन बालकों को शिक्षा प्रदान करने के लिए शिक्षा शास्त्रियों द्वारा कई विधियाँ प्रदान की गई। पर्यावरण शिक्षा के सम्बन्ध में 'रुसो' की पद्धति सर्वश्रेष्ठ ज्ञात होती है क्योंकि 'रुसो' प्रकृतिवादी शिक्षा की समर्थक है वह कहता है कि बालक को प्रकृति के सानिध्य के शिक्षा देनी चाहिये जिससे वह प्रकृति के स्वरूप उसकी महत्ता को समझेगा साथ–ही–साथ वही अपने अनुभवों से ज्ञान प्राप्त होगा।

वर्तमान समय में NCERT ने प्राथमिक कक्षाओं के लिए व्यावहारिक ज्ञान पर जोर दिया गया है। इसमें अधिगम क्रियाओं के लिए 5 चरण सुझाये गये हैं–

- अवलोकन
- प्रश्न
- आओ तथा लगायें
- क्रियायें
- हमने क्या सीखा? सीखा हुआ ज्ञान कहाँ तक सार्थक है? आदि

प्राथमिक स्तर पर जो प्रकरण तय किये गये हैं वह प्रायोगिक कार्यों का क्षेत्र अधिक है। पाठों की आवश्यकता के अनुसार विधियों और सहायक सामग्रियों आदि का चयन किया जा सकता है। प्राथमिक कक्षाओं के लिए चुने गये कुछ प्रकरण इस प्रकार है– भोजन, स्वास्थ्य, प्रकृति के साथ अनुकूलन, ऊर्जा के प्रकार फसलों, पशु–पौधे पर अन्तःनिर्भरता, जनसंख्या ज्यादा होने से उत्पन्न समस्यायें, रोग, निदान आदि।

इनके अतिरिक्त शिक्षा के प्रति जो समस्यायें है उन्हें दूर करना अति आवश्यक है क्योंकि यह देश की उम्मीद है उम्मीद वो जो देश का विकास कर सके। उम्मीद वो जो स्वच्छ स्वस्थ्य पर्यावरण निर्माण की इनसे है अतः सबसे पहले स्वच्छ व आकर्षक विद्यालय भवन का निर्माण किया जाये जिससे प्रत्येक बालक विद्यालय आने के लिए आकर्षक हो पर्यावरण शिक्षा प्रदान करने के लिए 'शिक्षक' या अध्यापक एक महत्वूपर्ण स्रोत है क्योंकि यह सर्वविदित है कि बालक शिक्षक को आदर्श मानता है तथा उसका अनुसरण करता है। पर्यावरण के व्यापक अर्थ को समझना आसान नहीं है यह

स्वयं में विस्तृत है अधिकांश लोग पढ़े–लिखे नहीं है और जो शिक्षित हैं वह भी पर्यावरण की समस्याओं से परिचित हैं परन्तु वे इनके स्वरूप एवं गम्भीरता को अच्छी तरह समझने की कोशिश नहीं कर पाते। अतः पर्यावरण चेतना का सम्बन्ध संवेदनशीलता से जुड़ा है, जिसमें पर्यावरण के प्रति हमारी धारणा या दृष्टिकोण को किस रूप से देखते है। यह दृष्टिकोण प्रदान करने की जिम्मेदारी होती है शिक्षक की। वह भी एक कुशल शिक्षक जो बालकों में पर्यावरण के प्रति चेतना, प्रेम को जाग्रत कर सके। इस चेतना के जाग्रत करने के लिए शिक्षक की भूमिका अधोलिखित प्रकार से हो सकती है –

इनके अतिरिक्त अन्य कार्यों द्वारा भी बालकों में पर्यावरण शिक्षा को जाग्रत कर सकते हैं–

1. विद्यालयों में पर्यावरण प्रेम के लिए बालकों द्वारा स्वयं पेड़–पौधों को लगवाया जाय।

2. बच्चों को ऐसे स्थानों का भ्रमण कराया जाय जो पर्यावरण दृष्टि से अनुकूल हो।

3. विद्यालय परिसर में बगीचा आदि होने चाहिए जिससे वह उनकी तरफ आकर्षित हो तथा उसके परिणामस्वरूप घर या आस–पास का वातावरण बनाये।

4. बालकों को कार्टून मूवी या अन्य चलचित्रों द्वारा पर्यावरण के प्रति जन चेतना को जाग्रत करना।

हमारा मुख्य उद्देश्य पर्यावरण के प्रति नयी पीढ़ी में संस्कार व जागरूकता प्रदान करना जिससे वह शुरू से ही सचेत व संवेदनशील बन सके। इसके लिए पुस्तकीय ज्ञान के साथ बालकों को ऐसे स्थानों का भ्रमण कराया जाये जो पर्यावरण की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ हो। साथ ही विविध वेशभूषा प्रतियोगिता द्वारा भी पर्यावरण के प्रति प्रेम जागाया जा सकता है। प्रत्येक स्तर पर बालकों में पर्यावरण के प्रति शिक्षा प्रदान करने की विधियों अलग–अलग है परन्तु लक्ष्य एक ही है वह है बालकों को पर्यावरण के प्रति सजग और संवेदनशील बनाना। अच्छी प्रकार से संवेदित और संस्कारित पीढ़ी के हाथों में ही निश्चित होकर भविष्य की विरासत दी जा सकती है और आशा की जा सकती है कि ऐसे पीढ़ी उस विरासत की रक्षा व संवर्धन भी कर सकेगी।

सन्दर्भ पुस्तकें व पत्रिकाएं

- चन्दोला, प्रेमानन्द (1984) 'पर्यावरण और जीव' हिमाचल पुस्तक भंडार, पृ0 199
- गर्ग, रूप किशोर और प्रकाश तातेड़, 1998. 'पर्यावरण शिक्षा', पर्यावरण सामुदायिक केन्द्र, उदयपुर (भारत)
- गोयल, डॉ0 एम0के0, 2007. 'पर्यावरण शिक्षा', अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
- Gupta, A. 1986. "The study of the Attitude towards Environmental Education", Fourth Survey of Research in Education (1983-88), vol. II.
- Rajput, J.S. 1988. A research study for identification of teaching skill and training strategies for implementing the Environmental Approaches of primary level. Regional College of Education, Bhopal Study.
- Robinson, J.W. 1996. "The Effect of Global Thinking Project on Middle School Students towards the Environment", Dissertation Abstract International, vol. 57, No. 4, p. 1548.
- Surekha, P. 2003. "Environmental Awareness among the student of the 10th class of Hosiyarpur city. Unpublished Dissertation, Punjab Univerity, Chandigarh.

पुस्तकालयों में सूचना सेवाओं की स्थिति : म.प्र. उच्च शिक्षा के सन्दर्भ में

❑ तेज प्रताप सिंह*

शोध सारांश

ज्ञान जगत का मूल केन्द्र पुस्तकालय है। पुस्तकालय व्यक्तित्व विकास के लिए सर्वाधिक प्रेरक माध्यम है। ग्रंथालय का समाज के विकास में प्रमुख स्थान है। प्रस्तुत लेख में मध्यप्रदेश के पुस्तकालयों की स्थिति तथा किये गये प्रयासों का वर्णन एवं सूचना सेवा की समस्याओं का वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है।

की वर्ड—*पुस्तकालय, सूचना सेवा, उच्च शिक्षा।*

प्रस्तावना

मध्यप्रदेश का गठन 1 नवम्बर 1956 को किया गया तो स्वाभाविक-सी बात है कि किसी देश या किसी प्रदेश को सुचारू रूप से चलाने के लिए विभिन्न प्रकार के विभागों की स्थापना शासन के द्वारा की जाती है। जिसमें किसी देश या प्रदेश को सुचारू रूप से शिक्षित करना उस प्रदेश का महत्त्वपूर्ण कार्य होता है। जिसमें स्कूल शिक्षा के बाद उच्च शिक्षा का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। हर प्रदेश की भाँति मध्य प्रदेश भी उच्च शिक्षा में प्रदेशवासियों को शिक्षित करने के लिए उच्च शिक्षा विभाग की स्थापना की गई। जिसमें शासकीय विश्वविद्यालय, निजी विश्वविद्यालयों के माध्यम से शासकीय महाविद्यालय, अनुदान प्राप्त महाविद्यालय, अनुदान अप्राप्त महाविद्यालय, अनुदान प्राप्त संस्थानों के माध्यम से प्रदेश के निवासियों को शिक्षित करने का कार्य प्रदेश सरकार करती है।

पुस्तकालय एक सामाजिक संस्था है जो बिना वर्ग भेद, लिंग भेद के साथ होता है। समाज का यह सहायोग विभिन्न स्वरूपों आकारों के माध्यमों से होता है। विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय के ग्रंथालय शैक्षणिक ग्रंथालय की श्रेणी में आते हैं, इसका उपयोग छात्र/छात्राएँ करते हैं। इस पुस्तकालय में अनौपचारिक शिक्षा के उद्देश्य की पूर्ति के लिए बहुत सारे लोग लगे रहते हैं। पुस्तकालय सेवा समाज का एक अंग होती है, इसलिए इसमें सेवा करने का जो आनंद प्राप्त होता है। जिस प्रकार साहित्यकार अपने साहित्य की रचना कर यश, धन तो प्राप्त करता ही है साथ ही समाज कल्याण, मृदु व्यवहार, सम्प्रेषण आदि भी करता है। उसी प्रकार पुस्तकालय समाज सेवा से प्राप्त करता है।

समाज में पुस्तकालय सेवा जहाँ ज्ञान के संरक्षण में और उसके प्रचार-प्रसार में संलिप्त रहता है वहीं पर समाज के कुछ लोग मानव जीवन एवं अन्य जीवों के संरक्षण, संवर्धन एवं सुरक्षा प्रदान करने आदि में लगे रहते हैं। इस प्रकार की संस्थाओं में लगे हुए व्यक्ति समाज में उच्च आदर्श तो प्रस्तुत नहीं कर पाते किन्तु

* शोधार्थी, अ.प्र.सि.वि.वि., रीवा (म.प्र.)

सम्पन्नता के शिखर में अवश्य पहुँच जाते हैं। लेकिन पुस्तकालय सेवक को सम्पन्नता संतुष्टि, शांति और यश प्राप्त होता है जो वह उन सम्पन्न व्यक्तियों को नहीं मिलता।

ग्रंथालयीन सेवा में जुड़े हुए व्यक्ति अर्थात् पुस्तकालयीन कर्मियों के मस्तिष्क में किसी भी तरह के विचार अपने कार्य, सहयोगी, पुस्तकालय में आने वाले पाठकों, परिवार, समाज आदि के बारे में आते हैं, यह जानना आवश्यक होता है।

पुस्तकालय का उच्च शिक्षा में योगदान

उच्च शिक्षा में शासकीय महाविद्यालय, विश्वविद्यालय, शासकीय तथा अशासकीय शैक्षणिक संस्थाएँ आती है। पुस्तकालयीन उच्च शिक्षा में छात्र/छात्राओं की शिक्षा तब तक पूर्ण नहीं मानी जाती जब तक की विद्यार्थी उस पुस्तकालय का उपयोग नहीं करता। चूँकि पुस्तकालय एक सामाजिक संस्था है जो समाज के सहयोग से समाज के लिए संचालित होती है। समाज का यह सहयोग विभिन्न स्वरूपों, आकारों के माध्यम से होता है। शासकीय महाविद्यालय-विश्वविद्यालय के ग्रंथालय शैक्षणिक ग्रंथालय की श्रेणी में आते हैं। इसका उपयोग छात्र उस समय करता है जब उसकी कक्षा की शिक्षा खत्म हो जाती है। पुस्तकालय में विश्व का समस्त ज्ञान विभिन्न प्रकार के प्रलेखों में संकलित रहता है। ये प्रलेख शिक्षा कार्यों को प्रदान करता है।

स्वतंत्रता के उपरांत जब हमारे देश को आधारभूत ढांचे का निर्माण करना था इस काल में शिक्षा भी आधारभूत ढांचे का प्रमुख अंग थी। शिक्षा जो कि अभिजात्य वर्ग का आभूषण थी और यह अभिजात्य वर्ग शिक्षित होने के दंभ के साथ स्वविकास में रोजगार रत हो गया।

म.प्र. के विश्वविद्यालयों, ग्रंथालयों ने अपने किताब रूपी आभूषणों से शिक्षाविदों को श्रृंगारित किया। जैसे-जैसे योजना काल में शिक्षा विकास हेतु आबंटित हुआ महाविद्यालय भी ग्रंथालयों से सुशोभित होने लगे, नये-नये महाविद्यालय जिला स्तर से तहसील स्तर तक प्रारंभ होते गये। इस हेतु ग्रंथालय परिचालन हेतु ग्रंथलयविद् की आवश्यकता थी चूँकि ग्रंथालय शिक्षा के साधन सीमित थे और संस्थायें कम थीं।

इस काल में प्रमाण-पत्र कार्यक्रम से लेकर स्नातकोत्तर डिग्री तक ग्रंथपाल के लिए आवश्यक अर्हता थी और वह महान उपाधि थी जो ज्ञान के पिपासुओं को ज्ञान की पूर्ति कर शिक्षारूपी अमृत प्रदान करती थी। परम्परागत साधनों से ग्रंथालयों ने अपनी दिशा निर्धारित की। इन ग्रंथालयों में आकर हजारों स्नातक, स्नातकोत्तर एवं शोधकर्त्ता बने।

सूचना तकनीक का प्रभाव

समयांतर में सूचना तकनीक के विकास से ग्रंथालय भी अछूते न रह सके क्योंकि ज्ञान का व्यवस्थित संग्रह जो उनके पास था उसे सूचना तकनीक ने चुनौती दी तब ग्रंथालय भी सूचनाओं के हमसफर बनने लगे। ऐसे में ग्रंथालयों को सूचना तकनीक विशेषताओं से पूर्ण व्यवसायिक पुस्तकालय कर्मियों, ग्रंथालयों में कम्प्यूटर तथा इंटरनेट सुविधायें, कम्प्यूटर कक्षों एवं आवश्यक सूचना उपकरणों तथा प्रबंध के कुशल तकनीकी कर्मचारियों की आवश्यकता थी।

ग्रंथालय शिक्षा में प्रमुख डिप्लोमा, डिग्री एवं शोध

म.प्र. में स्वतंत्रता के उपरांत ग्रंथालय शिक्षा के क्षेत्र में अल्प प्रयास हुये लेकिन समायांतर में ग्रंथालय शिक्षा प्राप्त सभी विश्वविद्यालय प्रदान कर रहे हैं।

प्रदेश में स्वतंत्रता उपरांत से ही सागर विश्वविद्यालय तथा उज्जैन विश्वविद्यालय में स्नातक एवं स्नातकोत्तर के कोर्स संचालित है। इसके अलावा राजस्थान तथा महाराष्ट्र में संचालित प्रमाण-पत्र तथा डिप्लोमा पाठ्यक्रम भी ग्रंथालय शिक्षा के प्रारंभिक आधार थे। प्रदेश में निजी क्षेत्र के संस्थान कामता प्रसाद भाषा-भारती जबलपुर 1972 से ग्रंथालय शिक्षा में स्नातक पाठयक्रम का कोर्स संचालित कर रहा है।

अविभाजित म.प्र. के रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर, घासीदास विश्वविद्यालय बिलासपुर, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय उज्जैन, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय जबलपुर तथा बरकतउल्ला विश्वविद्यालय भोपाल में भी ग्रंथालय शिक्षा का कोर्सेस संचालित हैं।

इसके अलावा दूरस्थ शिक्षा के अन्तर्गत भी भोज मुक्त विश्वविद्यालय तथा सागर विश्वविद्यालय रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय जबलपुर द्वारा भी ग्रंथालय शिक्षा के कोर्स संचालित हैं।

ग्रंथालय विज्ञान के शोध उपाधि के अन्तर्गत एम.फिल. तथा पी-एच.डी. की उपाधि भी प्रदेश के विश्वविद्यालयों द्वारा प्रदान की जा रही है।

सूचना तकनीक के प्रवेश से ग्रंथालय शिक्षा भी आधुनिक शिक्षा व्यवस्था का आधार है इस हेतु प्रदेश के विश्वविद्यालय में ग्रंथालय शिक्षा के विषयों में सूचना तकनीक को अनिवार्य रूप से सम्मिलित किया गया है।

समस्यायें

उपरोक्त चुनौतियों का सामना विश्वविद्यालय तथा महाविद्यालय स्तर के ग्रंथालय कर रहे हैं। मध्यप्रदेश में पुस्तकालयों का विकास अपेक्षा के अनुरूप नहीं हो पाया है जिसके प्रमुख निम्न कारण है—

1. म.प्र. में ग्रंथालय अधिनियम का लागू न होना।
2. कुशल प्रबंधयुक्त सूचना तकनीक से युक्त कर्मचारी/ग्रंथपाल की नियुक्ति नहीं।
3. सन् 1995 से महाविद्यालयों में ग्रंथपालों की स्थाई नियुक्तियाँ नहीं।
4. कार्यरत ग्रंथपाल नवीन सूचना तकनीक का प्रशिक्षण नहीं ले रहे हैं।
5. नवीनतम कुशल प्रबंधयुक्त स्नातकोत्तर रोजगार के अभाव से ग्रस्त।
6. प्रदेश में 435 महाविद्यालयों में से लगभग 65 महाविद्यालयों में ही ई-पुस्तकालय की सुविधायें।
7. ग्रामीण क्षेत्रीय महाविद्यालयों में ई-पुस्तकालय सुविधाओं का अभाव आवश्यक बजट की कमियाँ।
8. वर्तमान सूचना तकनीक के युग में भी परम्परागत ग्रंथालय विनिमयों से ग्रंथालय प्रबंधन।
9. आवश्यक बजट की कमियाँ।

सुझाव

सूचना तकनीक के सेवाओं का ग्रंथालयों में लागू करने हेतु निम्नांकित सुक्षाव आपेक्षित है—

1. प्राथमिक से माध्यमिक शिक्षा तक ग्रंथालय शिक्षा सहयोगी विषय में रूप में सम्मिलित किया जावें।
2. कम्प्यूटर ज्ञान की अनिवार्यता रखी जावे। ताकि छात्र-छात्रायें महाविद्यालय में प्रवेश लेते ही ग्रंथालय में ई-पुस्तकालय की सुविधाओं का लाभ ले सकें।
3. ग्रंथालय तकनीक चेतना पर परामर्श भी छात्र/छात्राओं को दिया जावे।
4. अनिवार्य रूप से पुस्तकालय स्वचालीकरण किया जावे।
5. पुस्तकालयों के उन्नयन हेतु पर्याप्त बजट प्रदान किया जावे।
6. प्रत्येक पुस्तकालय में पुस्तकालय कर्मचारियों की स्थायी नियुक्ति की जावे इत्यादि महत्वपूर्ण सुझाव है।

निष्कर्ष

इस प्रकार म.प्र. में परम्परागत ग्रंथालयों के स्वरूप में परिवर्तन की गति बेहद धीमी है इसमें तीव्रता की नितांत आवश्यकता है। म.प्र. में ग्रंथालय अधिनियम लागू कर स्कूली शिक्षा में ग्रंथालयों को प्रशिक्षित ग्रंथापाल प्रदान किया जा सकता है। विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालयीन ग्रंथालयों में भी मंद गति से तथा कम्प्यूटरों के प्रयोग से ग्रंथालय अति आधुनिक एवं ऊर्जावान तथा सूचना के संसार से तेजी से जुड़ते जा रहे हैं। यह हर्ष का विषय है। आइये! हम सभी अपने साथी ग्रंथपाल, शिक्षाविद् एवं छात्र-छात्रायें तथा शोधार्थी म. प्र. में ग्रंथालय शिक्षा के आधुनिक आधार-स्तंभ बनें। वर्तमान म.प्र. सरकार

म.प्र. के ग्रंथालयों को सूचना तकनीकी के क्षेत्र में आत्मनिर्भर एवं सुव्यवस्थित हेतु उधारपूर्वक फंड धन राशि प्रदान कर रही है। इसका सदुप्रयोग किया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. शर्मा, बी.के एवं ठाकुर यू. एम. पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान, आगरा, वाई. के. पब्लिशर्स, 3009
2. सत्यनारायण, एन. और पुस्तकालय कम्प्यूटरीकरणः निर्देश पुस्तिका नई दिल्ली, विश्व प्रकाशन, 1995
3. Role of Information Technology in college library: P.K. Tripathi, Librarian, R.I.E. Bhopal
4. "Development of electronic library in Govt. College of Madhya Pradesh: A perapective":Arjun Sing
5. Total quality management of lib & Inf. centers outline of the lecture delivered in the Refresher 6. course in library & Information science, Sambalpur University on 09.01.2006 by prof. R.K. Raut Sambalpur University.
6. Internet: its Importance & need for giving reference services in college libraries By V.S. CHOLIH infilibnet Ahemdabad.
7. www.mphighereducation.com

SHODH CHETNA – YEAR-3
(JAN. TO MARCH, 2017) VOL. 1

ISSN : 2350-0441

"भारतीय साहित्य एवं संस्कृति"

❑ डॉ. संध्या कुमारी*

भारत बहुत अनादि काल से विश्व में एक महान राष्ट्र इस रूप में रहा था कि यहाँ के मानव ने विश्व के अन्य स्थलों के मानव की तुलना में जीवन में एक अच्छी संस्कृति और सभ्यता का निर्माण कर जीवन को बहुत आनन्दित बना लिया था और मानव-जीवन ज्ञान-विज्ञान, दर्शन और विविध कलाओं से अलंकृत होता गया था। साहित्य कला कि विविध ज्ञान-विज्ञान तथा दर्शन का ज्ञान प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य था, जैसा कि भर्तृहरी ने नीतिशतक में कहा है—

साहित्य संगीत कला विहीनः
साक्षात् पशुपुच्छ विषाण हीनः।
तृणं न खादनपि जीवमानतद्भागधेयं परं पशूनाम्।

भर्तृहरि के उपर्युक्त श्लोक से ही सुधीजन साहित्य की गरिमा को जान गये होंगे। भर्तृहरि ने साहित्य, संगीत तथा कला को मानव के लिए अत्यन्त उपयोगी बताया, साथ-ही-साथ इससे विहीन लोगों को पशु की संज्ञा दी।

परन्तु ध्यान देने योग्य बात तो यह है कि इन तीनों में प्रथम स्थान साहित्य को ही क्यों दिया? शायद इसलिए कि समाज का वास्तविक प्रतिबिम्ब साहित्य ही प्रस्तुत करता है। साथ-साथ चारों पुरुषार्थों का स्रोत रहा है। इससे इतनी बात स्पष्ट हो जाती है कि मानव के लिए साहित्य का ज्ञान आवश्यक है।

संस्कृत साहित्य को पढ़ने के बाद हमें तत्कालीन संस्कृति का ज्ञान भलीभाँति हो जाता है।

यथा—कालिदास की अप्रतिम रचना अभिज्ञान शाकुन्तलम् के प्रथम अंक से राजा दुष्यन्त जब शिकार करते-करते कण्व ऋषि के आश्रम के मृगों पर बाण चलाने की चेष्टा करता है तो वैखानस (तपस्वी) हाथ उठाकर राजा से कहता है—

न खलु न खलु बाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन्।
मृदूनि मृगशरीरं पुष्पराशाविवाग्निः।।[2]

राजन यह आश्रम का मृग है इसे न मारिए न मारिए तथा राजा तपस्वी की बात मान लेता है। कालिदास के इस श्लोक से पता चलता है कि उस समय राजा स्वेच्छाचारी नहीं होता था। यद्यपि आश्रम एवं आश्रम का मृग दोनों ही उसकी राज्य की सीमा में आते हैं, तो भी राजा तपस्वी की बात को गम्भीरता से लेता है तथा उसके अनुकूल आचरण करता है।[3]

इसी क्रम में—

तपस्वी आगे कहता है—राजन्। हम लोग समिधा लाने के लिए जा रहे हैं। यह सामने मालिनी नदी के किनारे कुलपति का आश्रम दिखाई पड़ रहा है। यदि आपको विलम्ब न हो तो वहाँ जाकर अतिथि जनोचित सत्कार स्वीकार कीजिए।[4]

प्रस्तुत वाक्य से पता चलता है कि, उस समय व्यक्ति अपने कार्य के प्रति कितना सचेष्ट था, उसके अन्दर चाटुकारिता की भावना विद्यमान न थी। यथा आज के समय में है। यदि कोई राजा (आधुनिक नौकरशाह) हमसे कहीं जाने का केवल रास्ता भर पूछ ले तो हम

* एसोसिएट प्रोफेसर (संस्कृत विभाग), सेठ पी.सी. बागला (पी.जी.) कालेज, हाथरस (उ.प्र.)

अपना सारा कार्य छोड़कर उसको प्रसन्न करने के ध्येय से उसके पीछे-पीछे हो लेते हैं, जबकि तपस्वियों ने समिधा के लाने के कार्य को नजरअन्दाज न करके राजा को शिष्ट भाषा में कण्व के आश्रम का मात्र रास्ता ही बताया।

विनीतवेषेण प्रेवष्टव्यानि तपोवनानि नाम[5]

अर्थात् तपोवन में सादे वेश में जाना चाहिए। राजा दुष्यन्त इस बात को भलीभाँति जानते थे कि तपोवन जैसे पवित्र स्थल में बाह्य आडम्बर तथा अपने पद को दिखाने जैसी बात उचित नहीं है अतएव जन-सामान्य की भाँति अपने राजकीय वस्त्राभूषण उतार कर जाते हैं।

जबकि आज हम सर्वत्र अपने वैभव एवं पद को दिखाने की चेष्टा में ही रहते हैं। चाहे वह समाज हो या मन्दिर परिसर ही क्यूँ न हो। अतएव कह सकते हैं कि उस काल की संस्कृति आज भी अनुकरणीय है।

रघुवंशम् महाकाव्य में राजा दिलीप एक गाय की रक्षा हेतु अपने आपको समर्पित कर देते हैं। जिससे इस बात का प्रमाण मिलता है कि व्यक्ति अपने कर्त्तव्य के प्रति कितना त्यागशील था। आज हम अपने थोड़े से हित के लिए दूसरों का बड़ा से बड़ा हानि करने में तनिक भी संकोच नहीं करते।

एकातपत्रं जगतः प्रभुत्वं नवं वयः कान्तिमिदं वपुश्च। अल्पश्यहेतोरवहुहातुमिच्छन् विराच मूढः प्रतिभास मे त्वम्।।[6]

रघुवंशम् प्रथम सर्ग

कर्णभारम् में कर्ण की उक्ति—

शिक्षा क्षयं गच्छति काल पर्ययात्
सुबद्धमूला निपतन्ति पादपाः।
जलं जलस्थान गतं च शुष्यति
हुतं च दत्तं तथैव तिष्ठति।।

भासकृत कर्णभारम्।

शिक्षा एक समय के बाद नष्ट हो जाती है, वृक्ष भी अपनी आयु पूरी करके नष्ट हो जाते हैं, बड़े-बड़े सरोवर सूख जाते हैं, पर यज्ञ में दी गयी आहूति ही सदैव बची रहती है।

यज्ञ की महत्ता को बताते हैं। आज भी वर्षा के कारणों में यज्ञ का होना पाया जाता है। यज्ञ से हम वातावरण को भी शुद्ध करते हैं।

आज वैश्विक तापमान बढ़ रहा है। ग्लेशियर पिघल रहे हैं। कारण वृक्षों की अनियंत्रित कटाई है। इस विषय पर कालिदास का प्रकृति प्रेम हमें बताता है कि वृक्षों के प्रति तत्कालीन लोगों में कितना स्नेह था—पातुं न प्रथमम्[7]

अभिज्ञान शाकुन्तलम् के चतुर्थ अंक में शारंगधर कहता है कि—ओदकान्तं स्निगधो जनोऽनुगन्तत्य इति श्रूयते।[8]

अर्थात् प्रिय व्यक्ति का जल के किनारे तक अनुगमन करना चाहिए ऐसी श्रुति है। इससे हमें इस बात का ज्ञान होता है कि विदाई के समय हमें अपने बन्धु को कुछ दूर तक छोड़ना चाहिए।

काश्यप का शकुन्तला को विदाई के समय दिये गये 5 उपदेश आज भी किसी नववधू के लिए आचरणीय है—

शुश्रूषस्व गुरुन् कुरु......कुलस्याधयः।[9]

"अनिर्वणनीयं पर कलत्रम्—'' से ज्ञात होता है कि राजा पर-स्त्री के प्रति आदर भाव रखता था।

भवभूतिकृत उत्तररामचरितम् के तृतीय अंक में जब राजा राम अश्वमेघ यज्ञ प्रारम्भ करते हैं तो सीता के अभाव में उनकी स्वर्ण प्रतिमा (सीता की) को पत्नी के स्थान पर रखते हैं। इससे यह पता चलता है कि प्रत्येक कार्य में पत्नी का होना नितान्त आवश्यक होता था। पत्नी केवल कहने के लिए ही अर्द्धांगिनी नहीं है अपितु वास्तविक जीवन में उसका साहचर्य नितान्त आवश्यक है।

उत्तम राम चरितम् के चतुर्थ अंक में कौशल्या जब लव से उनके पिता का नाम पूछती हैं तो वह वाल्मीकि को अपना पिता बता देता है। बच्चे अक्सर उन्हीं को अपना पिता मान लेते हैं जिनके सान्निध्य में वे रहते हैं। अतएव माता-पिता का कर्त्तव्य है कि वे उनको वास्तविकता का ज्ञान कराते रहें। माता-पिता का कर्त्तव्य है कि पुत्री को उचित संस्कार देकर ही विदा करें। अपने वंशानुगत कार्य के प्रति

व्यक्ति को सजग रहना चाहिए। कारण जो कार्य वंश परम्परा से चला आ रहा है, उसे करने में उसे किसी प्रकार की अड़चन नहीं आयेगी। कारण, घर में ही उसके सम्पूर्ण सम्स्याओं का समाधान आसानी से मिल जाया करेगा।

अतएव अभिज्ञान शाकुन्तलम् के छठवें अंक में महाकवि कालीदास लिखते हैं—

सहजं किल यद् विनिन्दितं न खलु तत् कर्म विवर्जनीया[10]

शूद्रककृत मृच्छकटिकम् में एक गणिका एक सामान्य पुरुष के प्रेम में पड़ जाती है। इसका कारण था उसकी उदारता, इसी प्रकरण ग्रन्थ से लेखक यह सिद्ध करना चाहता है कि किसी के प्रति प्रेम उसके आन्तरिक गुणों के कारण होता है न कि बाह्य कारणों से।

इसी ग्रन्थ में जब बसन्त सेना के गहनों की चोरी हो जाती है तो चारूदत्त उसकी सफाई न पेश करते हुए अपनी पत्नी का बहुमूल्य हार बदले में भिजवाता है। इससे हमें यह सीख मिलती है कि धरोहर की सब प्रकार से रक्षा करनी चाहिए।

भारवि कृत किरातार्जुनीयम् के प्रथम अंक में स्पष्ट रूप से उल्लेख मिलता है कि—'हिंत मनोहारि व दुर्लभ वचः' अर्थात् हितकर और मनोहारी वचन दुर्लभ है। साथ-ही-साथ इस बात का भी प्रमाण मिलता है कि राजा का सेवक उनको सच्ची सलाह ही देता था न कि उनकी चाटुकारिता करने के लिए झूठी और प्रिय बात कहे।

माघकृत शिशुपालवधम् में—जब यह निश्चित हो जाता है कि कृष्ण के हाथों ही शिशुपाल का बध होगा तो उनकी बुआ उनसे अपने पुत्र शिशुपाल की रक्षा का वचन मांगती हैं। इसके लिए कृष्ण कहते हैं कि मैं उनके 100 अपराधों को क्षमा कर दूँगा।

जब योगश्वर कृष्ण किसी के 100 अपराधों को क्षमा कर सकते हैं तो हम जैसे सामान्य व्यक्ति यदि कोई गलत कार्य कर दे तो क्षमा कर देना चाहिए। लेकिन क्षमा, क्षमा हो कायरता नहीं। कारण ''क्षमा शोभती उस भुजंग को जिसके पास गरल हो।''

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि संस्कृत साहित्य में वर्णित भारतीय संस्कृति की अवधारणाओं को यदि हम ध्यान में रखें तो आधुनिक युग में भी हम अपने सम्पूर्ण कार्यों का निर्वहन भलीभाँति कर सकते हैं। विश्व की विशिष्ट संस्कृतियों में भारतीय संस्कृति का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति प्राचीनतम होने के अतिरिक्त प्रगतिशील भी रही है और आज, जबकि अन्य प्राचीन सभ्यताएँ प्रायः नष्ट हो चुकी हैं, भारतीय सभ्यता और संस्कृति जीवित ही नहीं, उपयोगी भी हैं। भौतिकवाद के इस युग में लोगों के बढ़ते हुए मानसिक तनाव और अन्तर्द्वन्द्व का एकमात्र समाधान भारतीय आध्यत्मवाद प्रदान करता है जो भारतीय साहित्य एवं संस्कृति की अपनी एक पृथक विशेषता है। यदि हम भारतीय साहित्य एवं संस्कृति की विशेषताओं को अपने जीवन में आत्मसात् कर लें तो विश्व की समस्त समस्याओं यथा—गरीबी, भुखमरी, भ्रष्टाचार, आतंकवाद, नारी का अपमान इत्यादि का निराकरण हो जायेगा और विश्व में शान्ति की स्थापना हो जायेगी।

सन्दर्भ

1. भर्तृहरि 'नीतिशतकम्' 1/12
2. अभिज्ञान शाकुन्तलम्—प्रथम अंक
3. अभिज्ञान शाकुन्तलम् 1/10
4. अभिज्ञान शाकुन्तलम् गद्य सं. 28
   वैखानसः-राजन् समिदाहरणाय प्रस्थिता वचम्। एव खलु कण्वस्य कुलपतेः अनुभाषिनीतीरमाश्रमो दृश्यते। न वेदन्यकार्यानिपातः प्रविश्य प्रतिगृह्यताम् आतिथेयः सत्कारः।
5. अभिज्ञान शाकुन्तलम्-गद्य सं. 4
6. रघुवंशम् प्रथम सर्ग
7. अभिज्ञान शााकुन्तलम् 4/9
8. अभिज्ञान शाकुन्तलम् गद्य सं. 99, चतुर्थ अंक
9. अभिज्ञान शाकुन्तलम् 4/18
10. अभिज्ञान शाकुन्तलम् 6/1

SHODH CHETNA – YEAR-3
(JAN. TO MARCH, 2017) VOL. 1

ISSN : 2350-0441

प्राचीन भारत में सामन्तवाद सम्बन्धी विचारधारा

❑ डॉ. कुन्ती साहू

शोध सारांश

सामन्तवाद किसी भी राष्ट्र के हित में नहीं होता है। शक्तियों का हस्तांतरण किसी विशेष समूह या व्यक्ति के हाथों में चले जाने से शासन का संचालन समुचित रूप से नहीं होता है। जिसका प्रमुख कारण अनुभवहीनता होती है और क्षेत्रीयता की भावना प्रबल होती जाती है। जिससे आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक ह्रास होता है। सामन्तवादी शासन में सबसे ज्यादा कृषि के ऊपर दबाव पड़ता है और सबसे ज्यादा हानि किसानों को होती है। साथ ही किसानों का शोषण भी होता है। उनकी स्थिति अर्द्धदास के समान हो जाती है। सामन्तवादी व्यवस्था में राजस्व संग्रह का दायित्व सामन्तों पर निर्भर हो जाता है, इसका प्रभाव राजकोष पर निश्चित रूप से हितकर न रहा। इससे राजा अथवा केन्द्र द्वारा स्थायी विशाल सेना रख पाने में असमर्थता प्रगट होती है। राजा सैनिकों के लिए लगभग सामन्तों पर ही आश्रित हो जाता था। हाथी व घोड़े भी राजा के एकाधिकार में नहीं रह गए थे। सामन्तों की स्वतंत्रता के समय राजा ने उनको स्वयं सैनिक दायित्व सौंपे। इस सामन्ती व्यवस्था का सबसे बुरा परिणाम यह रहा कि अर्थव्यवस्था से गतिशीलता का लोप हो गया। संकुचित अर्थव्यवस्था का विकास हुआ। इसका प्रभाव उत्पादन पर पड़ा और इस प्रकार देश की अर्थव्यवस्था व सुरक्षा भी प्रभावित हुई। जिसका परिणाम हमें ब्रिटिश उपनिवेश के रूप में भुगतना पड़ा।

प्रस्तावना :–

भारतीय सामप्तवाद पश्चिमी देशों के सामन्तवाद की तरह नहीं है। जितना क्रूररूप पश्चिमी सामन्तवाद का देखने को मिलता है। उतना क्रूररूप हमें भारतीय सामन्तवाद का नहीं मिलता, परन्तु भारत में सामन्तवाद के उदय की प्रक्रिया धीमी गति से प्रारंभ होती है। यह किसी–न–किसी रूप में मौर्योत्तर काल से 21वीं शताब्दी तक विद्यमान रहा। भारतीय सामन्तवाद ने नगरीकरण की प्रक्रिया को रोक दिया और

* ग्राम-सकोला, पोस्ट-बदरा, तहसील-कोतमा, जिला-अनूपपुर (म.प्र.)-484334

ग्रामीण अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहन दिया जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रगति रुक गई और भारत में छोटे–छोटे राज्यों का उदय हुआ। भारतीय सामन्तवाद मुख्य रूप से भूमि से जुड़े अधिकारों से संबंधित था।

प्राचीन भारत में सामन्तवाद संबंधी विचारधारा

प्राचीन भारत में सामन्तवाद के उदय संबंधी विचारधारा के मुख्य प्रर्वतक प्रो. रामशरण शर्मा हैं, जिन्होंने गुप्तोत्तर कालीन सामाजिक, आर्थिक संरचना को स्पष्ट करने के सन्दर्भ में सामन्तवाद शब्द का प्रयोग किया है। कृषिजन्य अर्थव्यवस्था में ही मुख्यतः सामन्तवाद का उदय होता है। आठवीं शताब्दी के बाद से व्यापक स्तर पर भूमि अनुदान प्रदान किये जाने के कारण भूमि पर श्रेणीबद्ध नियंत्रण स्थापित होता गया।

सामन्तवाद व्यवस्था में एक ओर भू–स्वामियों का वर्ग होता है तथा दूसरी ओर दास सदृश कृषकों का वर्ग था। इस व्यवस्था के अन्तर्गत भू–स्वामी वर्ग सामाजिक, धार्मिक या राजनीतिक ढंग से कृषि अधिशेष का दोहन करते हैं। यह मार्क्सवादी विचारधारा है। सामन्तवाद से सम्बन्धित मार्क्सवादी विचारधारा सामन्तवाद को 'कृषक दासत्व' 'अदिष्ट सम्पत्ति' एवं 'संविभाजित प्रभुसत्ता' मानती है। प्रचीन भारत में भूमि ही उत्पादन व्यवस्था का मुख्यधार (प्रमुख स्त्रोत या माध्यम) थी। किसी भूखण्ड पर किसानों के अधिकार बहुत कम और भू–स्वामियों को अधिक अधिकार प्राप्त थे। भूमि अनंदान व्यवस्था के स्वरूप से भूस्वामियों ने उत्पादन के साधनों पर अपना सामान्य नियंत्रण स्थापित करके उसका यथेष्ट लाभ उठाया।

भारत में सामन्तवाद का उदय

गुप्त सम्राज्य के पतन एवं विघटन के बाद अनेक छोटे–छोटे राज्यों का उदय हुआ। इन राज्यों के शासकों एवं व्यक्तिगत दानदाताओं द्वारा भूमिदान से संबंधित अनेक अधिकार–पत्र एवं प्रलेख प्रदान किए गए। भूमि अनुदान धार्मिक एवं लौकिक उद्देश्यों हेतु प्रदान किए जाते हैं। लौकिक श्रेणी में भूमि अनुदान के अधिकांश लाभनुभोगी राज्य के उच्च अधिकार होते थे। जिन्हें भूमि अनुदान के माध्यम से वेतन या परिश्रमिक प्रदान किया जाता था। धार्मिक श्रेणी में पुण्यार्थ एवं धर्मदाय के रूप में ब्राह्मणों और मन्दिरों को भूमि अनुदान प्रदान किए जाते थे। भूमि अनंदान प्रथा के कारण भूमि स्वामित्व के स्वरूप में परिवर्तन हुआ और स्वतन्त्र किसानों की स्थिति गिर कर कृषि दासों की तरह हो गई जिसके फलस्वरूप अन्ततः सामन्तवाद का उदय हुआ।

सामन्तवाद के लक्षण

आठवीं शताब्दी के बाद व्यापक स्तर पर भूमि अनुदान प्रदान किए जाने के कारण भूमि पर श्रेणीबद्ध या सौपानिक नियंत्रण की स्थापना हुई। इस व्यवस्था के द्वारा भूस्वामियों के विभिन्न वर्गों का उदय हुआ। जिनकी स्थिति खेतिहरों या किसानों से बहुत भिन्न रहती थी। सामन्तवादी कृषि उत्पादन व्यवस्था में भूस्वामी भूमि के किराये के रूप में कृषि अधिशेष की भागीदारी करते थे। सामन्तवादी भू–व्यवस्था में भूस्वामियो द्वारा भूमि पर लिया जाने वाला कर या लगान' वस्तुतः भूमि का किराया (Rent) होता था। जिसे भू–स्वामी बन्धुआ मजदूरी, नकदी या जिन्स के रूप में वसूल किया करते थे। भू–स्वामियों एवं कृषकों के मध्य यह सम्बन्ध मुख्यतः स्वामी असामी की होते थे और इसी पर समस्त कृषि वितरण प्रणाली आश्रित रहती थी। प्रचीन भारत में सामन्तवाद के उदय के सम्बन्ध में प्रो. रामशरण शर्मा की इस विचारधारा का अनेक इतिहासविदों ने खण्डन किया है। निस्सन्देह रूप

से गुप्तोत्तर काल में भूमि अनुदान व्यवस्था के परिणामस्वरूप भू–स्वामी अभिजात्य वर्ग का उदय हुआ। गुप्तोत्तर कालीन शासकों द्वारा ब्राह्मणों, धार्मिक संस्थाओं, सैनिक सेवा के बदले सामन्त शासकों, अपनी जाती या राजपरिवार के सदस्यों एवं उच्च अधिकारियों को भूमि अनुदान प्रदान किए जाते थे। इन अनुदानों के साथ अनुदान प्राप्त करने वाले व्यक्तियों एवं संस्थाओं के विशेष अधिकारों का भी उल्लेख होता था। इस प्रक्रिया के अर्न्तगत कृषि योग्य भूमि पर विभिन्न प्रकार के स्वत्तों एवं अधिकारों की स्थापना हुई। गुप्तोत्तर काल में सामान्य धारणा यह थी कि भूपति होने के कारण राजा समस्त भूमि का स्वामी है। परन्तु व्यवहारिक रूप से जो व्यक्ति कृषि करते थे भूमि पर उनके अधिकारों अथवा मिल्कियत का आदर किया जाता था इस श्रेणी के कृषकों द्वारा राज्य को भूमिकर देना पड़ता था। भूमिकर न अदा करने की स्थिति में ही राज्य उनकी भूमि नीलाम कर सकता था।

सामन्तवाद का क्षेत्र

सामन्तवाद केवल उत्तर भारत में ही विद्यमान नहीं था अपितु दक्षिण भारत में भी विद्यमान था जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण मन्दिरों का प्रशासन दक्षिण भारत में मन्दिरों को भूमि अनुदान प्रदान किया जाता था जिसके साथ–साथ मन्दिरों को भूमि प्रशासन का भी अधिकार प्रदान कर दिया जाता था। दक्षिण भारत के मन्दिर स्थानीय प्रशासन के साथ साथ न्यायिक दायित्वों को भी पूरा करते थे। तथा राज्य की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण दायित्वों का निर्वाह करते थे।

उत्तर भारत में अनुदान प्राप्त भूमि स्वामी तो थे ही, साथ ही प्रान्तीय शासकों को प्राप्त अधिकारों में सामन्तवादी लक्षण बहुत अधिक था। गुप्तकाल में केवल अनुदान प्राप्त भूमि पर ही सामन्तवादी लक्षण प्रतीत होता है। परन्तु हर्ष के समय में यह प्रान्तीय शासकों के हाथों में चली गई जिससे सामन्तवाद का लक्षण बहुत ज्यादा था। सामन्तवाद के कारण ही केन्द्रीय प्रशासन और राज्य प्रशासन के बीच सम्बन्ध टूट गए। सामन्तवादी लक्षण के कारण राज्य अपने–अपने क्षेत्र में स्वतंत्र होते थे और वे केन्द्र की स्थिति से उनका कोई लेना–देना नहीं होता था। सामन्तवादी लक्षण के कारण ही केन्द्र निर्बल हो गया और हम देखते हैं कि हर्ष के बाद से भारत में बहुत ज्यादा छोटे–छोटे राज्यों का उदय हुआ। यह न केवल उत्तर भारत की स्थिति थी अपितु यह दक्षिण भारत में भी चल रहा था। दक्षिण भारत के विभिन्न भागों में अनेक छोटे–छोटे राज्यों का उदय हो गया था।

मध्यकालीन भारत में सामन्तवाद जैसे लक्षण लगान वसूली के क्षेत्र में विद्यमान थे। जिसमें इक्ता प्रथा को शामिल किया जा सकता है। भू–राजस्व के क्षेत्र में परिवर्तन होता गया परन्तु सामन्ती लक्षण विद्यमान रहा।

विजय नगर साम्राज्य में यह नायंकर व्यवस्था के रूप में विद्यमान था। नायंकर व्यवस्था सामन्तवाद का ही रूप था। मुगलकाल में जब सेना में मनसबदारी प्रथा का आरंभ हुआ तो यह शुरू में तो ठीक था परंतु कालान्तर में यह व्यवस्था भूमि पर अधिक दबाव बताने लगा जिससे कृषि जन्य भूमि पर बुरा असर पड़ा।

इसके साथ ही जागीदारी प्रथा जमीदारी प्रथा में भी सामन्ती लक्षण के कुछ अंश विद्यमान थे जिसके कारण भी कृषिजन्य भूमि पर दबाव बढ़ता गया। मराठा साम्राज्य में भी कालान्तर में सामन्ती लक्षण प्रकट हो गया जो होल्कर गायकवाड़ सिन्धिया आदि क्षेत्रीय शासकों के रूप में प्रगट हुए।

सामन्तवाद के प्रभाव :–

सामन्तवाद का प्रभाव कृषि क्षेत्र तक सीमित नहीं थी बल्कि इसका सबसे ज्यादा प्रभाव आर्थिक क्षेत्र पर पड़ा। दूसरा प्रभाव राजनीतिक क्षेत्र में पड़ा। क्षेत्रीयता की भावना इतनी ज्यादा प्रबल हो गई कि क्षेत्रीय शासक अपने क्षेत्र के अलावा किसी दूसरे राज्य की सहायता नहीं करते थे और आपस में वैमनस्य रखते थे। जिसका लाभ विदेशी आक्रान्ताओं को मिला जिसका परिणाम यह हुआ कि भारत को जन–धन की हानि हुई। केन्द्रीय शक्ति कमजोर होने के कारण भारत के व्यापारिक मार्ग मौर्य काल की तरह सुरक्षित नहीं रहे। जिससे भारत की आर्थिक प्रगति रुक गई और भारत के नगरों का ह्रास हो गया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- प्रारंभिक भारत का परिचय–रामशरण शर्मा
- डेक्लाइन ऑफ द किंग्डम ऑफ मगध–सिन्हा
- प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति–कृष्ण कांत श्रीवास्तव
- अर्ली इंडिया फार्म द ऑरिजिन्स 1300 ई.पू.–रोमिला थापर
- मध्यकालीन भारत राजनीति, समाज और संस्कृति–सतीश चन्द्र
- आधुनिक भारत का इतिहास–बिपिन चन्द्रा
- भारतीय अर्थव्यवस्था–रमेश सिंह
- आधुनिक भारत का इतिहास–मुहम्मद तारिक
- द कैम्ब्रिज इकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया–सव्यसाची भट्टाचार्य

SHODH CHETNA – YEAR-3 ISSN : 2350-0441
(JAN. TO MARCH, 2017) VOL. 1

महाराज भर्तृहरि की विभिन्न धारणाएँ

❐ डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद चतुर्वेदी*
❐ बाला प्रसाद विश्वकर्मा**

शोध सारांश

भर्तृहरि वेदान्तदर्शन के अनुयायी प्रतीत होते हैं। उन्होंने वेदान्त मतों का अनेक स्थानों पर उदाहरण प्रस्तुत किया है। वे ब्रह्म–साक्षात्कार को मानव–जीवन का परम प्राप्तव्य मानते हैं। उनके मत से पूर्ण ज्ञान के द्वारा मोह का उन्मूलन तथा कर्म संन्यास ये दो ब्रह्म–साक्षात्कार के साधन हैं। उन्होंने उपदेश त्रिशती के माध्यम से मनुष्य जाति को कुछ विशेष नैतिक सिद्धान्तों की शिक्षा दिया है। उनका मत है कि मूर्ख होना अभिशाप है। विवेक खोना पतन का लक्षण है। विद्या ही मनुष्य का सच्चा आभूषण है। आत्मसम्मान की रक्षा हर कीमत पर करनी चाहिए। परोपकार से बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। जिस प्रकार वृक्षों का काम फल देना है, मेघों का काम जल देना है तथा नदियों का काम दूसरों के लिए बहना है, उसी प्रकार सज्जनों का काम उपकार करना है। धन का उपार्जन आवश्यक है, क्योंकि धन के बिना मनुष्य के सारे गुण व्यर्थ हो जाते हैं। परन्तु धन भाग्य के अनुसार ही मिलता है। इसलिए मनुष्य को भाग्य का निर्माण करने के लिए सत्कर्म करते रहना चाहिए। शील का मनुष्य के जीवन में बड़ा महत्व है। इसकी रक्षा पर भर्तृहरि बहुत जोर देते हैं।

भर्तृहरि का विचार है कि ऊँचे पहाड़ के शिखर पर से अपने को नीचे किसी कठोर पर्वत पर गिरकर जान दे देना अच्छा है, बड़े विषैले साँप के तीखे दाँतों के बीच हाथ डाल देना कहीं अच्छा है, जलती हुई या धधकती हुई अग्नि में कूद पड़ना कहीं अच्छा है, परन्तु शील–भ्रष्ट या चरित्रहीन होना किसी भी दशा में अच्छा नहीं है। पुनः वे आगे लिखते हैं कि जिस मनुष्य के शरीर में संसार की प्रिय वस्तु शील है, उसके लिए अग्नि जल हो जाता है, समुद्र नहर हो जाता है, मेरु पर्वत तत्काल ही छोटी शिला हो जाता है, सिंह तुरन्त हरिण हो जाता है, सर्प पुष्पों की माला हो जाता है और विष

* प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष (संस्कृत), शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
** शोधार्थी (संस्कृत), शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

अमृत सरीखे लगने लगता है। इसी प्रकार धैर्य, सत्य, क्षमा तथा सत्संगति आदि गुणों की ओर भी भर्तृहरि ने लोगों का ध्यान आकृष्ट किया है। इस प्रकार भर्तृहरि का नीति–सिद्धान्त बिना किसी भेद–भाव के समग्र विश्व के लिए कल्याणकारी है।

महाराज भर्तृहरि के शृंगार सम्बन्धित विभिन्न धारणाएँ

भर्तृहरि के तीनों शतक गीतिकाव्य के रूप में भी विवर्णित किये गये हैं। गीतिकाव्य के विषय के लिए कवि अपने से बाहर नहीं जाता, प्रत्युत अपने हृदय के अन्तराल में स्थित स्वीय अनुभूति के द्वारा आत्मसात् किये गये विषय को अपने व्यक्तित्व के रंग में रंग कर वह इतनी सुन्दरता से, इतने मोहक शब्दों में व्यक्त करता है कि वह उनकी अपनी चीज होती है–विशुद्ध तथा परकीयत्व से नितान्त अमिश्रित। संक्षिप्तता तथा गेयता उसके अन्य उपलक्षण हैं। कवि को गीति में वर्ण्य विषय के परिबृंहण के लिए अवकाश नहीं होता; कभी–कभी भावना का आवेश इतना क्षणिक होता है कि कवि एक ही पद या पदार्थ में उनकी पूर्ण अभिव्यक्ति कर देता है। अनुभूति तथा अभियक्ति के तारतम्य पर ही काव्य के परिणाम का प्रश्न आधारित रहता है। कभी–कभी अभिव्यक्ति दूरगामी होती है, तब काव्य का परिणाम मात्राकृत अधिक होता है, नहीं तो संक्षिप्तता गीतिकाव्य का आवश्यक तत्त्व होता है।

गेयता भी इसी प्रकार गीति का अनिवार्य उपादान है। काव्य तथा संगीत–दो पृथक–पृथक् अभिव्यक्तियाँ हैं। काव्य अपनी अभिव्यंजना के निर्मित संगीत का सहारा नहीं चाहता और संगीत भी अपने प्राकट्य के निमित्त काव्य का आलम्बन नहीं चाहता, परन्तु दैवयोग से दोनों का एकत्र समन्वय कला की दृष्टि से एक अत्यन्त उत्कृष्ट अभिव्यक्ति का रूप धारण करता है। और गीति उसका एक मधुमय मौन स्वरूप है। इन सब तत्त्वों के सहयोग से गीति काव्यरूपों में एक उत्कृष्ट काव्य–रूप है।

संस्कृत भाषा में निबद्ध गीतिकाव्यों में यह पूर्वोक्त वैशिष्ट्य अपनी पूर्ण मात्रा में उपस्थित है। गीति–काव्य संस्कृत भारती का परम रमणीय अंग है। संस्कृत में गतिकाव्य मुक्तक तथा प्रबन्ध दोनों प्रकार से उपलब्ध होता है। 'मुक्तक' से अभिप्राय उस काव्य से है जो सन्दर्भ आदि बाह्य उपकरणों से मुक्त होकर स्वयं रसपेशल होता है। इसके समझने के लिए बाहरी सामग्री की अपेक्षा नहीं होती। संस्कृत के मुक्तक उन रसभरे मोदकों के समान हैं जिनके आस्वादमात्र से सहृदयों का हृदय सद्यः परितृप्त हो जाता है। जो आलोचक रस की पुष्टि के लिए प्रबन्धकाव्य को ही उत्तम साधन समझते हैं, उन्हें आनन्दवर्धन की यह उक्ति भुलनी नहीं चाहिए– मुक्तकेषु हि प्रबन्धेषु इव रसबन्धनाभि–निवेशिनः कवयो दृश्यन्ते। मुक्तक काव्य के सुन्दर उदारण भर्तृहरि तथा अमरूक के शतक है। प्रबन्धात्मक गीतिकाव्य के दृष्टान्त कालिदास का मेघदूत तथा उसी के अनुकरण पर लिखे गये 'सन्देश–काव्य' हैं। गीति–काव्यों में मधुर पदावली के साथ संगीतमय छन्दों का भी प्रयोग किया गया है। वर्णन विशेषकर शृंगार, नीति, वैराग्य आदि प्राकृतिक दृश्यों के हैं। यहाँ कोमल भावों की मधुरिमा प्रत्येक रसिक के हृदय को हठात् अपनी ओर आकृष्ट करती है। इसका कारण यह है कि इन गीति–काव्यों का बाह्य रूप जितना अभिराम तथा सुन्दर है, उतना ही सुन्दर तथा पेशल उनका आभ्यन्तर रूप भी है।

रमणी का सौन्दर्य इन काव्यों में जितनी सुन्दरता तथा स्वाभाविकता के साथ परिस्फुटित हो पाया है उतना अन्यत्र मिलना दुर्लभ–सा प्रतीत हो रहा है। नारी के हृदय तथा रूपछटा के रंगीन चित्र किस रसिक के हृदय में प्रमोद की सरिता

नहीं बहाते ? शृंगार की भिन्न–भिन्न अवस्था का मार्मिक चित्रण इस काव्य की महती विशेषता है। आलोचकों की यह धारणा नितान्त भ्रान्त है कि शृंगारिक काव्यों में इन्द्रिय के उत्तेजक काम का ही अभिराम चित्रण है। यह अपेक्षा संस्कृतसाहित्य के शृंगार–प्रधान काव्य के विषय में आज भी किया जाता है, परन्तु ऐसे आक्षेपकों की संस्कृत–साहित्य के प्रमुख आलोचक रुद्रट की ये उक्तियां कभी न भूलनी चाहिए, जिनमें उन्होंने कामवर्णन के प्रति संस्कृत कवियों का आदर्श प्रस्तुत किया है। कवि को परदारा की न तो एषणा करनी चाहिए और न उसका उपदेश ही देना चाहिए और न कर्तव्य–बुद्धि से दूसरों के लिए उनकी प्राप्ति का उपाय ही बतलाना चाहिए। तब कवि का उद्देश्य क्या होता है? वह केवल काव्य के अंग होने के कारण ही विद्वानों की आराधना के लिए उनके चरित्र का वर्णन करता है। अतः इस कार्य में कवि का कोई दोष नहीं होता –

न हि कविना परदारा एष्टव्या नापि चोपदेष्टव्याः।
कर्तव्यतयान्येषां न च तदुपायोऽभिघातव्यः।।
किन्तु तदीयं वृत्तं काव्याङ्गतया स केवलं वक्ति।
आराधयितुं विदुषस्तेन न दोषः कवेरत्र।।

इन गीतिकाव्यों के अध्ययन से तो नारी प्रेम की उदात्तता तथा विशुद्धता का ही परिचय हमें प्राप्त होता है। प्रकृति–चिण का भी इनमें प्रमुख स्थान है। बाह्य प्रकृति तथा अतः प्रकृति इन दोनों का परस्पर प्रभाव बड़ी सीवता के साथ यहां दर्शाया गया है। संयोग तथा वियोग–उभय अवस्थाओं में प्रकृति मानवहृदय पर अपना प्रभाव डालने से विरत नहीं होती। उल्लसित हृदय को प्राकृतिक सौन्दर्य द्विगुणित कर देता है, परन्तु वही दृश्य विषण्ण हृदय की विषाद रेखा को और भी गाढ़ा बना देता है। इस प्रकार ये गीति–काव्य प्राकृतिक दृश्यों के चलचित्रों के समान रसिकों के सामने उपस्थित होकर अपना सौन्दर्य दिखलाते हैं।

भर्तृहरि की शृंगार विषय धारणा है कि इस संसार में सर्वोत्तम वस्तु के रूप में मृगनयनी ही आती है। प्रश्नोत्तर रूप में वे प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि जो लोग रसिक हैं उनके देखने योग्य वस्तुओं में सबसे उत्तम वस्तु क्या है। उत्तर प्राप्त होता है मृग के समान नेत्रों वाली नायिकाओं का प्रेम से आह्लादित मुख। अगला प्रश्न है सूँघने की उत्तम वस्तु क्या है? उत्तर मिलता है मृगनयनी के मुख की भाप। सुनने योग्य क्या है? उसकी मधुरवाणी सबसे स्वादिष्ट वस्तु क्या हो सकती है? उत्तर मिलता है अधर पल्लव का रस। स्पर्श की वस्तु क्या हो सकती है? तो कहा गया कि उसके कोमल शरीर का स्पर्श। ध्यान करने हेतु क्या हो सकता है? तो कवि का मन्तव्य है कि प्रमदा का यौवन एवं विलास। आचार्य भर्तृहरि का अपना मत है कि रसिकजनों का सारा संसार उसकी प्रेयसी ही है–

द्रष्टव्येषु किमुत्तमं मृगदृशां प्रेमप्रसन्नं मुखं
घ्रातव्येष्वपि किं तदाऽस्यपवनः श्रव्येषु किं तद्वचः।
किं स्वाद्येषु तदोष्ठपल्लवरसः स्पृश्येषु किं तत्तनु–
र्ध्येयं किं नवयौवनं सुहृदयैः सर्वत्र तद्विभ्रमः।।[1]

मायारूपिणी नारी का सामर्थ्य वर्णित करते हुए भर्तृहरि कह रहे हैं कि तरुणी किसके मन को अपने वश में नहीं कर लेती अर्थात् उसके हाव–भाव को देखकर बड़े–बड़े योगी भी मन को अपने नियंत्रण में नहीं कर पाते। इसीलिए भर्तृहरि का कथन सर्वोत्तम प्रतीत होता है कि जिनके चंचल कंकणों के शब्द, क्षुद्रघण्टिका की ध्वनि और नूपुर की झनत्कार से राजहंसिनियों की चाल जीत लिया है, वे तरुणी भयभीत हरिणी के समान नेत्रपात कर किसके मन को विवश नहीं करतीं। नाना प्रकार की चंचलता और हावभाव के कारण बार–बार बज उठने वाले कंकण, चूड़ियों की झनकार, घुंघरू

वाली करधनी अथवा नूपुर की ध्वनि राजहंस की गति को मात कर देने वाली मन्द–मन्द चाल, हरिणी के समान कटाक्ष, भला कौन पुरुष उससे अपनी रक्षा कर सकता है? सब नारी के वश में हो जाते हैं–

एताः स्खलद्वलयसंहतिमेखलोत्थ–
झङ्कारनूपुररवाहृतराजहंस्यः ।
कुर्वन्ति कस्य न मनो विवशं तरुण्यो
वित्रस्तमुग्धहरिणीसदृशैः कटाक्षैः।।[2]

साधु बनने की इच्छा होने पर भी यदि रमणी का दर्शन हो जाता है तो असाधु की तरह मन की वृत्तियाँ भ्रमणशील हो जाती हैं यह कैसी बिडम्बना है इसके विषय में भर्तृहरि कहते हैं, केश संयमी है, अर्थात् सुगन्धित तैलयुत कंघी से सँवारे गये हैं, नेत्र श्रुति के पार हो गये हैं, अर्थात् कानों तक अत्यन्त विशाल हैं, मुख अन्तर से सहज ही शुचि अर्थात् विमल ऐसे द्विजों के समूह से भरे अर्थात् दाँतों की पंक्ति की किरण से चमकता है और दोनों स्तनकलश निरन्तर मुक्ता का वास अर्थात् मोतियों की माला से सुशोभित हैं। हे नारि! तुम्हारा शरीर शान्ति रूप भी है अर्थात् संयमी श्रुति शुचि द्विज मुक्त, पर मुझे तो अनुराग ही उत्पन्न करता है। सुन्दर युवती के केश संयमी साधु के समान बँधे रहते हैं, नेत्र वेद के सदृश प्रकाशवान् होते हैं, कान श्रुति के भण्डार और श्वेत दन्तपंक्ति स्वच्छ वसनधारी ब्राह्मण के समान लगती है, उसके दोनों स्तन अमृत कलश के समान मालूम पड़ते हैं, जिसमें अनमोल मोती भरे पड़े हैं। इन सबके विपरीत उसका शरीर हमें वैरागी न बना कर भोग विलासी बनाता है, यह कैसी विडम्बना है–

केशाः संयमिनः श्रुतेरपि परं पारं गते लोचने
अन्तर्वक्त्रमपि स्वभावशुचिभिः कीर्णं द्विजानां गणैः।
मुक्तानां सतताधिवासरुचिरं वक्षोजकुम्भद्वय–
मित्थं तन्वि वपुः प्रशान्तमपि ते शोभं करोत्येव नः।।[3]

कुच भार कष्टकर होते हैं। परन्तु आकर्षण का केन्द्र कुच प्रदेश ही होता है। भर्तृहरि का मानना है कि कुच और नितम्ब यदि गुरुतर नहीं है तो रमण का पूर्ण आनन्द नहीं मिल पाता। जबकि ये उसके लिए जो भार वहन कर रहा है संभव है कि कष्ट प्रदाता हों। उन्नत स्तन के भार, चंचल नेत्र, चंचल भ्रूलता और रागभरे नवीन पत्तों के समान दोनों अधरपल्लव ये रसिकों के शरीर में पीड़ा करें, तो करें, परन्तु कामदेव के हाथ की लिखी सौभाग्य के अक्षरों की पंक्ति के समान मध्यस्थ रोमावली क्यों अधिक ताप देती है? तात्पर्य यह कि उन्नत चंचल रागवान् प्रायः पीड़ा देता ही है, परन्तु मध्यस्थ वह रोमावली क्यों अधिक पीड़ा देती है। अर्थात् विपरीत करती है। दूसरों को कष्ट देना दुर्जन का स्वभाव है, किन्तु यह रूप की सज्जनता क्यों कष्टदायक है, यह ज्ञात नहीं; क्योंकि परम सुन्दरी को देखकर तरुण का मन कसकने लगता है–

यद्वृत्तः स्तनभार एष तरले नेत्रे चले भ्रूलते
रागान्धेषु तदोष्ठपल्लवमिदं कुर्वन्तु नाम व्यथाम्।
सौभाग्यक्षरपङ्क्तिरेव लिखिता पुष्यायुधेन स्वयं
मध्यस्थाऽपि करोति तापमधिकं रोमावली केन सा।।[4]

ज्ञानी जनों का कालयापन दो प्रकार से होता है। स्थिर चित्तयोग से अथवा सुन्दर भोग से। इसके विषय में भर्तृहरि का कथन है कि यह असार संसार जिसकी अन्त अवस्था अतिचंचल है, उसमें पण्डितों के लिए दो ही सुलभ गति हैं कि या तो तत्त्वज्ञानरूपी अमृत रस में स्नान करने वाली निर्मल बुद्धि से उनका काल अच्छा व्यतीत होता रहे अथवा सुन्दरकामिनी जो कि पुष्ट स्तन और जघन से भोग में सुखदायी हैं, उनके शरीर पर हाथ दिये चंचलता से उद्योग में तत्पर रहते हुए उनका काल भली–भाँति व्यतीत होता रहे–

संसारेऽस्मिन्नसारे परिणतितरले द्वे गती पण्डितानां तत्त्वज्ञानामृताम्भः प्लुतललितधियां यातु कालः कदाचित्। नो चेन्मुग्धाङ्गनानां स्तनजघनभराभोगसम्भोगिनीनां स्थूलोपस्थस्थलीषु स्थगितकरतलस्पर्शलोलोद्यतानाम्।।[5]

महाराज भर्तृहरि की नीति सम्बन्धी विभिन्न धाराणाएँ

प्राचीन परम्परा में राजा ही नीति सम्बन्धी धारणाओं को सुनिश्चित करता था। राजा निर्वाचन समाज संगठित होकर किया करता था। भारतीय समाज में राजनीति का सर्वोपरि पद राजा ही माना जाता था। समाज को सुव्यवस्थित करना और नियम के अन्तर्गत प्रशासकीय व्यवस्था बनाये रखना, प्रजा पर समान रूप से व्यवहार करना, सम्पूर्ण राज्य में सुख एवं दुख का भी ध्यान रखना ये सब राजनीतिक स्थिति के अन्तर्गत आते हैं। किसी भी समाज का सफल संचालन राजनीतिक के बिना संभव नहीं है, इसीलिए भारतीय समाज में राजनीतिक आवश्यकता पड़ी। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए राजा को इसके कार्य–भार सौपें गये। 'रञ्ज्' धातु से राजा शब्द की उत्पत्ति होती है।[6] राजा शब्द की निष्पत्ति बताते हुए यास्क ने कहा है– ''राजृदीप्तौ'' धातु से राजा की निष्पत्ति हुई है जिसका अर्थ है– 'चमकना।[7] निरुक्त के अद्वितीय व्याख्याकार श्री दुर्गाचार्य का कहना है कि यह राजा आठ लोकपालों की मात्रा से निर्मित शरीर से प्रदीप्त होता रहता है।[8] पाणिनि व्याकरण की दृष्टि से भी राजृ धातु में कनिन् प्रत्यय करने से राजन् शब्द की निष्पत्ति मानी गई है, जिस निष्पत्ति को भर्तृहरि ने भी राजन् शब्द का प्रयोग कर 'रंजयति' लिखा है।

महाभारत काल में रंज धातु से राजा की निष्पत्ति मानी गई है जिसका अर्थ है प्रसन्न करना या रंजन करना अर्थात् राजा वहीं है जो प्रजा को प्रसन्न एवं सुखी या सन्तुष्ट रखता हो। महाकवि कालिदास ने भी महाभारत के अर्थ को स्वीकार करते हैं।[9] भर्तृहरि 'रंजयति' शब्द का प्रयोग करते हुए इसके साथ–साथ उन्होंने 'प्रभवः' लिखकर यह स्पष्ट करना चाहा है कि जो राजा 'उत्पन्न हो' अर्थात् राजा के गुण जिसमें जन्म से ही हो वहीं राजा कहलाने का अधिकारी है। मल्लिनाथ ने अपने टीका में व्याख्या करते हुए लिखा है– ''यद्यपि राज–शब्दो राजतेः दीप्यत्यर्थात् कनिन् प्रत्ययान्तः न तु रंजचेजेः धातूनाम् अनेकार्थत्वाद रंजनात् राजा इत्युक्तम्''।

यद्यपि राजन् शब्द की निष्पत्ति राजृ धातु से होती है, तथापि धातुओं की नानार्थकता की दृष्टि से रंज् धातु से शब्द की निष्पत्ति मानी गई है।[10] राजन् उत्तरपद के नकारान्त के प्रयोग पाणिनीय व्याकरण के अनुसार साधु नहीं है। उनसे अष्टाध्यायी 5.4.91 के नियम से टच् प्रत्यय होकर वे अकारान्त बन जाते हैं, यथा काशीराजः महाराजः।

वस्तुतः 'राजन्' नकारान्त और 'राज' अकारान्त दो स्वतंत्र शब्द है। जब समास के बिना अकारान्त राजा के और तत्पुरुष समास में नकारान्त राजन् उत्तरपद के प्रयोग विरल हो गए तब व्याकरणों ने– 'नष्टाश्रदग्धरथन्याय' से दोनों को परस्पर सम्बद्ध कर दिया। अकारान्त 'राजन' शब्द का प्रयोग महाभारत में उपलब्ध भी होता है।[11]

अन्य स्थलों में हिन्दू राजविदों ने इसकी दार्शनिक व्युत्पत्ति बतलाकर यह कहा है कि– शासक को राजा इसलिए कहा जाता है कि उसका कर्तव्य अच्छे शासन के द्वारा अपनी प्रजा का रंजन करना अर्थात् प्रसन्न रखना है। 'प्रजापालक' अर्थ में राजन् शब्द का प्रयोग हुआ है वह व्यक्ति विशेष, जिसके द्वारा प्रजा के सुख–दुख का ध्यान दिया जाय और पालन–पोषण किया जाय, उसे राजा कहा जाता रहा है। राजा शब्द नृपतिवाचक

है, क्षत्रियवाचक नहीं– 'राजशब्दो' यस्मिन् कश्मिश्चित्प्रजापालके वर्तते। राज शब्दोनात्र क्षत्रिय जातिवचनः किं त्वभिषिक्त जनपद परिपालन कृत वचन इति।[12]

मनुस्मतिकार ने साथ–साथ राजन् शब्द का अर्थ क्षत्रिय जाति के लिए भी प्रयोग किया था[13], और इसी प्रकार महर्षि पाणिनि,[14] माघ,[15] मीमांसाकार,[16] तथा महाभारतकाल,[17] में भी राजन् शब्द का अर्थ क्षत्रिय जाति के लिए प्रयोग किया गया है। प्रसिद्ध भाष्यकार श्री कुल्लूकभट्ट के अनुसार राजा शब्द किसी भी जाति विशेष के लिए प्रयुक्त हो सकता है जो तत्कालीन समय में राजा के बताये गये कर्तव्यों का निर्वहन कर रहा हो।[18] यह शब्द वंशानुगत अर्थ देने वाला नहीं कहा जा सकता क्योंकि विभिन्न काल में विभिन्न व्यक्तियों के लिए प्रयोग किया गया है।

तत्कालीन भारत में राजा दो प्रकार से होते थे– प्रथम वे हैं जो स्वयं प्रतिष्ठित होते थे और दूसरे वे है जो प्रजा के द्वारा प्रतिष्ठित किये जाते थे। जो अपनी प्रतिभा, चरित्र और रणकौशल के द्वारा किसी भू–भाग या जन–समूह की सुरक्षा का उत्तरदायित्व अपने ऊपर स्वयमेव ले लेते थे, यह व्यक्ति स्वयं प्रतिष्ठित राजा हुआ करता था। जो प्रजा के द्वारा चुना जाता था वह राजा प्रजा–प्रतिष्ठित मान्य किया जाता था। इन दोनों प्रकार के राजा विभिन्न कालखण्डों में साहित्याध्ययन से प्राप्त होते हैं। राजा में देवतत्व की भावना समावेश भी जनमानस में था जिसका कारण यह है कि वैदिक काल से राजा में देवत्व के अंश मानते चले आ रहे थे, यह मान्यता रही है कि जिस प्रकार ईश्वर व्यक्तियों की रचना करके जगत में भेजता है जो, उसके पालन–पोषण का भार भी ईश्वरांश व्यक्ति में होगा जिसके द्वारा प्रजा का पालन किया जाता था।

भर्तृहरि ने राजा के लिए प्रभवः,[19] नृप,[20] राजन्[21] शब्दों का प्रयोग करते हुए लिखा है कि जो प्रजा गुरुओं, विद्वानों का आदर करे, शासन–काल का अध्ययन करें, धार्मिक हो और अपनी प्रजा का पालन करे वही राजा कहलाने का अधिकारी होता है, प्रजा उसे पितृतुल्य मानती थी। राजा भी अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि नहीं समझते थे, और न इस बात का दावा करते थे कि वे जो कुछ कहते हैं या करते है– यह गलत हो ही नहीं सकता। भर्तृहरि ने कहा राजाओं के विशेष गुण थे जिनका पालन होना अनिवार्य था। इसी प्रकार इस काल की स्मृतियां, साहित्यों तथा उत्कीर्ण लेखों में स्पष्ट रूप से इस बात पर जो दिया गया है कि राजा तभी सफल हो सकता है जब उपर्युक्त बताये गये नियमों का पालन करें।

जो राजा अहंकारी, अधार्मिक, दुराचारी तथा प्रजापीड़क होते थे, उन्हें समाज में पूज्य राजा के रूप में नहीं माना जाता था। भर्तृहरि ने स्पष्ट रूप से राजा के विशेष गुणों का उल्लेख किया है–

''आज्ञा कीर्तिः पालनं ब्राह्मणानां,
दानं भोगो मित्रसंरक्षणं च।
येषामेते षड्गुणा न प्रवृत्ताः
कोऽर्थस्तेषां पार्थिवोपाश्रयेण।।''[22]

आज्ञा पालन करना, कीर्ति फैलाना ब्राह्मणों का पालन करना, दान देना, भोग करना, और मित्र की रक्षा करना। जिसमें ये छहों गुण नहीं हैं, उन राजाओं को राजा की श्रेणी में नहीं माना जा सकता। अतः निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इन गुणों के अभाव में प्रजा, राजा मानने के लिए तैयार न होती रही होगी।

संदर्भ स्रोत

1. भर्तृहरि श्रृंगार शतक – 7
2. भर्तृहरि श्रृंगार शतक – 8
3. भर्तृहरि श्रृंगार शतक – 12
4. भर्तृहरि श्रृंगार शतक – 15

5. भर्तृहरि श्रृंगार शतक – 19
6. द्रष्टव्य : आचार्य मनु : मनुस्मृति–'सम्यक् सर्नारंजयति प्रजाः, 7/19
7. द्रष्टव्य दुर्गाचार्य : निरुक्त – 'राजा राजते'– 2/3
8. द्रष्टव्य दुर्गाचार्य : निरुक्त भाष्य – ''दीप्तौ ह्यसौ पंचानां (अष्यनाम्) लोकापालानाम वपुषां– 2/3'
9. द्रष्टव्य महाकवि कालिदास : रधुवंशमहाकाव्य – 'राजा प्रकृति रंजनात्' –4/12
10. द्रष्टव्य मल्लिनाथ : रघुवंश की टीका 4/12
11. द्रष्टव्य महाभारत : आदिपर्व– 94/44
12. द्रष्टव्य कुल्लूल भट्ट : राजाशब्दार्थ विचार–राजनीति प्रकाश
13. द्रष्टव्य आचार्य मनु : मनुस्मृति 7/2
14. द्रष्टव्य पा.सू. : 5/11/24, और 4/1/137
15. द्रष्टव्य माघ : शिशुपालवध – 14/14
16. द्रष्टव्य शबरस्वामी : शवरभाष्य– जन–पद पुर परिरक्षणवृत्ति मनु–पवीवत्या क्षत्रिये राज–शब्दमान्ध्राः प्रयुंजते– 2/3/3
17. द्रष्टव्य महाभारत : शान्तिपर्व – 60/24, 64/19, 63, 64 एवं 65
18. द्रष्टव्य कुल्लूभट्ट : राजनीति प्रकाश–राजशब्दार्थ विचार
19. द्रष्टव्य भर्तृहरि : नीतिशतक– श्लोक, 2
20. द्रष्टव्य भर्तृहरि : नीतिशतक – श्लोक 13
21. द्रष्टव्य भर्तृहरि : नीतिशतक – श्लोक 17
22. द्रष्टव्य भर्तृहरि : नीतिशतक – श्लोक 104

SHODH CHETNA – YEAR-3
(JAN. TO MARCH, 2017) VOL. 1

ISSN : 2350-0441

रीवा एवं सतना जिले के शासकीय महाविद्यालयों के पुस्तकालय स्वचलन की स्थिति का विश्लेषणात्मक अध्ययन

❐ श्रीमती कमलेश कुशवाहा*

शोध सारांश

पुस्तकालय अथवा ग्रंथालय का अर्थ केवल पुस्तक संग्रह से नहीं है। यूनेस्को के अनुसार, ''प्रकाशित पुस्तक और पत्रिकाओं तथा अन्य पाठ्य एवं श्रव्य दृश्य सामग्रियों का एक संकलित संग्रह और कर्मचारियों की उन सेवाओं को जो ऐसी सामग्रियों को, उनके उपयोग करने वालों की सूचना, शोध, शैक्षणिक या मनोरंजक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक है, प्रदान करने और उनकी व्याख्या करने में समर्थ हैं पुस्तकालय कहते हैं।''

वर्तमान समय में साहित्य का इतना विशाल तथा व्यापक भण्डार हो गया है कि कोई भी पुस्तकालय कितना ही विशाल और संसाधन युक्त क्यों न हो, सभी प्रलेखों को उपलब्ध नहीं करवा सकता है। इस समस्या के निराकरण के लिए स्थानीय से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सभी पुस्तकालयों में सहयोग की आवश्यकता अनुभव की गयी। संसाधन उपयोग का विकल्प सूचना नेटवर्क उभर कर आया है, जो कम्प्यूटर व सूचना संप्रेषण तकनीक के असीमित व अप्रतिम विकास से सम्भव हो सकता है। अतः सुझावों की श्रृंखला में रीवा जिले के प्रमुख महाविद्यालय के पुस्तकालयों का नेटवर्क प्रारूप भी प्रस्तुत किया गया है।

शोधार्थी का मुख्य उद्देश्य रीवा एवं सतना जिले के महाविद्यालयों के पुस्तकालय स्वचलन का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना है तथा पुस्तकालयों से वंचित विद्यार्थियों का पता लगाना और विद्यार्थियों के सामने आ रही समस्याओं का पता लगाना है। जिससे कि पुस्तकालयों का भी प्रभावशीलता, उपादेयता एवं वास्तविकता को प्रकट कर सके।

प्रो. मोजर के अनुसार, ''शोध प्रविधियाँ समाज एवं वैज्ञानिकों के लिए वे मान्य व सुव्यवस्थित तरीके हैं जिन्हें वह अपने अध्ययन विषय से सम्बन्धित विश्वसनीय तथ्यों को प्राप्त करने के लिए उपयोग में लाते हैं।''

बैबस्टर शब्दकोश के अनुसार, ''परिकल्पना शब्द है जो शोध के प्रयोग तर्कसंगत भावी सत्यता के आधार स्वरूप स्वीकार किये जाते हैं। परिकल्पना वह विवरण है, जिसको लगभग सत्य माना जाता है। दृष्टिकोण सत्य की साख है जो उस समय तक निश्चित रूप से ज्ञात नहीं होता। आक्सफोर्ड अपनी शब्दकोश के अनुसार परिकल्पना एक तर्कसंगत अनुमान है। एक संज्ञान सत्य है जो ज्ञान मूल्यांकन के लिए किया जाता है।

* एम.फिल. (पुस्तकालय विज्ञान)

धरातलीय दृष्टि से रीवा जिले में अनेक असमानताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। रीवा जिले के उत्तर भाग में समतल मैदान है।

रीवा नगर में विज्ञान महाविद्यालय के ग्रंथालय की स्थापना सन् 1983 में की गयी थी। यह एक आधुनिक ग्रंथालय रहा। यहाँ के ग्रंथपाल का नाम डॉ. भारतेन्दु मिश्र है।

विज्ञान ग्रंथालय में कुल 6 ग्रंथालय कर्मचारी कार्यरत हैं जिनमें से 1 ग्रंथपाल, 1 सहायक ग्रंथपाल, 2 तकनीकी सहायक, 2 बुक लिफ्टर कार्यरत हैं एवं ग्रंथपाल एम.लिब. पी.जी.डी.सी.ए. एवं पी.एच.डी. है व सहायक ग्रंथपाल एम.लिब. एवं तकनीक सहायक बी.लिब. एवं बुक लिफ्टर स्नातक है। इसका कार्यसमय 10.30 से 05.30 तक है।

विज्ञान ग्रंथालय में 45,000 पुस्तकों का बेहतरीन संग्रह है। यहाँ ई-पुस्तकें 15,000 हैं। जर्नल्स 15 हैं व ई-जर्नल्स 6 हैं।

ग्रंथालय द्वारा लिखित व कम्प्यूटर दोनों तरीके से बुक ईशू की जाती है व 2 पुस्तकें प्रति 15 दिवस की दर से प्रत्येक विद्यार्थी को प्रदान की जाती हैं। प्रतिदिन शाम के समय पुस्तकों से धूल की सफाई व उनकी सेल्फिंग की जाती है। जो पुस्तकें पाठक के द्वारा पढ़ने के लिए ली जाती हैं उनको प्रतिदिन सही तरीके से अंत में जमाया जाता है।

लगभग 2400 पुस्तकालय उपयोगकर्ता जिसमें शिक्षक, कर्मचारी, विद्यार्थी सभी ग्रंथालय के नियमित पाठक हैं।

महाविद्यालय पुस्तकालय का स्वचलीकरण कार्य 2004 से प्रारंभ हुआ था एवं 2005 को पूर्ण हो चुका है। महाविद्यालय पुस्तकालय का स्वचलीकरण का कार्य 2005 में पूर्ण हो चुका है। पुस्तकालय में इंटरनेट की सुविधा प्रदान की गयी है। यहाँ SOUL नामक साफ्टवेयर का प्रयोग किया जाता है। पुस्तकालय में 10 कम्प्यूटर रखे गये हैं एवं 06 कर्मचारी साफ्टवेयर पर कार्य करते हैं। पुस्तकालयों में स्वचलीकरण हेतु साफ्टवेयर में निम्न मोड्यूल हैं— Accestion, Catalogue, Circulas-tion, Serial, Opac, Table, Setup, Report, Utilities आदि सभी मोड्यूल पर कार्य किये जाते हैं। इस ग्रंथालय में समस्त कार्य हेतु बेहतरीन साफ्टवेयर हैं। ग्रंथालय में पुस्तकों के चयन में शिक्षक विद्यार्थी की भूमिका होती है। पुस्तकालय सामग्री क्रय हेतु प्राचार्य द्वारा निविदा आमंत्रित किये जाते हैं।

रीवा नगर में शासकीय कन्या महाविद्यालय ग्रंथालय की स्थापना 1961 में की गयी थी। यहाँ के ग्रंथपाल का नाम डा. एस.जी. श्रीवास्तव है एवं ग्रंथालय भवन प्रथम मंजिल पर स्थित है।

शासकीय कन्या महाविद्यालय के पुस्तकालय में कुल 5 कर्मचारी कार्यरत हैं जिनमें से 1 ग्रंथपाल, 1 सहायक ग्रंथपाल, 2 तकनीकी सहायक, 1 बुक लिफ्टर कार्यरत है। ग्रंथपाल की शैक्षणिक योग्यता एम.ए., बी.एड., एम.लिब. एवं पी-एच.डी. है। सहायक ग्रंथपाल एम.लिब., तकनीकी सहायक बी.लिब. एवं बुक लिफ्टर स्नातक है।

शासकीय कन्या महाविद्यालय ग्रंथालय खुलने का समय सुबह 10.30 से शाम 5.30 तक है। शासकीय कन्या महाविद्यालय पुस्तकालय के पास 32560 पुस्तकों का संग्रह है। इसके अतिरिक्त 12 जर्नल मौजूद हैं।

इस ग्रंथालय के उपयोगकर्त्ताओं की संख्या 4547 है। महाविद्यालय का स्वचलीकरण कार्य 2008 से प्रारंभ हुआ। 2009 को पूर्ण हो चुका है। अतः स्वचलीकरण वर्ष 2009 है। पुस्तकालय में कुल 10 कम्प्यूटर रखे गये हैं एवं 2 कर्मचारी साफ्टवेयर का कार्य करते हैं। साफ्टवेयर पर 4547 पुस्तकों का कार्य किया गया है।

सतना जिले की अमरपाटन तथा ऊपरी रघुराजनगर तहसील तत्कालीन रीवा राज्य के बघेलखण्डों द्वारा शासित होती रही है।

सतना जिले के शासकीय इंदिरा गांधी कन्या पुस्तकालय की स्थापना सन् 1984 में की गयी। इस ग्रंथालय के ग्रंथपाल वर्तमान में वीरेन्द्र प्रताप सिंह हैं। ग्रंथालय में 5 स्टाफ मेम्बर हैं जिसमें 1 ग्रंथपाल, 02 सहायक ग्रंथपाल व 2 अन्य स्टाफ मेम्बर हैं। ग्रंथपाल की योग्यता एम.लिब.एम.ए. और सहायक ग्रंथपाल की योग्यता बी.लिब. है।

ग्रंथालय में कुल पाठकों की संख्या 4 हजार है तथा 32000 पुस्तकों का बेहतरीन संग्रह है। यहाँ ई-पुस्तकों नहीं हैं जर्नल्स 30 हैं व ई-जर्नल्स 30,000 हैं। महाविद्यालय पुस्तकालय को कम्प्यूटरीकृत नहीं किया गया है। अतः यहाँ पुस्तकालय का संचालन ग्रंथपाल द्वारा किया जाता है।

मैहर तहसील में स्थित शासकीय विवेकानंद महाविद्यालय जो एक प्रसिद्ध धार्मिक और औद्योगिक जगह पर स्थित है। इस महाविद्यालय की स्थापना सन् 1986 में की गयी थी। यहाँ के ग्रंथपाल श्री पंकज सिंह पाण्डेय हैं। यहाँ पर 1 ग्रंथपाल व 1 बुक लिफ्टर है। महाविद्यालय के ग्रंथालय में 32,417 पुस्तकें हैं। यहाँ ई-पुस्तकें, जर्नल्स व ई-जर्नल्स नहीं हैं। ई-फ्लापी माइक्रोफिल्म्स 20 हैं। लगभग 3165 अध्ययनकर्ता जिसमें शिक्षक, स्टाफ, विद्यार्थी सभी ग्रंथालय के नियमित पाठक हैं।

पुस्तकालय को कम्प्यूटरीकृत नहीं किया गया है। अतः संचालन ग्रंथपाल एवं आदान-प्रदान सेवा तकनीकी सेवा, प्रतिलिपि सेवा, संदर्भ सेवा द्वारा किया जाता है।

सतना जिले के अमरपाटन तहसील में स्थित शासकीय महाविद्यालय ग्रंथालय की स्थापना 1966 में की गयी थी। यहाँ की ग्रंथपाल श्रीमती दीप्ति सिंह हैं। यहाँ 01 ग्रंथपाल व 01 बुक लिफ्टर हैं। महाविद्यालय ग्रंथालय में 9471 पुस्तकें हैं। यहाँ ई-पुस्तकें, जर्नल्स व ई-जर्नल्स नहीं हैं। लगभग 3,000 नियमित अध्ययनकर्ता हैं।

डॉ. रंगनाथन द्वारा सन् 1931 में पुस्तकालय विज्ञान हेतु 5 सूत्र प्रतिपादित किये गये थे जो आज भी पाठकों के लिए उपयुक्त हैं—(1) जैसे पुस्तकें उपयोग के लिए हैं, (2) प्रत्येक पाठक को उसकी पुस्तक मिले, (3) प्रत्येक पुस्तक को उसका पाठक मिले, (4) पाठक का समय बचाये एवं (5) पुस्तकालय वर्धनशील संस्था है।

वस्तुतः भारत में पुस्तकालय विज्ञान की शिक्षा को स्थापित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य डॉ. रंगनाथन द्वारा ही किया गया। उन्हें भारतीय पुस्तकालय विज्ञान का जनक भी कहा जाता है।

प्रत्येक ग्रंथालय में ऐसा प्रवेश द्वार होना आवश्यक है जिससे आने-जाने वाले का कड़ा नियंत्रण संभव हो सके। पुस्तकालय में प्रकाश के साथ ही शुद्ध वायु की अच्छी व्यवस्था होनी चाहिए। एक भाग में संचय कक्ष हो, नियमित पाठकों और शोधार्थियों के लिए अलग से अध्ययन कक्ष होना चाहिए।

ग्रंथालय में उपलब्ध पुस्तकें हमारे समग्र ज्ञान को संपूर्ण रूप से प्रस्तुत करती है जिससे हमारा मस्तिष्क समान रूप से विकसित हो पाता है।

वाङ्मय सूची

1. भार्गव, जी.डी., 1972 ग्रंथालय वर्गीकरण : सिद्धान्त एवं प्रयोग।
2. चम्पावत, जी.एस.।
3. चतुर्वेदी देवीदत्त 1994 पुस्तकालय के विविध आयाम।
4. श्रीवास्तव श्यामनाथ और शर्मा, चिरन्जी लाल 1970 पुस्तकालय एवं पुस्तकों का उपयोग।
5. अग्रवाल, श्याम सुन्दर 1991, ग्रंथालय सूचीकरण : एक अध्ययन सतना जिले के संदर्भ में।
6. गिरिजा कुमार, कृष्ण कुमार, 1992 सूचीकरण के सिद्धान्त।
7. सूद, एस.पी. 2002, रीवा जिले के पुस्तकालय का अध्ययन।
8. सक्सेना एल.एस. 1988, पुस्तकालय संगठन और व्यवस्थापन।
9. शर्मा, पाण्डेय एस.के. 1990 पुस्तकालय संगठन और व्यवस्थापन।
10. शर्मा, पाण्डेय एस.के. 1990 पुस्तकालय और हम।
11. अग्रवाल 1996 ग्रंथालय के मूल तत्त्व।

SHODH CHETNA – YEAR-3
(JAN. TO MARCH, 2017) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

विकास क्षेत्र में आपदा से बढ़ती बाधाएँ

❑ डॉ. एस.पी. पाण्डेय*
❑ डॉ. मनोज द्विवेदी**

शोध सारांश

यूएनआईएसडीआर ने अपनी एक ताजा रिपोर्ट में चेताया है कि दुनिया में आपदाओं से होने वाला औसत सालाना नुकसान 2015 में 260 बिलियन अमेरिकी डॉलर था। हमारा अनुमान है कि ये 2030 तक नुकसान बढ़कर 414 बिलियन अमेरिकी डॉलर तक पहुंच सकता है। पिछले 20 वर्षों में जलवायु परिवर्तन से तूफान और बाढ़ जैसी आपदाओं की संख्या में बढ़ोतरी हुई है। अगर इस खतरे को कम नहीं किया गया तो इससे भविष्य में होने वाले नुकसान की वजह से विकास पर बुरा असर पड़ेगा।

प्राकृतिक आपदाएं न केवल जान–माल का तात्कालिक नुकसान करती हैं बल्कि विकास की सतत प्रक्रिया को दीर्घकालिक रूप से बड़े पैमाने पर प्रभावित करती है। प्रस्तुत आलेख में हम हाल की प्राकृतिक आपदाओं में हुई आर्थिक व संरचनात्मक क्षति के आकलन के जरिए यह समझने की कोशिश करेंगे कि ये आपदाएं किस तरह विकास की सतत प्रक्रिया में बाधाएं उत्पन्न करती हैं। हाल में चेन्नई में आए तूफान, गत वर्ष की बाढ़, जम्मू–कश्मीर की बाढ़ आदि हाल की कुछ घटनाएं है जिन्होंने हमारे संसाधनों को अचानक ही एक नयी दिशा में विचलित कर दिया। इस आलेख में हम एक–एक कर इन पर विचार करते हैं।

चेन्नई में वरदा चक्रवाती तूफान ने कुछ ही घंटों में भयंकर कहर बरपाया। मौसम विभाग ने अपनी फाइनल रिपोर्ट में कहा कि तूफान जब तटीय इलाकों से टकराया तो उस वक्त हवाएं 120 किलोमीटर प्रति घंटे तक की रफ्तार से चलीं। इसका असर कई घंटों तक रहा। उद्योग संगठन एसोचैम ने इस तूफान से हुए नुकसान का जायजा लेने के बाद अपनी रिपोर्ट में कहा कि कुछ नुकसान एक बिलियन डॉलर (6749 करोड़) हुआ है। एक साल पहले आयी भयंकर बाढ़ के बाद ये दूसरी प्राकृतिक आपदा थी जिससे स्थानीय लोगों को निपटना पड़ा। एसोचैम ने अपनी रिपोर्ट में कहा, 'तूफान में कृषि क्षेत्र को काफी नुकसान

* प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
** शासकीय महाविद्यालय, अजयगढ़, पन्ना (म.प्र.)

हुआ है। सबसे ज्यादा नुकसान केले और पपीता के बागानों और धान की फसलों को हुआ है जिससे एक बिलियन डॉलर तक का नुकसान हुआ है।' मछली पालन से लेकर पशुपालन, जिससे क्षेत्र की अर्थव्यवस्था पर काफी बुरा असर पड़ा है। पर्यटन उद्योग पर भी कुछ दिन तक असर होगा।

जम्मू–कश्मीर बाढ़ : अब तक की सबसे महंगी प्राकृतिक आपदा

सितंबर 2014 के विध्वंसकारी बाढ़ को एनडीटीवी इंडिया के लिए कवर करने जब यह लेखक श्रीनगर वायुसेना बेस पहुंचा तो वहां तस्वीर भयावह थी। सैकड़ों छोटे–छोटे बच्चे और महिलाएं लंबी–लंबी कतारों में खड़े थे। इनमें ज्यादातर पर्यटक या मजदूर थे जो जल्दी से जल्दी बाढ़ में डूबे श्रीनगर से किसी सुरक्षित जगह के लिए निकलना चाहते थे। श्रीनगर और आस–पास के इलाकों का एक बड़ा हिस्सा बाढ़ में पूरी तरह से डूबा हुआ था। श्रीनगर में सचिवालय, सभी बड़े अस्पताल, संचार व्यवस्था और मोबाइल टावर्स सब ठप्प पड़े थे। राजमार्ग से लेकर बिजली और गैस स्टेशन, टूरिज्म इंफ्रास्ट्रक्चर, हजारों दुकाने और व्यापारिक उद्यम बाढ़ की चपेट में थे। हजारों एकड़ की खेतिहर जमीन पानी में डूब चुकी थी। दरसअल बाढ़ ने जो कहर बरपाया उसने जम्मू और कश्मीर की अर्थव्यवस्था को बर्बाद कर दिया।

सेंटर फॉर रिसर्च ऑन दी एपिडेमियोलॉजी ऑफ डिजास्टर्स, इंस्टिट्यूट ऑफ हेल्थ एंड सोसाइटी और यूनिवर्सिटी द लॉवियान, ब्रशेल्स द्वारा तैयार एनुअल डिजास्टर स्टैटिस्टिकल रिव्यू 2014 के मुताबिक, साल 2014 की सबसे मंहगी प्राकृतिक, साल 2014 की सबसे महंगी प्राकृतिक आपदा जम्मू और कश्मीर क्षेत्र में आया बाढ़ था, जिसमें 16 बिलियन डॉलर्स का नुकसान हुआ। तत्कालीन राज्य सरकार ने भी माना था कि नुकसान एक लाख करोड़ से ज्यादा हुआ था। उस वक्त के मुख्य सचिव रहे मुहम्मद इकबाल खांडे ने 29 सितंबर, 2014 को एक मीडिया ब्रीफिंग में कहा, कि हाउसिंग सेक्टर में अनुमानित नुकसान 30,000 करोड़ का हुआ है जबकि व्यावसायिक और सार्वजनिक क्षेत्र में कुल नुकसान करीब 70000 करोड़ का है। बाढ़ ने जम्मू और कश्मीर की अर्थव्यवस्था (विशेषकर इनकम जनरेशन) को बुरी तरह से प्रभावित किया। राज्य के वित्त मंत्री हसीब द्राबु ने 22 मार्च, 2015 को विधानसभा में अपने बजट भाषण में कहा था कि राज्य की कुल आय 2014–15 में 1.5 प्रतिशत घटकर 88000 से भी थोड़ी कम हो गयी। इसकी वजह से प्रति व्यक्ति आय 59,279 से घटकर 58,888 रह गयी।

राज्य सरकार ने यह भी बताया कि 4207 पॉवर सब स्टेशन बाढ़ में बुरी तरह से प्रभावित हुए। हॉर्टिकल्चर सेक्टर में नुकसान 1568 करोड़ हुआ जबकि फसलों जद्दोजहद कर रहे थे। व्यावसायिक उड़ाने बुरी तरह से प्रभावित थीं। इस प्राकृतिक आपदा से निपटने की मौजूदा नीति और रणनीति पर कई सवाल खड़े किए। ये बात सामने आयी कि राज्य सरकार ने आपदा प्रबंधन कानून के कई प्रावधानों को गंभीरता से लागू ही नहीं किया था।

प्राकृतिक आपदाएं व विकास : वैश्विक चिंतन

जलवायु परिवर्तन के इस दौर में प्राकृतिक आपदाओं से विकास और बिजनस प्रोजेक्ट्स को बढ़ते खतरे पर वैश्विक स्तर पर चर्चा तेज हो रही है। पिछले साल लेखक जापान के सेंदई शहर में संयुक्त राष्ट्र के वर्ल्ड कांफ्रेंस ऑन डिजास्टर रिस्क रिडक्शन में भाग लिया जहां पर विषय पर

राष्ट्रध्यक्षों, बड़े मंत्रियों और आपदा विशेषज्ञों ने तीन दिन तक गहन चर्चा की। सम्मेलन के बाद 18 मार्च, 2015 कोद सेंदई फ्रेमवर्क फॉर डिजास्टर रिस्क रिडक्शन 2015–30 स्वीकृत किया गया। इसे बाद में संयुक्त राष्ट्र की आम सभा ने अनुमोदित किया। इस फ्रेमवर्क के तहत डिजास्टर रिस्क रिडक्शन को दीर्घकालिक विकास के पहल के साथ जोड़ने पर बल दिया गया है। इसके जरिए एक मजबूत दीर्घकालिक विकास का वैश्विक एजेंडा तैयार करने की कोशिश की गयी है। सेंदई फ्रेमवर्क की धारा 36 (सी) में कहा गया है कि हर राज्य की ये जिम्मेदारी है कि वो, 'व्यापार, व्यावसायिक संघों और निजी क्षेत्र के वित्तीय संस्थाओं, जिसमें वित्तीय विनियम, एकाउंटिंग से जुड़े निकाय और लोकहितैषी काम से जुड़ी संस्थाएं शामिल हों, उन्हें प्रेरित करें कि वो विशेषकर अपने सूक्ष्म, छोटे और माध्यम उद्यमों में विशेष निवेश के जरिए डिजास्टर रिस्क मैनेजमेंट को व्यापार प्रारूप का हिस्सा बनाएं, अपने कर्मचारियों और उपभोक्ताओं में जागरूकता और ट्रेनिंग के साथ–साथ शोध और नवरचना को बढ़ावा दें। डिजास्टर रिस्क मैनेजमेंट के लिए प्रोद्यौगिक विकास पर ध्यान केंद्रित करें, आपस में जरूरी डाटा और इस विषय से जुड़ी जानकारियां साझा करें और सक्रियता से पब्लिक सेक्टर के साथ भागीदारी कर ऐसा निर्देशात्मक ढांचा तैयार करें जिसमें डिजास्टर रिस्क मैनेजमेंट शामिल हों।'

सेंदई फ्रेमवर्क की धारा 30 (ओ) में कहा गया है कि सभी उद्यमों को अपने–अपने आपूर्ति श्रृंखला में पूंजी, संपत्ति और जीविका के अवसर सुरक्षित रखने के लिए डिजास्टर रिस्क रिडक्शन को अपने व्यापार प्रारूप और प्रबंधन के तौर–तरीके में शामिल करना चाहिए। साथ ही ये भी महत्वपूर्ण होगा कि कंपनियां और व्यापारिक उद्यम डिजास्टर रिस्क रिडक्शन से जुड़ी गतिविधियों पर ज्यादा निवेश करें। ये विशेषकर छोटे और मध्यम उद्योगों के लिए ज्यादा महत्वपूर्ण है क्योंकि प्राकृतिक आपदा के दौरान सबसे ज्यादा नुकसान इनको उठाना होता है। उन्हें ये समझना जरूरी है दीर्घकालिक विकास के लिए ये जरूरी है। दरअसल निजी और सरकारी संस्थानों, सार्वजनिक और निजी क्षेत्र में सक्रिय उद्यमों को प्रोजेक्ट लोकेशन से लेकर प्रोजेक्ट डिजाइन तैयार करने तक प्राकृतिक आपदाओं से होने वाले संभावित खतरे का ध्यान रखना होगा। उन्हें इसका वैज्ञानिक तरीके से आकलन करना होगा और खतरे की संभावना के आधार पर अपनी रणनीति बनानी होगी। अंतराष्ट्रीय और राष्ट्रीय संस्थाओं को इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी, क्योंकि दुनिया भर में प्राकृतिक आपदाओं से विकास की परियोजनाओं को खतरा बढ़ता ही जा रहा है।

यूएनआईएसडीआर ने अपनी एक ताजा रिपोर्ट में चेताया है कि दुनिया में आपदाओं से होने वाला औसत सालाना नुकसान 2015 में 260 बिलियन अमेरिकी डॉलर था। हमारा अनुमान है कि ये 2030 तक नुकसान बढ़कर 414 बिलियन अमेरिकी डॉलर तक पहुंच सकता है। पिछले 20 वर्षों में जलवायु परिवर्तन से तूफान और बाढ़ जैसी आपदाओं की संख्या में बढ़ोतरी हुई है। अगर इस खतरे को कम नहीं किया गया तो इससे भविष्य में होने वाले नुकसान की वजह से विकास का बुना असर पड़ेगा। जब जोखिम वाले इलाके में पूंजी का निवेश किया जाता है तो इससे आर्थिक संपत्ति को होने वाला खतरा बढ़ता है और इससे दीर्घकालिक विकास पर असर पड़ता है।

आपदा जोखिम न्यूनीकरण प्रयास : मॉडल बिल्डिंग बायलॉज 2016

● शहरी विकास मंत्रालय ने नया मॉडल बिल्डिंग बाई–लॉज 2016 तैयार किया है।

● डिजास्टर रिस्क रिडक्शन से जुड़े नए प्रावधान शामिल किए गए हैं।

● सेक्शन 3 : किसी आपदा की स्थिति में प्रभावित लोगों को निकलने के लिए विशेष इमरजेंसी व्यवस्था।

● अध्याय 6 में नए बिल्डिंग्स के निर्माण की सेफ्टी और सिक्योरिटी और अध्याय 5 में एडॉप्शन फॉर मॉडर्न कंस्ट्रक्शन टेक्नोलॉजी के सन्दर्भ में इन नए प्रावधानों को शामिल किया गया है।

● आपदा प्रबंधन की मौजूद व्यवस्था को और मजबूत करने के सन्दर्भ में ये पहल की गयी है।

प्राकृतिक आपदाओं के लिए विशिष्ट उपबंध (मॉडल बिल्डिंग बायलॉज)

चक्रवात भूकंप, भूस्खलन हेतु विशेष प्रावधान		
प्रविष्टि	मानक	विवरण
चक्रवात/तूफान से सुरक्षा		
12	आईएस 875 (3) : 1987	वीन्ड लॉड, भाग 3 में इमारतों और अन्य ढांचों के लिए (भूकंप के अलावा) नियम संहिताएं डिजाइन लॉड के लिए नियम एवं संहिताएं
13.	(आईएस 875 (3) 1987 पर आधारित दिशा निर्देश	'कम ऊंचाई वाले मकानों एवं मकानों की चक्रवात प्रतिरोध को बेहतर करने के लिए।'
भूकंप से सुरक्षा		
14	आईएस : 1893 (भाग 1) : 2002	'ढांचों का भूकंप प्रतिरोधक डिजाइन के लिए मानक (पांचवा संशोधन)
15.	आईएस : 13920–1993	'भूकंपीय बल पर केंद्रित पुनर्निर्मित कंक्रीट संरचनाओं की डक्टाइल डिटेलिंग : आचार संहिता।
16.	आईएस : 4326–2013	'इमारतों का निर्माण और भूकंप प्रतिरोधक डिजाइन' आचार संहिता (दूसरा संशोधन)'
17.	आईएस : 13828–1993	'कमजोर आलीशान इमारतों की भूकंप प्रतिरोधकता को बेहतर करने के दिशा–निर्देश'
18.	आईएस : 13827–1993	'कच्चे मकानों, इमारतों की भूकंप प्रतिरोधकता को बेहतर करने के दिशा–निर्देश'
19	आईएस : 13935–2009	भवनों का भूकंप मूल्यांकन, मरम्मत तथा सुदृढ़ीकरण दिशा–निर्देश
भूस्खलन आपदा से सुरक्षा		
20	आईएस 14458 (भाग 1) : 1998	पहाड़ी क्षेत्रों की प्राचीर सुरक्षा के लिए 1998 के दिशा–निर्देश
21.	आईएस 14458 (भाग 2) : 1997	पहाड़ी क्षेत्रों की प्राचीर सुरक्षा के लिए 1997 के दिशा–निर्देश
22.	आईएस 14458 (भाग 3) : 1998	पहाड़ी क्षेत्रों की प्राचीर सुरक्षा के लिए 1998 के दिशा–निर्देश
23.	आईएस 14458 (भाग 4) : 1998	पहाड़ी इलाके में भूस्खलन आपदा का क्षेत्रीय मानचित्र तैयार करने के लिए 1998 के दिशा–निर्देश

स्रोत–http://moud.gov.in/sites/upload_files/moud/file/pdf/MBBL.pdf

आपदा प्रबंधन के लिए दस सूत्रीय एजेंडा तैयार

नई दिल्ली में आयोजित आपदा जोखिम न्यूनीकरण पर एशियाई मंत्री स्तरीय सम्मेलन को संबोधित करते हुए प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने कहा कि आपदा जोखिम में कमी करने की दिशा में हमारे प्रयासों के नवीकरण के लिए एक दस सूत्री एजेंडे की रूपरेखा तैयार किया है। एजेंडा इस प्रकार है–

1. विकास के सभी क्षेत्रों में हमें आपदा न्यूनीकरण प्रबंधन के सिद्धांतों को आत्मसात करना होगा। इसे विकास कार्यों के सभी क्षेत्रों मसलन, हवाईअड्डों, सड़कों, नहरों, अस्पतालों, स्कूलों और पुलों के निर्माण के दौरान उचित मानकों को सुनिश्चित करना होगा। इसे सामुदायिक लचीलेपन से हासिल किया जा सकता है। अगले दो दशकों में तैयार होने वाले दुनिया के सबसे बड़े बुनियादी ढांचे हमारे क्षेत्र में होगें। हमें यह सुनिश्चित करने की जरूरत हे कि इनके निर्माण में आपदा सुरक्षा के उच्च मानकों का पालन किया जाए। यही स्मार्ट रणनीति होगी, जो दीर्घकालिक भी होगी।

हमें अपने सभी सार्वजनिक व्यय के खाते के बारे में विचार करना होगा। भारत में, 'सभी के लिए घर' और 'स्मार्ट सिटी' योजना पहलों के चलते इस तरह के अवसर आएंगे। इस क्षेत्र में भारत अपने अन्य भागीदार देशों और हितधाकरकों के साथ मिलकर आपदा से उबरने की क्षमता के बुनियादी ढांचे को बढ़ावा देने के लिए एक गठबंधन या केंद्र का निर्माण करेगा। इससे आपदा जोखिम मूल्यांकन, आपदा से उबरने की क्षमता वाली प्रौद्योगिकियों और तंत्र को विकास में बुनियादी ढांचे के एकीकृत वित्तपोषण में जोखिम कम करने के लिए ज्ञान का सृजन होगा।

2. हमें जोखिम से सभी को उबारने की दिशा में काम करने की जरूरत है। गरीब घरों से लेकर छोटे एवं मध्यम उद्योगों तक, बहुराष्ट्रीय कंपनियों से लेकर राज्यों तक काम करने की जरूरत है। अभी इस क्षेत्र में अधिकतर देशों ने केवल मध्यम से लेकर उच्च मध्यम वर्गों के लिए ही बीमा का सीमित प्रबंध किया है। हमें बड़ा और नवोनमेषी तरीके से सोचने की जरूरत है। सरकारों की भूमिका से सोचने की जरूरत है। सरकारों की भूमिका न सिर्फ इसके नियमन की है बल्कि आपदा पीड़ितों को उबारने वाले कार्यक्रमों को प्रोत्साहित करने वाली भी होनी चाहिए जिसकी ज्यादा लोगों को जरूरत है।

3. आपदा प्रबंधन में महिलाओं की अधिक से अधिक भागीदारी और नेतृत्व को प्रोत्साहित करना।

4. सभी खतरों के लिएव विश्व स्तर पर जोखिम मानचित्रण में निवेश करना।

5. हमारे आपदा जोखिम प्रबंधन के प्रयासों की दक्षता बढ़ाने के लिए तकनीक को उन्नत बनाना।

6. आपदा संबंधी विषयों पर काम करने के लिए विश्वविद्यालयों के एक नेटवर्क को विकसित करना।

7. सामाजिक मीडिया और मोबाइल तकनीकों द्वारा प्रदत्त अवसरों का उपयोग करना।

8. स्थानीय क्षमता की मदद से काम करना।

9. सुनिश्चित करना कि आपदा से सबक लेने के अवसर बर्बाद न हों। आपदा के बाद घरों के पुनर्निर्माण में तकनीकी सहायता देने के लिए केन्द्र की स्थापना करना।

10. आपदा के दौरान अंतर्राष्ट्रीय प्रयासों के बीच अधिक से अधिक सामंजस्य स्थापित करना।

संदर्भ :–

- संयुक्त राष्ट्र महासभा, आपदा जोखिम नियंत्रण हेतु सेंदई फ्रेमवर्क 2015 – 2030, A/RES/69/283]1@2 june 2015 ½ Available at : www-un-org
- http://www-undp-org/conternt/dam/undp/library/crisis%20prevention/DisasterCon-flict72p-pdf
- http://economictimes-indiatimes-com/news/politics&and&nation/cyclone&vardah&pulls&the&plug&on&zdigital&transactions&in&tamil&nadu/articleshow/55969540-cms
- http://www-aon-com/risk&services/thought leadership/propertyrisknewsletter/Q4&2015/attach-ments/Impact&Forecasting&November&2015&global&recap-pdf
- https://www-smera-in/pdf/Assessment%20of%20Chennai%20floods%20&%20Impact%20on%20MSMEs%20-pdf
- http://indianeUpress-com/article/india/india&news&india/chennai&floods&industries&crippled&suffer&huge&revenue&loss/
- http://164-100-47-5/newcommittee/reports/Englishcommittees/Committtee%20on%20Home%20Affairs/198-pdf
- http://documents-worldbank-org/curated/en/141231468182936346/pdf/PAD1405&PAD&P154990IDA&R2015&0136&1&BoU391446B&OUO&9-pdf
- http://www-preventionweb-net/files/43291_sendaiframeworkfordrren-pdf
- http://www-thehindubusinessline-com/money&and&banking/property&and&catastrophe&insurance&premiums&likely&to&shoot&up/&in&2016/article/7997036-ece

SHODH CHETNA – YEAR-3
(JAN. TO MARCH, 2017) VOL. 1

ISSN : 2350-0441

''राजेन्द्र यादव और मन्नू भण्डारी के कथा साहित्य में मध्यवर्गीय चेतना''

❑ डॉ. गीता तिवारी*

भारतीय जनमानस ग्रामीण है। हमारा अधिकांश वातावरण ग्रमीण ही है। हम शहरी निवासी शिक्षित आदि हो गये हैं फिर भी हमारी मानसिकता लोक जैसी ही है। राजेन्द्र यादव और मन्नू भण्डारी लेखक द्वय ने अपने कथा साहित्य में भारत की ग्रामीण और मध्यवर्गीय परम्परा रूढ़िवादिता दकियानूसी सोच का उल्लेख बड़े ही रोचक ढंग से किया है।

राजेन्द्र यादव ने अपनी कई कहानियों में मध्यवर्ग की हर क्षण मृत होती जाने वाली अभिलाषाओं को अभिव्यक्त कर उनकी आत्म छटपटाहट को मार्मिक रूप देकर व्यंजित किया है। आडंबर और औपचारिकता से घिरे हुए अपने आप में नितान्त अकेलेपन की भावनाओं से आतंकित इस पीढ़ी की हर समस्या को चित्रित करने का प्रयास किया है। स्वतन्त्रता के बाद मध्य वर्ग ने धीरे–धीरे समस्त समाज में स्थान पाना है। नगरीय वातावरण की विषम परिस्थितियों में इस वर्ग ने कहीं भी अपनेपन का आभास नहीं पाया है। इस समस्या को ध्यान में रखकर लेखक ने भी यही कहा है कि–''शिक्षा व बेकारी, आश्वासन और व्यापक असुरक्षा के जंजाल में वह बहुत अकेला, अजनबी, अनसमझा निर्वासित, क्रांतिकारी है, या फिर है टुच्चा, ढोंगी, लालची, कुटिल और तिकड़मी, ढोर के रूप में लदे यह वर्ग चाहे जो कुछ रहे, लेकिन असलियत यह है कि न उसके कोई मूल्य हैं और न संस्कृति वह सब भी उसकी अपनी नहीं है।''[1]

मध्यवर्गीय आडंबरों और विषमताओं को ब्यक्त करने की प्रवृत्ति इनके समस्त साहित्य में पाई जाती है आज मध्यवर्ग की सबसे बड़ी समस्या अपने अस्तित्व को बनाये रखना है मध्यवर्ग की हर वास्तविक और संघर्षमयी घड़ी में जूझते रहने वाले लेखक ने इस समस्या को खुले रूप में चुनौती दी है।[2]

उन्होंने स्पष्ट संकेत किया है कि आज जो जैसा है, उसे वैसा स्वीकार करने में मध्यवर्ग ने योगदान किया है। आसपास की बेकारी, भ्रष्टाचार ने मध्यवर्ग को जीवित लाश बना दिया है। यह वर्ग अपने आप में कितना कुण्ठित है यह हर कुछ को भोगने, बर्दाशत करने के लिए अभिशप्त है–उसकी किस्मत को ढालने, गढ़ने, दिशा देने वाली शक्तियाँ या तो ऊपर हैं या नीचे वालों से उसका सम्पर्क केवल ब्यूरोक्रिट धरातल या पिकनिक के अवकाश पर है। ऊपर से उसका संबंध फाइलों, प्रमोशन और लाइसेंसों या फिर कृपापूर्वक फेंके गये निमंत्रणों पर इन्हीं संपर्कों की होड़ पर उसकी हैसियत और सुरक्षा कायम है।[3]

* अध्यापक, शासकीय पू.मा.वि. बरा, मो. 9993212768

राजेन्द्र यादव के उपन्यास ''सारा आकाश'' में समर का परिवार ग्रामीण/मध्यवर्ग का ही उदाहरण है। इस उपन्यास में समर का विवाह, मुन्नी का मरना, बेटी के मायके भेजने के समय, बाप बेटे में नौकरी हेतु आपस में वाद–विवाद, मध्यवर्ग के वातावरण को ही सजीव कर देता है। जिठानी–देवरानी का आपसी मतभेद, बहू–बेटी का दोहरा मापदंड, कमाऊ बेटे का लाड़–प्यार, मध्यवर्ग की स्थिति का मूल्यांकन करता है। इसका एक उदाहरण जहां मध्यवर्ग के खोखलेपन से पराजित पिता बिना सोचे–समझे अपने विवाहित पुत्र पर भी हाथ उठा लेता है।''[4] और तु हमसे कहेगा क्या शहजादे हम अन्धे हैं न? दिखता थोड़े ही है हमें? हाँ अब तो पढ़ लिये, लिख लिये ब्याह हो गया, अब मां–बाप का क्या है जायें जहन्नुम में, चूल्हे में पड़े और भाड़ में निकलें, तुम अपनी मस्ती मत छोड़ना।''[5]

मध्यवर्ग की समस्याओं के आकलन के सम्बन्ध में श्री सुरेश का कहना सार्थक है कि ''राजेन्द्र यादव का जीवन के प्रति प्रगतिशील दृष्टिकोण है और मध्यवर्ग की समस्याओं का उन्होंने अत्यन्त यथार्थ चित्रण पूर्ण कलात्मक ईमानदारी से करने का प्रयास किया है।''[6]

सामाजिक और वैयक्तिक चेतना के सन्दर्भ में लेखक ने सर्वाधिक जिस समस्या को अंगीकार किया है। वह मध्य वर्ग ही है। स्वतन्त्रता के बाद उभरती वर्गीय चेतना ने धीरे–धीरे सारे समाज के टुकड़े–टुकड़े कर दिये। शोषित और दलित वर्ग की संघर्षरत परिस्थितियों ने धीरे–धीरे कुंठित चेतनाशीलता के आधार पर दिशा खोकर व्यक्तित्व के खंडित टुकड़ों पर टिक गया है। बढ़ती जाने वाली स्वार्थ भावना और शिथिल बौद्धिकता ने धीरे–धीरे मध्यवर्ग की मानसिक स्वतन्त्रता नष्ट कर दी है। फलस्वरूप आदमी केवल स्वार्थी और आत्मकेन्द्रित बनकर रह गया है।

यादव जी ने मध्यवर्ग की असंगतियों और अन्तर्विरोध से टकराने वाली इस पीढ़ी की समस्या को बहुत खूबी से पहचाना है। बिखरे विश्वास और विघटित मूल्यों के बीच लेखक ने मध्यवर्ग के दर्द को पहचाना है। तथा समाज के सच्चे झूठे सन्दर्भों को ध्यान में रखते हुए उनकी शहरी समस्याओं को स्पष्ट किया है।[7]

मन्नू जी ने अपनी कहानियों में परंपरागत संयुक्त परिवार की मान्यताओं एवं गलत धारणाओं के कारण नयी पीढ़ी के टूटते स्वप्नों को स्वर दिया है। भारतीय समाज व्यवस्था अब भी अतिशय पैतृक प्रभुत्व से आक्रांत है। प्राचीन काल में इस प्रभुत्व के लाभ भले ही रहे हों, किन्तु आधुनिक युग में सामाजिक विस्फोट हो रहा है तो इस चिर–सम्मानित परंपरा ने अपनी उपादेयता बहुत कुछ खो दी है। इसके दुष्परिणाम चारों तरफ दिखाई देते हैं। वास्तव में पितृ–''सुलभ इस व्यवस्था से बच्चे दबकर निष्क्रिय और अकर्मण्य हो जाते हैं या फिर उनके खिलाफ बगावत करते हैं। 'छत बनाने वाले' कहानी में लेखिका ने वर्तमान के इसी यथार्थ को चित्रित किया है।''[8]

इसका चित्रण मन्नू जी ने ''आकाश के आइने में'' कहानी में चार नारी चरित्रों के माध्यम से किया है। बिखरती हुई पारिवारिक व्यवस्था, क्षीण होते संबंधों का अपनत्व उसके पारिवारिक मूल्यों को विखंडित कर देता है। लेखिका संबंधों की निरर्थकता औपचारिकता की अनुभूति सहने के लिए विवश है। सुषमा, गौरा, प्रीति, लेखा आदि युवा हृदयों की आशा–आकांक्षाओं का संयुक्त परिवारों की मर्यादाओं, मान्यताओं एवं गलत धारणाओं द्वारा शोषण किया जा रहा है। सभी के मन में मुक्त रहने, खुले आकाश तले विहरने की अदम्य लालसा है, परन्तु संयुक्त परिवार की पुरानी जड़ मान्यताओं तथा स्वार्थ–मूलक वृत्त के कारण इन सभी को यह नसीब नहीं होता।[9]

भारतीय समाज संक्रमण की स्थिति से गुजर रहा है। एक ओर प्राचीन और जड़ परम्पराएँ गहरी जड़ें जमाए हुए हैं तो दूसरी ओर आधुनिकता ने पूरे समाज पर अपना प्रभाव डाला है। इन दो के बीच में फंसा भारतीय मानस अंतर्द्वन्द्व से ग्रस्त है। पर इस अतंर्द्वन्द्व का अधिक शिकार होती हैं नयी पीढ़ी। पुरानी पीढ़ी अपने जीवन–मूल्यों और संस्कारों को छोड़ना नहीं चाहती हैं। इतना ही नहीं वह इन्हें नई पीढ़ी पर भी थोपती हैं, जबकि आधुनिक परिवेश में जी रही नई पीढ़ी इसे स्वीकार नहीं कर पाती। पुराने को स्वीकार न कर पाने और नये को छोड़ न पाने की कशमकश में नई पीढ़ी ढही टूटती–बिखरती है, तो कभी गहरी हताशा का शिकार हो जाती है।[10]

नये–पुराने जीवन–मूल्यों की टकराहट में जूझती युवापीढ़ी की मानसिक स्थिति का मार्मिक चित्रण 'त्रिशंकु' कहानी में मिलता है। आधुनिक आचार–विचार वाले पति पत्नी और उनकी किशोर लड़की तनु एक छोटे परिवार के सदस्य हैं। इस घर में बातें कम और बहस ज्यादा होती है। तनु के मम्मी–पापा का प्रेम–विवाह हुआ था। तनु की मम्मी तनु को कई बार यह बता चुकी थी कि तनु के नाना इस विवाह के विरोध में थे फिर भी उन्होंने प्रेम विवाह किया था। ये बात और थी कि तनु को आज भी उनके चेहरे पर प्रेम–विवाह की खुशी कम और लीक से हटकर कुछ करने का संतोष ज्यादा दिखाई देता है। ऐसे ही मुक्त एवं स्वच्छंद वातावरण में पल रही तनु जब पड़ोस में रहने आये कुछ लड़कों के आकर्षण का केन्द्र बनती है तो उसे विचित्र अनुभूति होती है। यह द्वन्द्व केवल तनु का ही नहीं है अधिकांश युवा पीढ़ी का है। यह आज के समाज की विसंगतियों एवं दोहरी मान्यताओं को घोषित करता है और इन दो के बीच पिसते हैं आधुनिक पीढ़ी के बच्चे जो टूट जाते हैं लेकिन इन दो में से एक को अपना कर दूसरे के विरोध नहीं कर सकते और दोनों को साथ लेकर चलने में बिखर जाते हैं।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि जीवन संघर्ष आज इतना जटिल और दुर्गम हुआ है कि अपने आप कुचले बिना यह वर्ग आगे नहीं बढ़ सकता है। इच्छा और स्वप्नों की चिता जलाने के लिए विवश यह वर्ग उफनती जीवन शक्ति को चुचकारने की कोशिश करता है अपने से शक्तिशाली वर्ग से लड़कर भी तो सुखी नहीं हो सकता है स्वयं लेखक इस समस्या को विश्लेषित कर कहते हैं कि–''हम उससे लड़ भी पड़ें तो क्या करें बताइये भूखे मरेंगे, भटकेंगे और आत्म हत्यायें करेंगे।''

मध्यवर्ग की समस्याओं के आकलन के संबंध में यह कहना अनुचित न होना कि यहां रिश्ते खून से नहीं स्वार्थ से जाकर जुड़े है। शिष्ट और नकली रहने की भावना ने संबंध की परिभाषा बदल दी है। परस्पर विश्वास का संबल तो कहीं खो सा गया है। न्यायतंत्र की शिथिलता के कारण मध्यम वर्ग का एक पूरा परिवार सजा भुगतता है। व्यवस्था की क्रूरता का शिकार इस परिवार के किसी एक व्यक्ति को 'सजा'' नहीं होती अपितु संपूर्ण परिवार को बिना किसी अपराध की सजा भुगतनी पड़ती है। भ्रष्ट व्यवस्था एक ईमानदार व्यक्ति को आरोपों के कटघरे में लाकर खड़ा कर देती है। न्याय व्यवस्था न्याय देने में विलम्ब करती है, और न्याय देने तक पूरा अन्याय हो चुका होता है। इस पर अनीता राजूरकर का कथन है कि ''निर्दोष रिहा तो किया जाता है परंतु तब तक समूची भ्रष्ट व्यवस्था के फलस्वरूप अतंहीन यातनाओं को सह–सहकर ऐसी अभिशप्त स्थिति में पहुंच जाता है कि सारा परिवार टूट जाता है उसे फिर से संजोना प्रायः असंभव हो जाता है।

सारे सपने और अरमान बिखर जाते हैं। शसकों और अपराधियों की मिली भगत पर न्याय नीलाम होता है।

संदर्भ :–

1. साप्ताहिक हिन्दुस्तान पृ. 30 पारिवारिक विघटन संदर्भों की तलाश
2. प्रेमचन्द्र की विरासत और अन्य निबंध, पृ. 13
3. प्रेमचन्द्र की विरासत और अन्य निबन्ध, पृ. 13
4. सारा आकाश–राजेन्द्र यादव, पृ. 244
5. सारा आकाश, पृ. 244
6. सह और मात–भूमिका, पृ. 395
7. कहानी स्वरूप और संवेदना–आधुनिकता बोध की रूढ़ियाँ, पृ.–162
8. नकली हीरे, नायक खलनायक विदूषक, मन्नू भण्डरी, पृ. 188
9. मन्नू भण्डारी के साहित्य में चित्रित समस्याएं, गुलाबराव छाड़े, पृ.–17
10. मन्नू भण्डारी के साहित्य में चित्रित समस्याएं गुलाब राव घाड़े, पृ.–17

SHODH CHETNA – YEAR-3 ISSN : 2350-0441
(JAN. TO MARCH, 2017) VOL. 1

जननी सुरक्षा योजना : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

❑ अंशुमाला सिंह*

शोध सारांश

मानव जीवन का वास्तविक सुख स्वास्थ्य में निहित है। स्वस्थ्य जीवन तभी संभव है जब आहार–विहार और संयम का अनुपालन किया जाय। इन मूलभूत पक्षों का सही व उचित जानकारी न होने के कारण मानव रोगग्रस्त हो जाते हैं और चिकित्सा के सहारे जीवन जीने के लिए बाध्य होते हैं। भौतिकवादी दृष्टिकोण के कारण आज जिस गति से स्वास्थ्य सुविधाओं का विस्तार हो रहा है उसी गति से रोगों का प्रकोप भी बढ़ा है। शरीर और मन को स्वस्थ्य बनाये रखने की जिम्मेदारी प्रत्येक व्यक्ति में निहित है लेकिन यह चिकित्सकों तक सीमित होती जा रही है। जिसके फलस्वरूप व्यक्ति जाने अनजाने ऐसी गलतियाँ करते हैं जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक सिद्ध होते हैं। खान–पान, दिनचर्या, संयम और मौसम के साथ उचित समायोजन स्वास्थ्य के आधारीय पक्ष हैं। यद्यपि पढ़ा–लिखा समाज भी इस दिशा में सचेत नहीं है।[1]

स्वास्थ्य जीवन के आधारीय तत्व यथा शुद्ध हवा, स्वच्छ जल, संतुलित आहार–विहार, शान्त वातावरण और प्रकृति से मानव का सहचर्य वस्तुतः बीते हुये दिनों की बातें बनती जा रही है। प्रदूषण का बढ़ता प्रकोप वर्तमान में मानव का घटता विवेक आज अस्वस्थता के प्रमुख कारण बनते जा रहे हैं। स्वास्थ्य रक्षा के लिए संतुलित आहार, पोषण और कुपोषण की जानकारी महिलाओं एवं बच्चों को समय–समय पर दिये जाने की जितनी आवश्यकता है साथ ही उतनी आवश्यकता बीमारियों के संबंध में भी सचेत किये जाने की है। स्वास्थ्य शिक्षा को बढ़ावा देने से समाज में जागरूकता बढ़ेगी लोगों में अपने स्वास्थ्य के प्रति सजगता आयेगी, आहार–विहार का अनुपालन करने की समझ विकसित होगी। आज बड़े पैमाने पर कई तरह स के प्रदूषण ने समाज को विकृत कर दिया है। लोगों की दिनचर्या, स्वास्थ्य और आहार सभी कुछ प्रभावित किया है। साथ ही रहन–सहन के स्तर पर भी प्रतिकूल प्रभाव डाला है। जिसे स्वास्थ्य शिक्षा द्वारा दूर करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

* एम.ए., समाजशास्त्र, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह स्वशासी महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

स्वास्थ्य का असली सुख निरोगता में है निरोगी काया ही व्यक्ति के जीवन को आगे बढ़ाती है। प्रत्येक समाज में स्वस्थ्य रहने के लिऐ प्रकृति के नियमों का अनुपालन अनिवार्यतः किया जाता रहा है। लोग अपने व्यस्त जीवन शैली में से अपने स्वास्थ्य व खान–पान के लिए कुछ पल अवश्य निकाल लेते हैं। वहीं कुछ ऐसे लोग भी हैं जो अपने स्वास्थ्य के लिए ध्यान ही नहीं देते हैं। इनमें से अधिकांश महिलाएं हैं, जो घरेलू कार्य और अन्य गतिविधियों के कारण अपने स्वास्थ्य पर ध्यान ही नहीं देती हैं।[2]

वस्तुतः स्वास्थ्य और पर्यावरणीय प्रभाव महिलाओं के जीवन में एक महत्वपूर्ण पक्ष है। स्वास्थ्य का सीधा संबंध भौतिक और सांस्कृतिक पर्यावरण से है जिसमें महिलाएं जीवन के विभिन्न अवस्थाओं में पलती हैं तथा घर परिवार इत्यादि को सम्भालती हैं। पर्यावरणीय तथ्यों को बिना समझे और समायोजन किये शरीर और मन को निरोग बनाये रखना एक कठिन कार्य है। अतः क्षेत्रीय स्तर पर स्वास्थ्य संबंध के विभिन्न पक्षों को समझना इस शोध के लिए आवश्यक है।

राष्ट्र एवं समाज की निर्मित करने वाली इकाई व्यक्ति होता है। स्वस्थ्य एवं सबल व्यक्ति से ही सशक्त राष्ट्र एवं समाज का निर्माण होता है। अतः ऐसा कहा जाता है कि स्वस्थ्य तन में ही स्वस्थ्य मन का निवास होता है। व्यक्ति के शरीरिक, बौद्धिक एवं मानसिक स्तर का स्वास्थ्य से गहरा संबंध है। उत्तम रीति से जीवन व्यतीत करने के लिए स्वस्थ्य रहना आवश्यक है। पर्क जे.ई. के अनुसार ''एक साधारण व्यक्ति के लिए स्वास्थ्य का तात्पर्य एक स्वस्थ्य वातावरण में स्वस्थ्य दिमाग का वास है।''[3] प्राचीन काल में स्वास्थ्य का आशय सुरक्षा तथा निरोगता से लिया जाता था जिसमें सुरक्षा का तात्पर्य वातावरण से एवं निरोगता का संबंध स्वास्थ्य से है। जीवन को सार्थक बनाने के लिए शरीर और मन से स्वस्थ्य रहना व्यक्ति का लक्ष्य होना चाहिए। रोगी व्यक्ति पीड़ा, भय, अनिच्छा और कुढ़न से ग्रसित होकर अपने जीवन की सार्थकता खो देता है और दूसरों को भी क्लेश पहुंचाता है। स्वास्थ्य के अन्तर्गत शरीर, दिमाग और वातावरण शामिल है। ये तीनों प्रकृति द्वारा प्रदत्त होते हैं। व्यक्ति का स्वस्थ्य रहना उसका जन्म सिद्ध अधिकार है। इसीलिए प्रकृति के बनाये नियमों का पालन करना चाहिए। जबकि वातावरण को दुरुपयोग कर मानव बीमारियों एवं स्वास्थ्य संकटों को बढ़ावा देता हैं। विलियम, जे.एफ. के अनुसार ''स्वस्थ्य जीवन का वह गुण है जो व्यक्ति को अधिक समय तक जीवित रहने तथा सर्वोत्तम प्रकार से सेवा करने के योग्य बनाता है।''[4] अतः स्वास्थ्य व्यक्ति में शारीरिक ऊर्जा, शक्ति, कार्य के प्रति उत्साह तथा सोचने–समझने की पर्याप्त क्षमता होनी चाहिए। प्रत्येक मानव चाहे वह महिला हो अथवा पुरुष सभी की उनके आयु, लिंग एवं कार्य के अनुसार निश्चित मात्रा में आहार की आवश्यकता होती है।

इस आधार में भोजन के अनिवार्य तत्व निश्चित अनुपात में होने आवश्यक हैं। यदि एक व्यक्ति को आहार के सभी तत्व समुचित मात्रा एवं अनुपात में प्राप्त होते हैं तो उसका स्वास्थ्य ठीक रहता है तथा शरीर की वृद्धि, विकास एवं रख–रखाव भी उचित प्रकार से होता है। परन्तु विभिन्न कारणों से सभी व्यक्तियों को उचित आहार उपलब्ध नहीं हो पता आहार के अनिवार्य तत्वों की मात्रा तथा अनुपात उचित अथवा कम या अधिक होने के आधार पर ही व्यक्ति उचित पोषक अथवा कुपोषण की स्थिति को प्राप्त करता है। स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए समुचित प्रकार का आहार जिस मात्रा में महिलाओं को चाहिए उतनी मात्रा में

उनके शरीर को न मिलने पर शरीर की जो स्थिति बनती है उसे कुपोषण कहते हैं। कुपोषण की अवस्था में या तो समुचित मात्रा एवं गुणों के अनुसार भोजन नहीं मिल पाता अथवा आवश्यकता कसे अधिक मात्रा में आहार ग्रहण किया जाता है। इसका आशय यह है कि महिलाओं का आहार असंतुलित होने अथवा अपर्याप्त होने अथवा आवश्यकता से अधिक होने पर उनके शरीर को ऊर्जा नहीं मिल पाती और वे कुपोषण का शिकार होती है। अर्थात असंतुलित आहार, अपर्याप्त होने अथवा आवश्यकता से अधिक होने पर उनके शरीर को ऊर्जा नहीं मिल पाती और वे कुपोषण का शिकार होती हैं। अर्थात् असंतुलित आहार, अपर्याप्त आहार व आवश्यकता से अधिक आहार ये तीनों दशाएं महिला कुपोषण के सूचक माने जाते हैं। महिलाओं में कुपोषण का प्रतिकूल प्रभाव उनके शरीररिक स्वास्थ्य तथा वृद्धि एवं विकास पर पड़ता है। कुपोषण के परिणामस्वरूप विभिन्न प्रकार के रोग जैसे– रतौंधी, प्लूरिसी, बानकाइटिस, हृदय रोग, ग्वाइटर आदि सामान्य रूप से उत्पन्न होते हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक महिलाओं के शरीर को प्रतिदिन के कार्यों के लिए, शरीर के बढ़ने और रखरखाव के लिए तथा रोगों के बचाव के लिए जिस ऊर्जा या शक्ति की आवश्यकता होती है, उसे भोजन में रहने वाले भोज्य पोषक तत्व प्रदान करते हैं।

अतः भोजन में उपरोक्त कार्यों की पूर्ति करने वाले पोषक तत्वों की शरीर में उनकी कमी से उत्पन्न लक्षण कुपोषण की श्रेणी में आते हैं कुपोषण एक गंभीर समस्या है। इसका सीधा प्रभाव व्यक्ति के जन्म से पड़ता है। बचपन में कुपोषण मुख्य रूप से आहार संबंधी जरूरतों की सही जानकारी परिवार व समुदाय को नहीं होती है। महिलाओं एवं बच्चों के पोषण एवं स्वास्थ्य को बेहतर बनाने के लिए एक जैसी पद्धति को अपनाने के बजाय प्रदेश की परिस्थितियों और लिंग आधारित विश्लेषण पर ध्यान देना जरूरी है। महिलाओं हेतु संचालित जननी सुरक्षा योजना के स्तर को समझने का प्रयास किया गया है। महिला कुपोषण के फैलाव के स्वरूप को सामाजिक एवं आर्थिक तत्वों का प्रभाव किस रूप में है? महिला एवं बाल विकास विभाग की परियोजनाएँ कुपोषण एवं अपोषण की स्थिति में सुधारात्मक उपाय के रूप में कितनी कारगर सिद्ध हो रही है? उनसे क्या सीमाएं उभर रही है? इत्यादि का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

जननी सुरक्षा के लिए जिन जोखिमों का महिलाएं गर्भवती होने के बाद सामना करती हैं गर्भावस्था, बच्चे के जन्म के समय और इसके शीर्घ बाद गुणवत्तापूर्ण प्रसव–पूर्व स्वास्थ्य सुविधा केन्द्र तक महिलाओं की पहुंच कायम करके माताओं को अधिकांश मौतों से बचाया जा सकता है। गुणवत्तापूर्ण एएनसी में शामिल हैं– गर्भवती माताओं का शुरूआती पंजीकरण और पहले तीन माह में शारीरिक और उदर मांसपेशी की जांच, हिमोग्लोबीन का अनुमान तथा मूत्र जांच, टिटनेस रोग, प्रतिरक्षण की दो खुराक और 100 दिनों के लिए आयरन फॉलिक एसिड की गोलियां आदि राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–3 के अनुमान के अनुसार महिलाओं के लिए चिकित्सक की सेवा पाने की प्रतिशतता केवल 32.8 प्रतिशत है जबकि यह अखिल भारतीय स्तर पर 50.2 प्रतिशत और महिलाओं के लिए 42 प्रतिशत है। गर्भवती माताओं के लिए रोग प्रतिरक्षण की मुफ्त सुविधा प्रदान करने के बावजूद केवल 32.4 प्रतिशत सभी सामाजिक समूहों में सबसे कम महिलाओं ने ही यह सुझाव प्राप्त किये कि गर्भावस्था की जटिलताओं का अनुभव करने पर उन्हें कहा जाना चाहिए।

पिछड़े क्षेत्रों में राज्य सरकार ने कुपोषण को दूर करने के लिए सरकार की ओर से पोषण आहार उपलब्ध कराने को अपनी प्राथमिकता में शामिल किया है। राज्यसभा में एक सवाल के लिखित जवाब में जनजातीय कार्य राज्यमंत्री मनसुख भाई घांजभाई वसावा ने बताया कि केन्द्र सरकार ने विभिन्न हस्तक्षेपों के माध्यम से पूरे देश में जननी सुरक्षा हेतु संपूर्ण विकास की रणनीति बनाई है।[6] इसमें उनकी शिक्षा के साथ ही स्वास्थ्य एवं स्वच्छता पर विशेष जोर दिया जा रहा है। इसके साथ ही उनकी आर्थिक स्थिति सुधारने की दिशा में भी प्रयास किया जा रहा हैं विकास गतिवधियों का मुख्य भाग संबंधित केन्द्रीय मंत्रालयों तथा राज्य सरकारों की विभिन्न योजनाओं/कार्यक्रमों के माध्यम से किया जाता है जबकि महिलों के जनजातीय कार्य मंत्रालय महत्वपूर्ण अंतर को कम करके इन पहलों में अपना योगदान देता है। नीति आयोग ने जनजातीय लोगों के संपूर्ण विकास का ध्यान में रखते हुए राज्यों/संघशासित क्षेत्रों तथा केन्द्रीय मंत्रालयों/विभागों द्वारा जनजातीय उपयोजना के कार्यान्वयन के लिए वर्ष 2014 के दौरान संशोधित दिशा–निर्देश जारी किए हैं, इस साल इसे और बेहतर तरीके से लागू किया जा रहा है। सरकार की कोशिश है कि आदिवासी या पछिड़े क्षेत्रों में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों को सुदृढ़ किया जाए। क्योंकि आदिवासी इलाकों में तमाम स्वास्थ्य केन्द्र में संसाधनों का अभाव है कई स्थानों पर चिकित्सा अधिकारी व चिकित्सा स्टाफ की कमी है। ऐसे में राज्य सरकारों से गुजारिश की गई है कि वे चिकित्सकों एवं चिकित्सा अधिकारियों की तैनाती में इस बात का ध्यान रखें कि पिछड़े इलाके में स्थित स्वास्थ्य केन्द्र बंद न होने पाएं राज्य सरकारों की ओर से हभी इस दिशा में पहल की जा रही है। उम्मीद की जानी चाहिए कि इस पहल का सकरात्मक नतीजा निकलेगा।

जननी सुरक्षा केन्द्र के अन्तर्गत बच्चों का जन्म बेहतर स्थितियों में हो, स्वास्थ्य केन्द्र में हो इसके लिए काफी खर्च हुआ है। परन्तु प्राथमिक केन्द्रों में जैसी सुविधाएं होनी चाहिए, उपलब्ध नहीं हो सकीं। गांवों में महिला स्वास्थ्य कार्यकर्ता 'आशा' की नियुक्ति एक बेहतर कदम है। पर आशा को अनुकूल परिस्थितियों और समुचित प्रशिक्षण दिए जाने से जननी सुरक्षा कार्यक्रम को बल मिलेगा।[7]

संदर्भ ग्रन्थ :–

1. अग्रवाल, मोनिका (1992), आहार एवं पोषण विज्ञान, राजीव प्रकाशन, मेरठ
2. श्रीवास्तव, सीमा एवं प्रसाद ज्योति (1991), आहार एवं पोषण, अरुण प्रकाशन ग्वालियर
3. Perk, J.E., Food and Nutrition, Arya Publishing House, 3rd Ed. page-2
4. William, J.F. (1978), Elementary of Medical, NewYork.
5. आनन्द, निर्मल कुमार, कुपोषण निवारण का सहकारी प्रयास, कुरुक्षेत्र, अक्टूबर 2008
6. कुरुक्षेत्र ग्रामीण विकास को समर्पित, जुलाई 2015,पृष्ठ 27
7. कुरुक्षेत्र ग्रामीण विकास को समर्पित, जुलाई 2015 पृष्ठ 32

SHODH CHETNA – YEAR-3
(JAN. TO MARCH, 2017) VOL. 1

ISSN : 2350-0441

''कालिदासकालीन साहित्य में शास्त्रीय संदर्भ''

❑ डॉ. विनोद कुमार त्रिपाठी*

कालिदासकालीन साहित्य में शास्त्रीय संदर्भ पदे–पदे दृष्टिगोचर होते हैं। तत्कालीन अन्य साहित्यों के साथ कालिदास के ग्रन्थों का अवलोकन भी समीचीन होगा। ये एक अच्छे नाटककार के रूप में माने जाते हैं क्योंकि इनके सभी नाटक सुखान्त हैं और इनका प्रतिपाद्य विषय श्रृंगार है। परन्तु मालविकाग्निमित्रम् की कथावस्तु की योजना उतनी प्रौढ़ नहीं जान पड़ती, जितनी विक्रमोर्वशीयम् तथा अभिज्ञानशाकुन्तलम् की। विक्रमोर्वशीयम् में कालिदास की नाटकीय वस्तु का एक खास ढंग का 'पैटर्न' दिखाई देता है, जो अभिज्ञानशाकुन्तलम् में भी पाया जाता है। दोनों नाटकों में केवल इतनी ही समानता नहीं है कि दोनों पौराणिक इतिवृत्त को आधार बनाकर चलते हैं। दोनों नाटकों की वस्तु के सजाने का ढंग है। कालिदास के तीनों नाटकों की नायिका सर्वप्रथम दयनीय अवस्था में उपस्थित होती हैं, तथा नायक उसकी दशा को देखकर उसके प्रति मनसा या कर्मणा उपकार करता है। मालविका जैसी सुन्दरी को दासी के रूप में देखकर अग्निमित्र उसके प्रति सदय भाव का अनुभव करता है। विक्रमोर्वशीयम् तथा शाकुन्तल में इस योजना का विस्तृत रूप दिखाई पड़ता है। विक्रमोर्वशीयम् की उर्वशी तथा शाकुन्तल की शकुन्तला को कवि कुछ ऐसी विपद्गत दशा में चित्रित करता है, जिसे नायक छुड़ाता है। पुरूरवा दानवों के द्वारा अपहृत उर्वशी को युद्ध करके छुड़ा लाता है, और इस प्रकार उर्वशी को उपकृत करता है। दुष्यन्त पहले तो आश्रमजनोचित कार्य में व्यस्त शकुन्तला को देखकर उसके भाग्य की विचित्रता के प्रति करुण सस्पृह दृष्टि से उसी तरह देखता है, जैसे कोई इन्दीवार कमल के पत्ते के कोमल किनारे (धार) से समिधा की लता को काटते व्यक्ति की निष्ठुरता को देखता है[1], फिर वह भौंरे के विघ्न से आतंकित शकुन्तला की रक्षा कर उसका उपकार करता है। नायक के उपकार के प्रति कृतज्ञता के रूप में नायिका का आकर्षण चित्रित करना कालिदास की वस्तुयोजना का प्रथम विन्दु है, जो नायक–नायिका के प्रथम मिलन से संबंध रखता है। उर्वशी को लेकर जब पुरूरवा लौटता है, तो बेहोश उर्वशी होश में आने पर चित्रलेखा से पूछती है 'क्या इन्द्र ने उसकी रक्षा की है?' चित्रलेखा का उत्तर पुरूरवा के उपकार का संकेत करता है–'न महेन्द्रेण, महेन्द्रसदृशानुभावेन राजर्षिणा पुरूरवसा' और ठीक इसी के बाद की उर्वशी की स्वगत उक्ति एक ओर उपकार के दुहरेपन की कृतज्ञता प्रदर्शित करती है, दूसरी ओर पूर्वराग के बीज का उद्भेद दिखाती है–'उपकृतं खलु दानवेन्द्रसंरम्भेण'। भौंरे से शकुन्तला की रक्षा करने पर इस तरह से किसी पात्र के द्वारा नायिका को नायककृत उपकार का स्मरण दिलाने की

* अतिथि विद्वान् (संस्कृत), शासकीय शहीद केदारनाथ स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मऊगंज, जिला-रीवा (म.प्र.)

आवश्यकता न थी, किन्तु इस उपकार की महत्ता को प्रदर्शित करने के लिए कवि ने एक स्थल ढूंढ़ ही लिया है। प्रियंवदा की उक्ति के द्वारा कवि ने इसका संकेत कर शकुन्तला के कृतज्ञता प्रकाशन की व्यंजना करा दी है–'हला शकुन्तले मोचितास्यनुकम्पिना आर्य्येण'। पर इतना होते हुए भी इन दोनों स्थलों में कुछ महत्त्वपूर्ण अन्तर है। विक्रमोर्वशीयम् में पुरूरवा के शौर्य तथा रूप के कारण उर्वशी पहले मोहित होती है, बाद में पुरूरवा। उर्वशी की पूर्वोदाहृत उक्ति के बाद पुरूरवा के हृदय में पूर्वराग का निबन्धन किया। यथा–

अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु कान्तिप्रदाः
श्रृंगारैकरसः स्वयं नु मदनो मासो नु पुष्पाकरः।
वेदाभ्यासजडः कथं नु विषयव्यावृत्तकौतूहलो
निर्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः।।[2]

विक्रमोर्वशीयम् की नायिका के चरित्र को देखते हुए यही उपयुक्त दिखाई पड़ता है, जो प्रथम तो अप्सरा–सामान्य, स्त्री है, दूसरे आगे के अंकों में अभिसारिका के रूप में चित्रित की गई है, जो स्वयं राजा से मिलने के लिए चित्रलेखा के साथ राजा के प्रमदवन में आकर छिपकर राजा की चेष्टाओं का पता लगाती है। शाकुन्तल में यह बात नहीं है, वहाँ दुष्यन्त में ही पहले–पहल पूर्वराग का चित्रण किया गया है, तथा उसके बहुत बाद शकुन्तला को रागजनित विकार से युक्त निबद्ध किया गया है, जहाँ वह स्वगतोक्ति के द्वारा राजा को देखकर तपोवन विरोधी विकार की पात्र बनती व्यंजित की गई। शाकुन्तल की यह वस्तुयोजना एक ओर शकुन्तला के भोलेपन, तथा राजा के कामुकत्व की व्यंजना करती है। किन्तु इतना होते हुए भी कालिदास ने दुष्यन्त के चरित्र को स्थान–स्थान पर धीरोदात्तत्व को दूषित करने वाले दोषों से बचाने का प्रयत्न किया है।

कालिदास का पहला प्रयास 'सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तः करण प्रवृत्तयः' के रूप में स्पष्ट है, दूसरा प्रयास दुर्वासा के शाप की योजना है। यदि दुष्यन्त की धीरोदात्तप्रकृति के लिए 'कामुक' शब्द का प्रयोग बुरा लगे, तो 'रसिक' शब्द का प्रयोग किया जा सकता है; किन्तु अपनी असलियत को छिपाकर स्वयं को दुष्यन्त का राजपुरुष कहने को धोखाधड़ी क्या उसके कामुकत्व को पुष्ट नहीं करेगी? नायक–नायिका के प्रथम दर्शन के समय की विदाई का चित्रण करते समय दोनों ही नाटकों में कवि ने नायिका के औत्सुक्य की सरस और स्वाभाविक व्यंजना में एक–सी प्रणाली का आश्रय लिया है। पुरूरवा को छोड़कर आकाश मार्ग में उड़ती उर्वशी की वैजयन्तिका लताविटप में उलझ जाती है, जिसके बहाने मुड़कर वह आखिरी बार राजा को देखना चाहती है। इस स्थल के वर्णन में कालिदास का नाटकीय संवाद भी अपनी सूक्ष्मता तथा स्वाभाविकता के लिए उदाहृत किया जा सकता है–

उर्वशी–अहो लताविटपे एषा एकावली वैजयन्तिका मे। (सव्याजमुपसृत्य राजानं पश्यन्ती) सखि चित्रलेखे, मोचय तावदेनाम्।

चित्रलेखा–(विलोक्य विहस्य च) आम्, दृढं खलु लग्ना सा, अशक्य मोचयितुम्।[3]

उर्वशी–अरे मेरी एकावली वैजयन्तिका लताविटप में फंस गई। (इस बहाने से नजदीक जाकर राजा को देखती हुई) सखि चित्रलेखे, इसे सुलझा तो दे।

चित्रलेखा–(देखकर और हँसकर) हाँ, यह तो बहुत फँस गई है, सुलझाना असम्भव है।

शाकुन्तल में भी इसका संकेत मिलता है, पर वहाँ कवि ने हेरफेर कर उसे अधिक रमणीय रूप दे दिया है। प्रथम अंक की विदाई के समय शकुन्तला

की इस तरह की चेष्टा का कोई संकेत न देकर, कालिदास ने दूसरे अंक में नायक दुष्यन्त के द्वारा स्मरणरूप में शकुन्तलाविषयक औत्सुक्त की व्यंजना कराई है। माधव्य से अपने प्रेम की बात करते तथा शुन्तला का वर्णन करते समय नायक के मुख से ही निम्नलिखित उक्ति कहलाना, कवि की वस्तुयोजना को तीव्रतर बना देता है–

दर्भांकुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे
तन्वी स्थिता कतिचिदेव पदानि गत्वा।
आसीद्विवृत्तवदना च विमोचयन्ती
शाखासु वल्कलमसक्तमपि द्रुमाणाम्।।[4]

'कोमल अंगों वाली शकुन्तला कुछ दूर जाकर इस बहाने रुक गई कि उसके पैर में दर्भ की नोक चुभ गई है। उसका वल्कल पेड़ों की शाखाओं में नहीं उलझा था, फिर भी टेढ़ी गरदन करके वह जैसे उसे सुलझाने की चेष्टा कर रही है।'

उर्वशी की एकावली उलझती है, शकुन्तला का वल्कल, साथ ही शकुन्तला के पैर में दर्भ की चोट लगने का बहाना तपोभूमि के कठोर वातावरण और शकुन्तला की कोमलता के अनुरूप भी जान पड़ता है। नायक की दशा भी प्रथम दर्शन के बाद की विदाई का मार्मिक चित्र लेकर आती है। आकाश में उड़ती उर्वशी पुरूरवा के मन को शरीर से इसी तरह तेजी से खींचकर ले जाती है, जेसे राजहंसी खण्डित अग्रभाग वाले मृणाल के तन्तु को, और लतामण्डप से निकलते दुष्यन्त का शरीर तो आगे बढ़ता है, पर मन पीछे की ओर, शकुन्तला की ओर, उसी तरह वहां जा रहा है, जेसे वायु की दिशा में आन्दोलित ध्वजा का रेशमी कपड़ा।

गच्छति पुरः शरीरं धावति पश्चादसंस्तुतं चेतः।
चीनांशुकमिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य।।[5]

दोनों नाटकों में विदूषक का प्रवेश द्वितीय अंक में होता है, तथा राजा अपने प्रणय को व्यक्त करता है; किन्तु शाकुन्तल में कवि ने बड़ी कुशलता से इस प्रणयव्यक्ति को अन्यथा भी कर दिया है। विक्रमोर्वशीयम् में यहीं राजा पुरूरवा की पत्नी औशीनरी का प्रवेश कराकर कवि ने मालविकाग्निमित्रम् जैसी प्रणय–द्वन्द्व की स्थिति उपस्थित कर दी है। शाकुन्तल में कवि ने इस योजना को हटाकर एक नया रूप दिया है। दुष्यन्त की रानी वसुमती मंच पर कहीं नहीं आती, तथा छठे अंक में एक स्थान पर उसके आने की सूचना देकर भी उसका प्रवेश न कराना कवि की बहुत बड़ी सतर्कता है। शकुन्तला के 'शुद्धान्तदुर्लभ' सौन्दर्य की होड़ में कवि किसी सुन्दरी का चित्रण करना अनावश्यक समझता है; साथ ही शाकुन्तल का प्रमुख प्रतिपाद्य पिछले दो नाटकों की तहर प्रणय–द्वन्द्व न होकर नियति–द्वन्द्व हो गया है। शकुन्तला तथा दुष्यन्त के मिलन में धारिणी या औशीनरी जैसा मूर्त विघ्न न होकर, दुर्वासा के शाप के रूप में अमूर्त नियतिचक्र ही बाधक दिखाई पड़ता है। शापवाले नियति तत्व की योजना विक्रमोर्वशीयम् में भी देखी जा सकती है, जहाँ उर्वशी लता बन जाती है। कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने कालिदास के शाकुन्तल की शापवाली कल्पना की आलोचना की है, जो नायक के अन्तर्द्वन्द्व को उभरने नहीं देती, तथा कथा में अमानवीय शक्तियों के हाथ बॅटाने का संकेत करती है। पर कालिदास के इतिवृत्त की पौराणिकता को ध्यान में रखने पर यह कल्पना ठीक बैठ जाती है।

दोनों नाटकों में नायक या नायिका में से कोई एक दूसरे की चेष्टाओं को छिप–छिपकर देखता है। विक्रमोर्वशीयम् की उर्वशी छिपकर आती है, शकुन्तला का दुष्यन्त तीसरे अंक में छिप–छिपकर विरहक्षाम शकुन्तला की चेष्टा का अध्ययन करता है। दोनों नाटकों में नायिका अपने प्रेम की पत्रलेख के द्वारा व्यक्त करती है।[6] नाटक में नायक–नायिका के द्वितीय मिलन के समय दोनों में औत्सुक्य को

बनाये रखने के लिए कालिदास में एक और योजना पाई जाती है। वे किसी न किसी बहाने नायिका को तेजी के साथ नायक की आँखों से हटा देना चाहते हैं। विक्रमोर्वशीयम् के द्वितीय अंक में देवदूत आकर सूचना देता है कि महाराज इन्द्र भरमुनि प्रणीत नाटक को देखना चाहते हैं। अतः उर्वशी जल्दी से स्वर्ग को लौट चले।[7] इसी के द्वारा कवि बाद में संकेतित भरतशाप, इन्द्रानुग्रह तथा तृतीय अंक गत पुरूरवा उर्वशी–मिलन का बीज निक्षिप्त करता है। शाकुन्तल के तृतीय अंक में भी शकुन्तला को हटा देने का उपक्रम किया गया है, पर वहाँ अनुसूया और प्रियंवदा की नेपथ्योक्ति 'हे चक्रवाकवधुके! आमन्त्रयस्व सहचरम्, उपस्थिता रजनी' इस काम को पूरा करती है। गौतमी के, इस उक्ति के बाद ही, मंच पर आ जाने से दुष्यन्त को अन्तिम विदाई के समय भी दो बातें करने का अवसर नहीं मिलता, उसे एकदम लताविटप की आड़ में छिपना पड़ता है। यहाँ कवि का प्रथम उद्देश्य औत्सुक्य की तीव्रता बनाये रखना है, दूसरा भावी तीन अंकों के विरह की पृष्ठभूमि दृढ करना।[8] इसी बीच लतामण्डप में फिर से परिभोग के लिए आमन्त्रित करती हुई शकुन्तला मंच से निष्क्रान्त हो जाती है। विक्रमोर्वशीयम् के दूसरे अंक में ही औशीनरी का प्रवेश कराकर मंच को सूना नहीं रखा गया है, जब कि शकुन्तला के चले जाने पर मंच पर एक ओर छिपा वियोगभाराक्रान्त ही बचा रहता है। चिन्तामग्न दुष्यन्त को मंच से हटाने तथा अंक समाप्त करने में कालिदास ने एक और नाट्यकला विषयक चतुरता प्रदर्शित की है। नेपथ्य से तपोवन में राक्षसों के झुण्ड के आने की सूचना मिलती है–

सायंतने सवनकर्मणि संप्रवृत्ते
वेदीं हुताशनवतीं परितः प्रयस्ताः।
छायाश्चरन्ति बहुधा भयमादधानाः
संध्यापयोदकपिशाः पिशिताशनानाम्।।[9]

और इस तरह राजा में वीररस तथा कर्तव्यनिष्ठा का उद्बोध कर, चिन्ता के प्रभाव को दबाकर, राक्षसों से लड़ने जाने के बहाने उसे मंच से निष्कान्त कर दिया गया है। इन समानताओं के अतिरिक्त दो तीन समानताएं और भी हैं, जिनका सूक्ष्म संकेत आवश्यक होगा। दोनों नाटकों में प्रणय का फल 'पुत्रोत्पत्ति' व्यंजित किया गया है, तथा आयुष् एवं भरत राजा की आँखों से दूर पाले जाते हैं, उनका प्रवेश सामाजिक और नायक दोनों के लिए आकस्मिक रूप से कराया जाता है। साथ ही, दोनों नाटकों में मिलन के साधक रूप में किसी प्रत्यभिज्ञापक चिन्ह का प्रयोग मिलता है, एक में संगमनीय मणि, दूसरे में राजनामांकित मुद्रिका। दोनों में नायक–नायिका के चिरमिलन में मुख्य या गौण रूप से दैवी शक्तियां– इन्द्र– काम करती देखी जाती हैं। इन्द्र के भेजे हुए नारद पुरूरवा तथा उर्वशी के चिरसाहचर्य का सन्देश देते हैं, तो इन्द्र के लिए दानवों को जीतकर लौटते हुए दुष्यन्त का शकुन्तला से मिलन होता है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया समिल्लतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति।। (1.16)
2. विक्र0 1.10.
3. विक्र0 पृ. 34
4. शकु0 2.12
5. शकु0 1.30
6. स्वामिन् संभाविता यथाहं.......... शिखीव शरीरे (वि0 2.12) साथ ही तव न जाने हृदयं मम पुनः कामो दिवापि रात्रावपि। निर्घृण तपति बलीयांस्तव वृत्तमनोरथान्यङ्गानि। (शकु0 3.13)
7. चित्रलेखे त्वरयोवैशीम्।
   मुनिना भरतेन यः प्रयोगो भवतीष्वटरसाश्रयो निबद्धः। ललिताभिनयं तमद्य भर्ता मरुतां द्रष्टुमनाः स लोकपालः।।2.17
8. यावद्विटपान्तरितो भव। (शाकु0 पृ0 111)
9. शकु0 3.24

SHODH CHETNA – YEAR-3
(JAN. TO MARCH, 2017) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

भारतीय समाज में वृद्धों की स्थिति

❑ श्रीमती ऋतु सिंह परिहार*
❑ डॉ. अंशू केशरवानी**

मानवीय संवेदना मानव जीवन का अनिवार्य तत्त्व है। जिस व्यक्ति के जीवन में व्यापक मानवीय संवेदना की स्वच्छ निर्मल धारा प्रवाहित नहीं है, उसका जीवन कभी भी मधुर, स्पृहणीय और श्लाघनीय नहीं हो सकता। मानव जीवन में अभिव्यक्त संवेदना आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक और कलात्मक धरातल पर निरंतर बदलती हुई परिस्थितियों की प्रतीक है। इसके केन्द्र में मनुष्य होता है। मनुष्य का इतिहास भी उसके आस-पास ही रहता है। इसलिए संवेदना में एक प्रकार का सातत्य रहता है। यदि उसकी संवेदना शाश्वत है तो वह काल विशेष को ही प्रभावित न कर आने वाले युग को भी प्रभावित करती है। संवेदना जीवन का आधार तत्त्व है, जीवन का भावतत्त्व है, चेतना तत्त्व है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—''मनुष्य अपने भावों, विचारों और व्यापारों के लिए दूसरों के भावों, विचारों और व्यापारों के साथ कहीं मिलाता और कहीं लड़ाता हुआ अंत तक चला चलता है और इसी को जीना कहता है। जिस अनन्त रूपात्मक क्षेत्र में यह व्यवसाय चलता रहता है उसका नाम है जगत्।''[1] मनुष्य दूसरों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने में कभी मधुर अनुभव करता है, प्रसन्नता प्राप्त करता है तो कभी दुःखी होता है, पीड़ा का अनुभव करता है। कभी मधुर और कटु दोनों तरह के अनुभव करता है। कभी-कभी सामान्य अनुभव भी करता है जो कटु होते और मधुर होते हैं। मानव जीवन में ऐसे अनेक क्षण आते हैं जब दूसरों के साथ कार्य व्यापार में वह अनेक प्रकार के अनुभवों से निकलता है, क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिकता मनुष्य का सबसे महत्त्वपूर्ण गुण और अनिवार्य आवश्यकता है। यूनानी दार्शनिक अरस्तू ने समाज की आवश्यकता के सन्दर्भ में कहा था—''समाज का निर्माण जीवन के लिए किया गया है।''[2] वैसे तो प्रत्येक व्यक्ति समाज के प्रति जागरूक रहता है परन्तु साहित्यकार अधिक संवेदनशील होने के कारण विशेष रूप से जागरूक रहता है। मनुष्य की सामाजिकता तो महत्त्वपूर्ण है ही पर उसकी मानसिकता, उसकी संवेदनशीलता कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। यही मानसिकता कवि और शास्त्रकार को समाज से और युगीन सन्दर्भ से जोड़ती है।

मानव की संवेदनशक्ति और सामाजिक सरोकार उसे अन्य प्राणियों से उत्कृष्ट सिद्ध करते हैं। इस प्रयास में मनुष्य की विवेक-बुद्धि जागृत हुई और आज प्रत्येक क्षेत्र में उसकी पहुँच की इयन्ता नहीं है। इस पहुँच के लिए उसे अपनी कल्पनाशीलता और ऊर्जस्विता का सहारा लेना पड़ता है, साधना करनी पड़ती है, इसलिए साधना के माध्यम से ही मानव मूल्यों की स्थापना की

* अतिथि व्यख्याता बी.एड. विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, जिला रीवा (म.प्र.)
** अतिथि व्यख्याता बी.एड. विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, जिला रीवा (म.प्र.)

जाती है। मनुष्य ने अपनी श्रमयात्रा में जिन कतिपय उदात्त मूल्यों की प्राप्ति की है वही उसे पशु जगत् से पृथक् करते हैं। ऐसे मानव मूल्यों में करुणा, क्षमा, शील, सौहार्द, सामंजस्य, सौजन्य, शान्ति, अहिंसा, सहअस्तित्व आदि मानवीय तत्त्व सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं जो दोनों जगत् में विभाजन-रेखा खीचते हैं। सामाजिक और संवेदनशील प्राणी होने के कारण उसका दायित्व है कि वह दूसरों के लिए लोक कल्याण के लिए काम करें।

मनुष्य में जिजीविषा है, वह जीना चाहता है। वह अपने को प्रकट भी करना चाहता है। अभिव्यक्ति उसकी मूल आवश्यकता है। जिस प्रकार जीने के लिए भोजन-पानी, शयन-जागरण की आवश्यकता है, उसी प्रकार अपने आपको अभिव्यक्ति करने की भी है। वह अपने आपको प्रकट करने का अवसर ढूंढता है। अवसर मिलते ही वह 'जो कुछ भी है', उससे अधिक अपने आपको प्रकट करता है। यह प्रकटीकरण कभी अपने हृदय के आनन्द के लिए और कभी दूसरों को आकृष्ट करने के लिए, उनके मनोरंजन और उपदेश के लिए होता है। जब वह धीरे-धीरे गुनगुनाता है तब अपने ही सुख-दुःख को वाणी देता है और जब वह पूरे सुर के साथ लोगों के सामने गाता है तब वह दूसरे को अपनी ओर आकृष्ट करता है। जिस प्रकार सघन बादलों को देखकर वर्षा अनुमान लगाया जा सकता है, उसी प्रकार चेहरे पर बिछी लकीरों को देखकर उस व्यक्ति में व्याप्त भय, क्रोध, प्रेम, विवशता और निरीहता को अच्छी तरह देखा और परखा जा सकता हैं। इसका निरीक्षण और परीक्षण हर किसी के सामर्थ्य की बात नहीं है। कोई पारखी व्यक्ति ही इसे पढ़ सकता है। जिस प्रकार राह चलते व्यक्ति से प्रेम नहीं किया जा सकता, घृणा नहीं की जा सकती; उसी प्रकार राह चलते व्यक्ति के सामने अपने आपको अभिव्यक्त भी नहीं किया जा सकता। अभिव्यक्ति को सही रूप देने के लिए दो बातों की आवश्यकता रहती है। पहली आवश्यकता है वक्ता की जीवन की गहराई में पैठ और दूसरी है श्रोता में समझने की शुद्ध सामर्थ्य।

यहाँ भी मूल में संवेदना ही रहती है। मानव ने कभी रंगों को गहराई दी, कभी तूलिका द्वारा आड़ी-तिरछी-सीधी-सपाट रेखाओं को वाणी दी। कभी छेनी द्वारा निर्जीव वस्तुओं में प्राण फूँके और कभी शब्दों द्वारा दूसरों को आर्द्र किया। इस प्रकार रंगों की गहराई, रेखाओं की वाणी, प्रस्तरखण्डों की जीवन्तता तथा शब्दों के गीलेपन द्वारा कला का जन्म हुआ। अटूट आस्था और अनवरत साधन द्वारा कला का संस्कार हुआ। यही संस्कारित कला मानव के अन्तरमत को बांधने में सफल होती है। वह कालगत और देशगत सीमा का अतिक्रमण कर सहृदय के दूरस्थ संसार में पहुँच जाती है। यही कारण है कि प्रत्येक देश और युग की कला का महत्त्व सर्व स्वीकार किया जाता है।

काव्य में शब्द और अर्थ कला का माध्यम बनते हैं। रचनाकार शब्दों के माध्यम से सहृदय पाठक या अध्येता के साथ साक्षात्कार करता है। जिस प्रकार पदचाप में व्यक्ति का आकार छिपा रहता है, उसी प्रकार शब्दों में भी कवि का आकार-रूप छिपा रहता है। रचनाकार अपने भीतर को प्रकट करता है—उन भीतरी भावनाओं को जो पहले किसी कारणवश नहीं प्रकट हो पाई थीं। जिस प्रकार उचित समय में वायु, जल, ऊष्मा, पाकर बीज से अंकुर फूट निकलता है उसी प्रकार समुचित कारण में सुख-दुःख के गहरे अनुभवों से कवि का हृदय शब्द बनकर फूट निकलता है। व्याघ्र के बाणों से बिद्ध, क्रौंच पक्षी की मर्मान्तक पीड़ा और उसके सहचर के करुण क्रन्दन से महर्षि वाल्मीकि की संवेदना मुखरित हो उठी—

मा निषाद। प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।

हे निषाद। तुमने प्रेम में डूबे हुए क्रौंच पक्षी को मार डाला; अतः तुम अनन्त वर्षों तक प्रतिष्ठा को प्राप्त न करो। महर्षि की संवेदनामयी वाणी को सुनकर स्वयं ब्रह्मा उपस्थित हुए और उन्होंने रामचरित लिखने के लिए उनसे कहा। इसी प्रेरणा के फलस्वरूप महर्षि बाल्मीकि ने उत्तम काव्य रामायण की रचना की। इस रचना से हम

भारतीय ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व उपकृत हुआ है। कवि सार्वजनिक सत्य का उद्‌घाटन करता है। वह अपनी विशिष्ट संवेदनाओं को प्रकट करता है—उन्हीं संवेदनाओं को वाणी देता है जो पाठक के अन्तस्तल का स्पर्श कर सकती हैं। जहाँ साधारण अभिव्यक्ति में मनुष्य का उद्देश्य केवल विचारों का आदान-प्रदान रहता है वहाँ साहित्यिक अभिव्यक्ति में विषय और शैली की समन्वित शक्तिमत्ता विद्यमान होती है। यही कारण है कि काव्य की अभिव्यक्ति इतिहास, भूगोल, दर्शन और अर्थशास्त्र से भिन्न है।

रचनाकार अपनी अनुभूति को कल्पना द्वारा सुन्दर बनाता है और बाद में शब्दों द्वारा पाठक को छूता-सहलाता है। कल्पना के अभाव में कोई भी अनुभूति काव्य नहीं हो सकती। प्रत्येक मनुष्य में समान भावनाएँ रहती हैं, परन्तु कवि उन्हें काल्पनिक सौन्दर्य देकर काल की सीमा तक पहुँचाता है। प्रेम, घृणा, दया, क्रोध आदि प्रवृत्तियाँ सभी मनुष्यों में समान रूप से पाई जाती हैं अन्तर केवल परिणाम में है। प्रकृतिक सौन्दर्य देखकर केवल कवि हृदय की काव्य रचना कर सकता है। वह केवल काव्य रचना ही नहीं करता बल्कि पाठक के मन में वैसी ही अनुभूति उत्पन्न कर देता है जैसी उसके मन में होती है। सत्य तो यह है कि उक्ति की विविधता ही साधारण मनुष्य और कवि में अंतर ला देती है। यही उक्ति-वैविध्य या उक्ति-वैचित्र्य कवि को साधारण से असाधारण बना देता है। वस्तुतः उक्ति-सौन्दर्य ही कवि की भावना-कला का मापदण्ड है। भाव चाहे कितना ही सुन्दर क्यों न हो। शैली की मूलवत्ता को नकारा नहीं जा सकता। सब्जी चाहे कितनी ही ताजा और महंगी क्यों न हो, बनाने की भी कला होती है, नमक, मिर्च की मात्रा का अपना महत्त्व होता है। भोजन चाहे कितना ही बढ़िया क्यों न हो परोसने की कला को नकारा नहीं जा सकता। घर-आंगन कितना ही बड़ा क्यों न हो उसकी लिपाई-पुताई का भी अपना महत्त्व होता है। जब तक कवि अपनी अनुभूति को शब्दों के सांचे में नहीं ढाले—अपनी बात दूसरों तक पहुँचाने की योजना न बनाये और किसी हृदय की गहराई तक नहीं पहुँचे, तब तक उसका कार्य पूरा नहीं होता। उसकी कल्पना अलंकरण-सौन्दर्य के बिना अधूरी है। जिस प्रकार बिना शरीर के आत्मा आकारहीन है, उसी प्रकार शब्द-विलास के बिना कविता भी आकार-विहीन है। अपने काव्य को चिरंजीवी बनाने के लिए कवि सुन्दर शब्द-विन्यास, समर्थ सिद्ध भाषा, प्रणय-सौन्दर्यजन्य अलंकरण, सजीव-जीवन्त-चित्रमयता तथा मधुर कोमलता का चयन करता है।

कविता कवि की प्रतिच्छवि है, यह वह दर्पण है जिसमें कवि का आंतरिक फलक प्रतिबिम्बित होता है। उसमें कवि का चेतन-अचेतन तत्त्व, युग परिवेश, संस्कार-निर्माण सब कुछ देखा जा सकता है। कविता में से न कवि को निकाला जा सकता है और न उसके युग को। दोनों में से एक को भी निकाल देने से कविता निश्चित रूप से पंगु हो जाती है।

साहित्य समाज का दर्पण है। सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, काम-क्रोध, अच्छा-बुरा, मान-अपमान इन सबका विस्तार ही तो समाज है। इन सबके मूल में संवेदनाएँ ही हैं। कभी हम लोगों के सुख में सुखी होते हैं, कभी उनके दुःख में दुःखी होते हैं, कभी हम अन्याय के विरोध में उनका साथ देते हैं, कभी उनके प्रणय व्यापार के सहयोगी बनते हैं। कभी हम स्वदेश की रक्षा के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग करने वाले सैनिकों के देश-प्रेम पर रीझते हैं, पति परायणा नारी के शुद्ध चरित्र पर मुग्ध होते हैं, सर्वस्व का परित्याग करने वाले परोपकारी की उदात्त भावना पर आनन्द से खिल उठते हैं और प्राणों की बाजी लगाकर डूबते बालक को बचाने वाले साहसी के साहस पर 'वाह-वाह' कह उठते हैं। मानवीय संवेदना की यही भूमिका है कि हम मानव के साथ मानव बनकर रहते हैं और अन्य प्राणियों के साथ भी वही मानवीय व्यवहार करने की चेष्टा करते हैं। यह हमारी संवेदना पर निर्भर है कि हम रति, करुणा, क्रोध, उत्साह, भावों तथा सौन्दर्य, रहस्य, गंभीर आदि भावनाओं को अपने हृदय में कैसा अनुभव करते हैं और मनुष्य मात्र की भावात्मक सत्ता पर

हम कैसा प्रभाव डालते हैं। जहाँ लोक में इन भावों या भावनाओं का हम प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं, वहीं साहित्य रूपी दर्पण में हम इनका प्रतिबिम्ब देखते हैं। लोक के इन भावों का ही 'काव्य' में 'साधारणीकरण' होता है। मानव वहीं है जिसे लोक की पहचान हो, जो अनेक विशेषताओं और विचित्रताओं के बीच मानव जाति के हृदय को देख सके और उसके सुख-दुःख की पहचान कर सके।

जिस मनुष्य की हत्तन्त्री दूसरे के आनन्द के अवलोकन से स्वतः बजने लगती है, जिसका हृदय दीन तथा आर्त्तजनों के करुण क्रंदन से पिघल उठता है, जो जगत् के प्राणिमात्र के साथ तादात्म्य का अनुभव कर उनके हर्ष में हृष्ट, विषाद में विषण्ण, हास्य में प्रसन्न, क्रोध में दीप्त, अनुराग में अनुरक्त होने की शक्ति से युक्त होता है, वह मानव नहीं महामानव है। ऐसा व्यक्ति ही सही अर्थों में मानवीय संवेदना से युक्त होता है। ऐसे व्यक्ति के हृदय को छुद्र स्वार्थ की भावना कभी प्रेरित नहीं करती, प्रत्युत परोपकार के नाम पर उसका चित्त नाच उठता है। उसके जीवन का 'स्व' 'पर' रूप में स्वतः परिणत हो जाता है और वह मानव के चरम विकास पर पहुँच जाता है। भागवत के कृष्णा ऐसे ही महामानव थे। हृदय की संकीर्णता ही बंधन है और हृदय की उदारता ही मुक्ति है।

जो मनुष्य अपना-पराया, जाति-पाति, छुआ-छूत, धनी-निर्धन, लाभ-हानि के विवेचन में दिन काटता है, वह खुले स्थान में रहने पर भी हृदय के कारागार में निवास करता है; परन्तु जिसका हृदय 'वसुधैव कुटुम्बकम्' मंत्र की उपासना से उदात्त तथा विशाल है, वह मनुष्य मुक्ति का आनन्द प्राप्त करता है। जिस प्रकार ज्ञान योग प्राणिमात्र में एक ही परमात्मा का प्रतिपादन कर अद्वैत का उपदेश देता है, उसी प्रकार प्राणिमात्र में रागात्मिका वृत्ति का प्रतिपादन भी भावयोग की चरम सीमा है। इस उदात्त भावयोग की सिद्धि मानवीय संवेदना के द्वारा ही होती है।

सन्दर्भ सूची

1. चिन्तामणि भाग-1,संस्करण 1990 पृष्ठ 113
2. अरस्तु—पोलिटिक्स, खण्ड 3, अध्याय 3

SHODH CHETNA – YEAR-3 **ISSN : 2350-0441**
(JAN. TO MARCH, 2017) VOL. 1

यजुर्वेदेऽग्निपरकशब्दानां निर्वचनादिविवेचनम्

❑ **डॉ. सूर्यनारायण गौतमः 'वेदाचार्यः***

शोध सारांश

आधुनिको युगो वैज्ञानिक युगः। अस्मिन् युगे इन्धनस्यातिमहत्त्वम्। इन्धनेन अग्निर्जायते। नहि तादृशं कर्म यत्र विज्ञानं नोपेक्षेत। मनने, भाषणे, पठने, यातायाते, संबादपेषणे, चिकित्साशास्त्रे भवननिर्माणे, वैज्ञानिकानुसंधाने, युद्धे, विलासिता–सामग्रीसंकलने सर्वत्र विज्ञानमपेक्षते। प्रायशो जनाः विदन्ति यदग्निशब्दस्य शाब्दिक अर्थ भवति 'आग' इति। यस्मिन् ज्वलनशीलता वरीवर्तते खलु। परञ्च वेदे बहूनि शब्दानि सन्ति येषामर्थ अग्निवाचकमेव भवति। अग्निसूक्तेषु अन्यत्रापि अन्यदेवता साहचर्येण अग्निः स्तुतः। वेदे अग्नेः यानि–यानि नामानि सन्ति तेषां तानि–तानि पृथगर्थान्यपि प्राप्यन्ते। तस्माद्ज्ञायते अग्निः न केवलं भौतिक 'आग' इति अपितु प्रकृतेः मूलशक्तिरूपेणापि स्तुतः।

सर्वविज्ञानं साम्प्रतमग्निना संचालितमस्ति। मशीन सम्बन्धि सर्वाऽऽविष्कारा अग्निसाध्या एवं वैज्ञानिकाः सर्वे यन्त्र साध्यास्ते विद्युद्यन्त्राग्निना संचालिताः भवन्ति। यथा–वस्त्र निर्माण, औषधिनिर्माण, शर्करानिर्माण, प्रभृतीनि निर्माणानि विद्युत्रूपाग्निना प्रचलन्ति। सर्वेषु क्षेत्रेषु विद्युत्रूपाग्निर्नवीनामेव सृष्टिमुत्पादयन्ति। सर्वेरेव सम्पत्यै लोके प्रतिक्षणं विद्युत्रूपाग्नेरूपयोगं क्रियते कार्यते वा। सौकर्याय सौविध्याय च विद्युत्रूपाग्नेः मानवजीवनांगत्वेन परिणतः। विद्युदाग्निना व्यजनानि (पंखा) इति संचालयन्ते। गैसाग्निना भोजनं पच्यते गृहादिक पर्यावरणम् वातानुकूलितम् एयरकण्डीशनाग्निना विधीयते। यन्त्र शालाषु (फैक्टरी) प्रभृतिषु यन्त्र गृहेषु च वस्त्रादिकं निर्मीयन्ते। भवनादयः प्रकाशयन्ते। टी.वी., रेडियो प्रभृति समाचार वाहकानि मशीनादीनि वैटरी प्रभृत्यग्निना संचालितानि जलपोत, रेल, वस, वायुयान्, ट्रैक्टर, मोटरसाइकल, स्कूटर, प्रभृतीनि आवागमन साधनानि पेट्रोल रूपाग्निना संचालितानि सन्ति। एतेषां यानानां सहायेन विपुलदूरमपि स्थानमल्पेनैव कालेन प्राप्तं पार्यते। स्थानकृतं दूरत्वं तु समाप्त मेव। विद्युतरूपाग्निा सर्वविध दैनिक जीवनोपयोगी वस्तुजातमनायासेनासाद्यते।

सिनेमा टेलीफोन ग्रामोफोन मनोरंजन साधनानि वैटरी विद्युदाग्निना वा संचालितानि सन्ति तेषां

* एसोसिएट प्रोफेसर–संस्कृत, श्री जे.जे.टी. विश्वविद्यालयः, झुन्झुनू (राज.)

सौविध्येन वयं दूरदेशस्य समाचारं श्रृणुमः। टी.वी. माध्यमेन अवलोकयामः चिकित्साक्षेत्रे एक्सरे प्रभृति साधने ज्ञातं जातम् यत् नव्या संसृष्टि समुद्भूताः। हृदयपरिवर्तनं अंग परिवर्तनं च स्त्रीपुरुषयोः लिंगज्ञानं भवति। असाध्यरागोपशमनं अश्रुतपूर्व एलक्ट्रानिक अग्निना प्रत्यक्षी क्रियते।

युद्ध सामग्री विषये एटम बम हाइड्रोजन बम मेगाटन बम ट्रैंक, मशीनगन, राडार, राकेट, प्रभृतोऽविष्काराः सन्ति। तानि सर्वाधि अग्निरूप इलक्ट्रानिक अग्निना निर्मितानि संचालितानि च सन्ति। एभिः प्रयोगैः। दूरस्थमपि नगरं देशं राष्ट्रं जलसात अग्निसात् भस्मसात् प्रलपसात् वा कर्तुं पार्यते। एतेषां युद्ध संबंधि वस्वाविष्कारात् सामान्य जन जीवनं संयतं धर्महीनं स्वास्थ्यहीनं मनोवलहीनं इच्छाशक्तिविहीनं दृश्यते। सदुपयोगैः लाभः दुरूपयोगैः हानिरेव।

सामान्य भोजनमपि अग्निना संपचति। भक्षितुं योग्यो भवति। शीतात् कम्पमानाः जनाः उष्णत्वं लभन्ते। अग्निप्रयोगे ज्ञाने च समदृष्टिस्यात् धर्मः स्यात् आस्तिक्यं स्यात् सद्वृत्ताचारणम् स्यात् परार्थ चिन्तनम् स्यात् तर्हि लाभः अन्यथा हानिः।

कर्मकाण्ड दृष्ट्या यजुर्वेदस्य निरतिशयेन उच्चतममस्थानं विद्यते। आचार्य सायणेनोक्तम् 'यजुर्वेदो भित्तिः अन्येवेदा चित्राः'' तस्मात् कर्मषु यजुर्वेदस्यभ्यर्हितत्त्वं सिद्धम्। यजुर्वेदे सर्वे वैदिक देवताः प्रतिष्ठिताः परञ्च अग्निदेवतायाः स्तुतिः सर्वत्र अधिका एव प्रतिभाति। यद्यपि सिद्धमिदं 'अग्निषोमात्मकं जगत्' तत्र अग्नेरभिधानं पूर्वमेव भवति अतः कथ्यते एव अग्निः अग्रणी भवति। शुक्लयजुर्वेदे सप्तषष्ठि नामानि अग्नेः वर्णितानि सन्ति। तत्र अग्नेः नामानुसारेण कर्माण्यपि पृथक्–पृथक् सन्ति।

यजुर्वेदस्य अभ्यर्हितत्वादेव प्रामुख्येन उव्वट, महीधर, महर्षि दयानन्द स्वामिनः अन्ये च बहवः आचार्यः भाष्याणि कृतानि। परञ्चात्र तु केवलं उपरोक्त त्रयाचार्याणामाचायाणां मतानुसारेण अग्नेः नामानि तथा च कर्माण्यपि उदाहृतानि सन्ति। यथा–

व्रतपतिः[1]**–उव्वटः**–व्रतस्यपतिः व्रतपतिः, व्रतं सत्यादिकं तस्य पतिः पाति इति पतिः। **महीधरः**–अग्निर्वै देवानां व्रतपतिः। व्रतस्यानुष्ठेयस्य कर्मणः पते पालकः हे अग्ने। त्वं व्रतपति असि। **दयानन्दः**–सत्य धर्मादि पालकः।

प्रत्युष्टम्[2]**–उव्वटः**–उष् दाहे। **महीधरः** – उष् दाहे। प्रत्युष्टं प्रत्येकं दग्धम्। **दयानन्दः**– निश्चयेन निर्मूल करणीयम्। **वह्नि**[3]**–उव्वटः**–अग्निः, वह्निर्वोढा वह प्रापणे वहतीति वह्निः। **दयानन्दः**–यथायोग्यं प्रापकः। सुख प्रदाता वा।

धूरसि[4]**–उव्वटः**–अग्निर्वा एष धूर्यः। धुर्वतेर्वध कर्मणः। धुर्वण क्रिया निमित्तम्। **महीधरः**–धूरसि हिंसकोऽसि। तुर्वी, धुर्वी, दुर्वी, इत्यादि हिंसार्थाः। **दयानन्दः**–दोष नाशकः जगद्रक्षकश्च।

आमादम्[5]**–उव्वटः**–आममत्तीत्यामात् येनेदं मनुष्याः अनपक्वमन्नम् पश्यन्ति स उच्यते। **महीधरः** –आमात् आममपक्वमत्तीत्यामात लौकिकोऽग्निः। **दयानन्दः**–अपक्व पदार्थ पाचयिता।

क्रव्यादः[6]**–उव्वटः**–येन पुरुषं दहन्ति स क्रव्याद्। **महीधरः**–शव दाहे क्रव्यं मांसमत्तीति क्रव्याद् चिताग्निः। **दयानन्दः**–पक्वपदार्थ परित्याग पूर्वकम्।

खरेष्ठः[7]**–उव्वटः**–आह्वनीयाख्ये खरे स्वं गतिं ददाति तत्र अधि उपरि तिष्ठतीति खरेष्ठः। **महीधरः** –आ समन्तात् खरे कठिने वृक्षे तिष्ठतीति आखरेष्ठः। **दयानन्दः**–वेद्याः रचनायां स्थिरः यज्ञः।

वीतिहोत्रः[8]**–उव्वटः**–वीतिः अभिलाषः होतृकर्मणि यस्य स वीतिहोत्रः। यद्वा विविध ईति गतिर्होतृ प्रशास्रादिषु होत्रासु यस्य स वीतिहोत्रः। **महीधरः** –वीत्ये समृद्धै होत्रं होमो यस्य स चीति होत्रस्तं यत्र होमे कृते समृद्धिं प्राप्तिःस्यादित्यर्थ। **दयानन्दः**–अग्निहोत्रादि यज्ञानां विषये कक्ता।

कविः[9]**–उव्वटः**–क्रान्तिदर्शनः। क्रान्तिर्शिनः। **दयानन्दः**–पदार्थेषु अनुक्रमाद्दृष्टिगोचरः।

वाजजितः[10]**–उव्वटः**–वाजस्यान्नस्य जेतः अन्नस्य जेतारः वाजमन्नं जयतीति वाजजित्। **दयानन्दः**–उत्कृष्टमन्नं प्रापको भूत्वा पदार्थान् शोधकः।

वेर्दूत्यम्[11]**–उव्वटः**–अग्निः, दौत्यः, कर्मम् जानाति। **दयानन्दः**–दौत्य कर्म प्राप्य।

गृहपतिः[12]**–उव्वटः**–अग्निः गृहाणां पतिः, गृहाणां पालयित्रा। **महीधरः**–अस्मदीय गृहस्य पालकः हे अग्ने! **दयानन्दः**–गृहाणां पालकः।

कव्यवाहन[13]**–उव्वटः**–कवयः क्रान्तिदर्शनः पितरस्तेषां सम्बन्धि हविः कव्यम्। तद्वोढव्यं यस्यायमधिकारः स कव्य वाहनः। **दयानन्दः**–विदुषां हितसाधकः कर्माधिकार प्रदायकः।

जातवेदा[14]**–उव्वटः**–जातप्रज्ञानाय जातवेत्ति वेदयति वा जातवेदास्तस्माज्जातवेदा। **दयानन्दः**–सर्वेषु पदार्थेषु विद्यमानः सन्।

गौः[15]**–उव्वटः**–गन्ताभवति, गच्छतीति गौः यज्ञ निष्पत्तये तत्तद्यजमान गृहेषु गन्ता। **दयानन्दः**–गोलाकृति रूपा पृथ्वी।

पृश्निः[16]**–उव्वटः**–पृश्निः नानारूपः, लोहित–शुक्लादिव बहुविध ज्वालोपेतः। **दयानन्दः**–अन्तरिक्षे।

पतंगः[17]**–उव्वटः**–पतन्गच्छतीति पतंगोऽग्निः स ह्यरण्याः पतन गार्हपत्यभावं गच्छति। **दयानन्दः**–संचरणशीलत्वाद् प्रकाशयुतोऽग्निः।

ज्योतिः[18]**–उव्वटः**–योऽयमग्निर्देवः स एव ज्योतिदृश्यमान ज्योतिः स्वरूपम्। यच्चेदं दृश्यमानं ज्योतिः तदेवाग्निर्देवः। **दयानन्दः**–शिल्प विद्यादि दाता।

सजूर्देवः[19]**–उव्वटः**–सजूवर्देवोऽग्निः उच्यते 'जुषी प्रीतिसेवनयोः सजूरिति वेति जुहोतित्यनुवर्तते। **दयानन्दः**–तुल्य प्रकाशप्रदाता।

मूर्धा[20]**–उव्वटः**–अहनि आदित्यातमा द्युलोकस्य मूर्द्धा भवति। दिवो मूर्द्धा द्युलाकस्य सिरः समानः यथा शिरः शारीरस्योपरि वर्तते तथायमग्निहनि स्वतेजसा आदित्ये प्रविष्टत्वादादित्य रूपेण द्युलोकस्योपरि वर्तते। **दयानन्दः**–सर्वेषामूर्द्धभागे विराजमानः।

इन्धानः[21]**–उव्वटः**–इन्धी दीप्तौ दीप्यतीतीन्धानो अग्निः। **दयानन्दः**–वयम् प्रज्वलितं कृतवन्तः।

तनूपा[22]**–उव्वटः**–तनू शरीरं तस्य गोपायिता भवति। तनूं पाति पालयतीति तनूपाः। **दयानन्दः**–शरीरं पाति इति तनूपाः।

विक्षुः[23]**–उव्वटः**–विक्षुः प्रजा भवति प्रजास्वग्निः विक्षु प्रजासु अग्नि जठराग्निम्। **दयानन्दः**–प्रजासु।

ऋषिपुत्रः[24]**–उव्वटः**–ऋषीणां विदुषामग्नि–होत्रिणां पुत्रः, ऋषीणां पुत्रः, ऋत्विजो वा। **दयानन्दः**–वेदादिशास्त्राणां यथार्थ ज्ञातानां पुत्रः।

अजः[25]**–उव्वटः**–अज् गति क्षेपणयोः अजनः अयने वा हवनीयादि भावेन अजति गच्छति। अजति आहवनीय रूपेण यज्ञप्रदेशे गच्छतीत्यजः। यद्वा परब्रह्मत्वमुप चर्यते। न जायत इत्यजः। **दयानन्दः**–अजन्मा। (हिन्दी भाषायाम्)

वैश्वानरः[26]**–उव्वटः**–यं वैश्वानरम् ऋते यज्ञे आजातमुत्पन्नम् अरणिद्वयम् अग्निमाहुः। यं च कविः क्रान्ति दर्शनमाहुः। सम्राजं सम्यगैश्वर्येण युक्तमाहुः। यं च अतिथिं जनानां आहुः। विज्ञायते हि अग्निरतिथि रूपेण गृहान्प्रविशति तस्मात्तस्योदकमाहरन्ति। यो अमुक गुणो वैश्वानरस्तमासन्। अपि वा देवा ईदृशमग्निं जनयन्त उत्पादितवन्तः। किं भूतं? दिवोमूर्धानं द्युलोकस्य शिरोवदुन्नत प्रदेशे सूर्य रूपेणावस्थाय भासकम् तथा पृथिव्या अरतिम् रतिरूप रतिस्तद्वहितम्। नहि पृथिव्या उपरि कदाचिदप्यग्नि रूपरमते किंतु दाहपाक प्रकाशैः सर्वाननुग्रह्य सर्वदा वर्तते एव। यद्वा पृथिवि शब्देनान्तरिक्षमुच्यते आकाशं आपः पृथिवीत्यन्तरिक्ष नाम सुपठितत्वात् पृथिव्या

अन्तरिक्षस्यरतिमलमतिं पर्याप्तमतिं पूरकमित्यर्थः। तत्र स्थितौ यथाकालं वृष्ट्या भूतानि पुष्णाति तथा वैश्वानरः विश्वेभ्यः सर्वेभ्यो नरेभ्यो हितो वैश्वानरस्तम्। जठराग्नि रूपेणान्नपाचकत्वात् तथा ऋते यज्ञे यज्ञनिमित्तं आजातम् उत्पन्नमरणिद्वयात्।

धाता[27]**–उव्वटः**–धारणत्वात् धाता सविता प्रजापतिः अग्निः त्वष्टा विष्णुः एते षट् निधिना देवाः।

जक्षिवान्–उव्वटः–जक्षिः घस्लृ अदने जक्षिवान्। **वर्चस्विन्–उव्वटः**–ब्रह्मवर्चसेन संयुक्तः विशिष्ट तेजो युक्तः। **सुमनाः–उव्वटः**–शोभनं भवति शोभनमनस्कं करोति करुणार्द्र चित्तो भवति। **नेता–उव्वटः**–नयतीति नेता, अग्निर्नेता येषां देवानां ते अग्निनेत्राः। अग्निर्नेता येषां ते अग्नि नेत्रास्तेभ्यः। **तपोजाः–उव्वटः**–तपः शब्देनाग्निः उच्यते। तस्माज्जायते 'अग्नेर्वै धूमो जायते' तपसोऽग्नये जातास्तपोजा अग्नेव धूमो जायते धूमादभ्रमाद् वृष्टिरग्नेर्वा एता जायन्ते तस्मादाह तपोजाः। **अद्रिजाः–उव्वटः**–यश्च अद्रौ पाषाणे अग्निरूपेण जायते इत्याद्रिजाः। **जर्भुराणः–उव्वटः**–अग्निर्वै देवानां मृदु हृदयतमः। जम्भतीति जर्भुराणः। इत्यादि गुणाख्यापनार्थम्। नाभिमृषे तन्वाजर्भुराणः। न चाभिमर्शणाय भवति तन्वा शरीरेण ज्वालालक्षेन जर्भुराणः। **वाजपतिः–उव्वटः**–वाजं अन्नं भवति तस्य पालयिता पतिः वाजपतिः।

आशुःशुक्षणिः[28]**–उव्वटः**–अग्निः आशुः शीघ्रं शुचा दीक्षा क्षिणोति हिनस्ति सनोति सं भजते वा आशुशुक्षणि रुच्यते। आद्रां भूमिं शीघ्रमेव शोषयित्वा, यद्वा आषु छिद्रं शुचा दीप्त्या क्षणोति हन्तितमः सनोति संभजते वा आशु शुक्षणिः।

शुचिजिह्वः[29]**–उव्वटः**–शुचिर्जिह्वा यस्य स शुचि जिह्वः योऽयं नाना दैवत्यानि हवींषि अभ्यवहरति–न चोच्छोसयति। स शुचिजिह्वः। शुचिः शुद्धा होम योग्या जिह्वा ज्वाला यस्य सः नाना देवत्या हवीस्यभ्य व हरन्नप्युच्छिष्टं न करोति इति भावः।

सुरेताः[30]**–उव्वटः**–रेतो वीर्यः सुरेताः शोभन रेताः रेत, पुत्र, सुरेता ह्येषा यस्यायमग्निः। शोभारेतोऽग्नि–रूपम् यस्याः स तस्मादमृतत्वम् युक्ततम्।

पावकः[31]**–उव्वटः**–पुनातीति पावकः।

विभावशुः[32]**–उव्वटः**–विभतधनश्च, विभा दीप्तिरेव वसुधनं यस्य सः विभावसुः।

नृचक्षाः[33]**–उव्वटः**–नृन चष्टा इति नृणां सुभाशुभ कर्म दृष्टा।

पावकवर्चा[34]**–उव्वटः**–पावक शक्तिः, पावकं शोधकं वर्चो दीप्त शक्तिर्यस्य सः।

शुक्रवर्चा[35]**–उव्वटः**–अग्निः शुक्रशक्तिः शुक्रं शुक्लं निर्मलं वर्चो यस्य सः शुक्रवर्चः।

अनूनवर्चा[36]**–उव्वटः**–अनूनं वर्चाश्च अपरिहीण शक्तिः सन् अनून शक्तिर्वा सन्। अनूनमहीनं वर्चो यस्य पूर्ण शक्तिः।

श्रुत्कर्णः[37]**–उव्वटः**–शृणोत्यावाहनम् श्रुत्वा चानुतिष्ठति यः श्रुत्कर्णः। शृणुत इति श्रुतौ, श्रुतौ कर्णौ यस्य तम्। यद्विज्ञाप्यते तत्सत्यमेव कर्णाभ्यां श्रुत्वा संपादयतीर्त्यः। **सुक्षितयः–उव्वटः**–शोभन निवसनाः, क्षितयो निवास याभ्यां ताः स्वर्गादि शुभस्थान प्रदा इत्यर्थः। **सम्राटः–उव्वटः**–संगत राज्य भावः सन् एक एव सहायः सम्यक् राजमानः शोभमानः भूतस्य भव्यस्य सम्राडीश्वरीति।

भ्रमासः[38]**–उव्वटः**–भ्रमणा वातोद्धता ज्वाला समूहाः।

धक्षिः[39]**–उव्वटः**–धक्षि दह् भस्मीकरणे।

भ्रजश्छन्दः[40]**–उव्वटः**–अग्निवै भ्रजश्छन्दः, भ्राजते दीप्यतीति भ्रजोऽग्निः। अग्निर्वै भ्रजश्छन्दः इति श्रुतेः।

रातिनस्पतिः[41]**–उव्वटः**– वाजस्यान्नस्य रातिनश्च पतिरधिपतिः। अग्निर्हि सर्वेषां धनानां प्रधानं दृष्टादृष्ट साधनं हि रातिनः शत संख्यावतो वासस्यान्नस्य पतिः स्वामी। अनेकान्न प्रदः इत्यर्थः। अग्निर्हि सर्व धनानां प्रधान धनं दृष्टादृष्ट साधनत्वात्।

बोध्यः[42]–उव्वटः–योयमग्निः अबोधि प्रतिबुध्यते कर्माणि स्वमधिकारम्। जनानां ज्ञानश्रद्धाद्विजतर्पण सत्यादि संपन्नानामग्निहोत्रिणां समिधां समिन्धते। नाग्निः प्रज्येबोधि प्रतिबुद्ध्यते।

जागृविः[43]–उव्वटः–जागृविः जागरणशीलः अग्निः नष्टज्ञानः अग्निः कर्मणि सावधानः।

विश्वदूतः[44]–उव्वटः–विश्वस्य दूतः सर्वस्य यजमानस्य सर्वस्यं जगतो वा दूतवत्कार्यकारिणो अग्निः सर्वस्वं हि गृहे दाहपाकादि कार्य करणत्वात् विश्वदूतः।

नृषदः[45]–उव्वटः–नृषु मनुष्येषु सीदतीति नृषत् तस्मै नृषदे। नृषु मनुष्येषु जठराग्नि रूपेण तिष्ठतीति नृषत्।

गन्धर्वः[46]–उव्वटः–गौर्वाचो धारयिता पृथिव्या वा धारयिता गन्धर्वोऽग्निः, गानाद्वा गन्धर्वोऽग्निः। अथो आहुः गन्धर्वो अग्निरेवास्यै पृष्ठे सर्वकृत्स्नो मन्यमानोऽगायत्।

अग्निः[47]–उव्वटः–अग्निः पृथिवीस्थो वह्निः, अग्निः चीयमानो वह्निरग्निष्टोमो वा।

नाराशंसा[48]–उव्वटः–नरा अस्मिन्नासीनाः शंसन्तीति। नरैर्ऋत्विग्भिरा समन्तात् शस्यते शस्तैः स्तूयते स नराशंसः।

इडस्पदः[49]–उव्वटः–हव्यवाहं हविषा वोढारम् हव्यवाहः।

सपत्नहा[50]–उव्वटः–सपत्नहा शत्रु विनाशकः। शत्रून्हन्तीति सपत्नहा।

ऊर्जोनपात्[51]–उव्वटः–ऊर्ज शब्देनायं उच्यते ताभ्यः ओषधिः वनस्पतयो जायन्ते तेभ्यः एव जायते इत्याषां पौत्रोऽग्निः।

शमितारः[52]–उव्वटः–हविषः संस्कर्तारः।

वनर्षदः[53]–उव्वटः–वनसदः वने काष्ठे सीदन्तीति वनसदः।

वातजूताः[54]–उव्वटः–वातेनजूतं गमनं प्रसारो यस्य स वातजूतः।

द्रवणस्युः[55]–उव्वटः–द्रविणो धनमिच्छति इति द्रविणस्युः।

रिप्रवाहः[56]–उव्वटः–रिप्रमिति पापनाम् रिप्रं पापं वाहयति नाशयति रिप्रवाहः।

जुहुराणः[57]–उव्वटः–हुर्च्छा कौटिल्ये, प्रतिबन्ध–कमेनः।

इत्यनेन अग्निपरकशब्दानां निर्वचनेन वेदे अग्निशब्दस्य स्पष्टार्थं ज्ञायते। येन वेदार्थकरणे सौकर्य्यं भजते। यतो हि वेदज्ञानादेव विज्ञान–ज्ञानस्यूर्जाप्रवहति। 'वेदः शिवः शिवो वेदः वेदाध्यायी सदा शिवः' इति महावाक्यस सार्थकता तदैव जायते यदा वेदज्ञाने जनाः पारांगता भवन्ति। अर्थज्ञानविना वेदाध्यनं अफलत्वमेव ददाति। फलप्राप्तये तु अर्थपरिज्ञानमावश्यकम्।

सन्दर्भः–

1. शु.य.(1.5)
2. शु.य.(1.7)
3. शु.य.(1.8)
4. शु.य.(....)
5. शु.य.(1.17)
6. शु.य.(1.17)
7. शु.य.(2.1)
8. शु.य.(2.4)
9. शु.य. (2.4)
10. शु.य (.2.7)
11. शु.य. (2.9)
12. शु.य. (2.27)
13. शु.य. (2.29)
14. शु.य. (3.2)
15. शु.य. (3.6)
16. शु.य. (3.6)
17. शु.य. (3.6)
18. शु.य. (3.9)

19. शु.य. (3.10)
20. शु.य. (3.12)
21. शु.य. (3.18)
22. शु.य. (4.17)
23. शु.य. (4.31)
24. शु.य. (5.4)
25. शु.य. (5.33)
26. शु.य. (6.21
27. शु.य. (6.24
28. शु.य. (11.27)
29. शु.य. (11.26)
30. शु.य. (12.111)
31. शु.य. (12.24)
32. शु.य. (12.31)
33. शु.य. (12.48)
34. शु.य. (12.107)
35. शु.य. (12.107)
36. शु.य. (12.107)
37. शु.य. (12.111)
38. शु.य. (13.10)
39. शु.य. (13.12)
40. शु.य. (15.5)
41. शु.य. (15.21)
42. शु.य. (15.24)
43. शु.य. (15.27)
44. शु.य. (27.3)
45. शु.य. (27.3)
46. शु.य. (17.32)
47. शु.य. (18.22)
48. शु.य. (20.26)
49. शु.य. (22.17)
50. शु.य. (27.3)
51. शु.य. (27.44)
52. शु.य. (28.33)
53. शु.य. (33.1)
54. शु.य. (33.2)
55. शु.य. (33.9)
56. शु.य. (35.19)
57. शु.य. (40.1)

SHODH CHETNA – YEAR-3 ISSN : 2350-0441
(JAN. TO MAR., 2017) VOL. 1

भारत में हरित क्रांति के प्रभाव एवं दूसरी हरित क्रांति की आवश्यकता

❐ शिव प्रसाद विश्वकर्मा*
❐ एस. पी. वर्मा**
Corresponding Authors : drspverma_kadc@rediffmail.com

शोध सारांश

भारत में साठवें दशक के उत्तरार्ध एवं सत्तरवें दशक के प्रारम्भ में हरित क्रांति का प्रादुर्भाव हुआ जिससे आगामी वर्षों में देश के अन्न उत्पादन में न केवल आत्मनिर्भर हुआ बल्कि कई देशों को खाद्यान्न का निर्यात भी करने लगा। अनेक फसलों की पैदावार में बेतहाशा वृद्धि हुई। औसतन फसलों की पैदावार में दो से चार गुना बढ़ोत्तरी हुई। किन्तु यह क्रान्ति खाद्यान्नों के अधिक उत्पादन हेतु प्राकृतिक संसाधनों जैसे—जल स्रोत, भूमि, बीज आदि के दोहन तथा रासायनिक उर्वरकों एवं संश्लेषित कृषि रसायनों के अन्धाधुंध प्रयोग पर निर्भर होने के कारण कृषि के संतुलित एवं स्थायी विकास देने में सफल नहीं हो सकी। यही नहीं वर्ष 1990 से 2007 तक देश का खाद्यान्न उत्पादन 1.2 प्रतिशत की दर से घटा जबकि जनसंख्या वृद्धि 1.9 प्रतिशत दर्ज की गई। वर्ष 1990-91 में प्रतिव्यक्ति/दिन खाद्यान्न उपलब्धता 486 ग्राम एवं दाल उपलब्धता 42 ग्राम थी जो कि वर्ष 2005-06 में घटकर क्रमशः 412 ग्राम एवं 33 ग्राम हो गयी। देश की बढ़ती जनसंख्या तथा उसकी खाद्यान्न एवं पोषण सुरक्षा को दृष्टिगत रखते हुए कृषि में द्वितीय हरित क्रान्ति की आवश्यकता तेजी से महसूस की जाने लगी है जो जलवायु परिवर्तन के अनुरूप हो तथा कृषि के संसाधनों के न्यायसंगत उपयोग पर आधारित एवं आर्थिक दृष्टि से लाभकारी एवं टिकाऊ हो। दूसरी हरितक्रांति में धान, गेहूँ, मोटे अनाज, दलहनों तथा तिलहनों पर जोर देना होगा। इसके लिए देश के पूर्वी राज्यों में अपार सम्भावनाएँ हैं।

हमारा देश साठवें दशक के उत्तरार्ध एवं सत्तरवें दशक के प्रारम्भ में कृषि में हरित क्रान्ति का गवाह रहा है। इस हरित क्रान्ति में अधिक उपज देने वाली प्रजापतियों का प्रयोग, रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग तथा सिंचाई के संसाधनों में तेजी से विस्तार की अग्रणी भूमिका रही है। इस क्रान्ति के कारण देश भुखमरी की स्थिति से उबरकर खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर बना। हरित क्रान्ति का प्रादुर्भाव अमेरिका के वैज्ञानिक नार्मन अर्नेस्ट बोरलाग की अगुआई में कृषि में हुए

* कुलभास्कर आश्रम पी.जी. कालेज, इलाहाबाद-211001
** कुलभास्कर आश्रम पी.जी. कालेज, इलाहाबाद-211001

शोध, विकास एवं तकनीकी हस्तान्तरण के द्वारा सम्भव हो पाया। इस प्रयास में अपने देश के महान कृषि वैज्ञानिक डॉ. एम.एस. स्वामीनाथन का अविस्मरणीय योगदान रहा। अधिक उपज वाली उन्नतशील किस्मों का विकास तथा आधुनिक कृषि तकनीकियों का किसानों द्वारा प्रयोग करने एवं सरकार द्वारा इनके प्राथमिकता देने के कारण देश के हजारों लोगों को भुखमरी की स्थिति से बचाया जा सका। मैक्सिको एवं भारतीय उपमहाद्वीप में खाद्यान्न आपूर्ति सुनिश्चित कर विश्व शांति स्थापित करने में किये गये महत्त्वपूर्ण योगदान के लिए वर्ष 1970 में नार्मन बोरलाग को शान्ति के क्षेत्र में नोबेल पुरस्कार दिया गया।

सारणी (1)

अखिल भारतीय स्तर पर खाद्यान्न, सिंचित क्षेत्र एवं उर्वरक उपभोग

वर्ष	खाद्यान्न उत्पादन				कुल उर्वरक उपयोग नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाष (हजार टन में)
	क्षेत्रफल (मि0हे0)	उत्पादन (मि0टन)	उत्पादकता (प्रतिषत)	सिंचित क्षेत्र (प्रतिषत)	
1951—52	96.96	51.99	536	18.4	65.6
1963—64	117.84	80.15	680	19.8	543.2
1989—90	126.77	171.04	1349	35.0	11568.2
1999—00	123.10	209.80	1704	43.9	18069.7
2000—01	121.05	196.81	1626	43.4	16702.3
2001—02	122.78	212.85	1734	43.0	17359.7
2002—03	113.86	174.77	1535	42.8	16094.1
2003—04	123.45	213.19	1727	42.2	16799.1
2004—05	120.0	198.36	1652	44.2	18398.3
2005—06	121.60	208.60	1715	45.5	20340.3

यह क्रान्ति मुख्य रूप से अधिक अन्न उत्पादन पर आधारित रही जिसमें फसलों की उत्पादकता में औसतन दो से चार गुना बढ़ोत्तरी हुई और देश ने कृषि क्षेत्र में ऐतिहासिक सफलता प्राप्त की जिससे देश भुखमरी की स्थिति से निपटने में पूरी तरह सफल रहा।

इस सफलता ने देश को कृषि विश्व स्तर पर एक नई पहचान दिलाई जिसमें वर्ष 1950-51 से 2006-07 के बीज औसत वार्षिक कृषि उत्पादन दर 2.5 प्रतिशत दर्ज की गई जो कि जनसंख्या वृद्धि दर 2.1 प्रतिशत से अधिक रही। दुर्भाग्य से वृद्धि दर की रफ्तार लम्बे समय तक टिक नहीं पाई और वर्ष 1989-90 से अधिकांश फसलों के उत्पादन दर में गिरावट

शुरू हुई और यह गिरावट औसतन 0.26 प्रतिशत की दर से अंकित की गई। यहाँ तक कि प्रति व्यक्ति अनाज की खपत जो वर्ष 1990-91 में 486 ग्राम थी। वर्ष 2005-06 तक घटकर 412 ग्राम इसी प्रकार उक्त अवधि में दाल की प्रति व्यक्ति खपत 42 ग्राम से घटकर 33 ग्राम प्रति दिन पर सिमट गयी। हरित क्रान्ति वाले प्रदेशों में कृषि अब थकान महसूस करने लगी है और देश के सफल घरेलू उत्पाद में कृषि क्षेत्र का योगदान जो 1950-51 में 48.7 प्रतिशत था वह 1996-97 में घटकर 24.4 प्रतिशत हो गया तथा वर्ष 2007 तक आते-आते 18.7 प्रतिशत हो गया। जैसा कि कहा जाता है कि ''किसी सफलता प्राप्ति के लिए कुछ बलिदान करना पड़ता है।'' भारतीय कृषि भी इसका अपवाद नहीं बनी। सफलता की इस यात्रा के उत्तरार्ध में यह महसूस किया जाने लगा कि कृषि के इस विकास में कुछ क्रिया-कलाप या तो समय की परिस्थितियों के अनुसार मजबूरी में अथवा कुछ अदूरदर्शिता के कारण किये गये जिससे कृषि विकास के स्थायित्व पर खतरा पैदा हुआ। इस अवधि में हुए शोध एवं अध्ययनों से पता चला कि हरित क्रान्ति द्वारा अस्थायी कृषि विकास की मुख्य कमियाँ निम्न प्रकार रही—

1. इस अवधि में अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लालच में कृषि में संश्लेषित उर्वरकों एवं कृषि रसायनों का अंधाधुंध प्रयोग, सघन खेती पद्धति अपना कर जलस्रोतों का अत्यधिक दोहन हुआ।

2. देश की परम्परागत फसलों एवं उनकी प्रजातियों को स्थान पर अधिक लाभ वाली फसलें एवं उनकी उन्नतशील प्रजातियों की खेती की जाने लगी जो अधिकाधिक रासायनिक उर्वरकों, कृषि रक्षा रसायनों, अधिक जलमांग वाली थी।

3. हरित क्रान्ति के कारण बाद में दूसरी पीढ़ी की समस्याओं जैसे भूमि से पोषक, तत्त्वों का ह्रास, मृदा संरचना एवं मृदा गठन में खराबी, जल स्रोतों का सिमटना (भू-जल, स्तर में गिरावट, लवणीयता, जलमग्नता एवं कृषि लागत में बढ़ोत्तरी पैदा हुई। (सिंह, 2005)

4. कुछ चुनिन्दा लाभकारी फसलों जैसे गेहूँ एवं धान के क्षेत्र का तेजी से विस्तार हुआ और दलहन एवं तिलहन फसलों के क्षेत्र निरन्तर घटते जाने से इन फसलों के उत्पादन पर बुरा असर पड़ा जो घरेलू पोषण असुरक्षा के रूप में सामने आया।

5. लघु एवं सीमान्त किसानों को हरित क्रान्ति का समुचित लाभ नहीं मिला। हरित क्रान्ति देश के मात्र कुछ सिंचित क्षेत्रों जैसे पंजाब, हरियाणा एवं पश्चिमी उ.प्र. एवं कुछ फसलों तक सीमित रही जबकि शेष असिंचित/वर्षा धारित कृषि क्षेत्र इस क्रान्ति से वंचित रहा। (शर्मा, 2006)

6. विज्ञान की नवीन तकनीकी एवं लागतों के प्रयोग के बावजूद कीट एवं रोगकारी जीवों की नई-नई किस्में विकसित हुईं जिसके नियंत्रण में कठिनाई हुई तथा फसलों के उत्पादन में ठहराव आ गया।

7. हरित क्रान्ति वाले सिंचित क्षेत्र थकान का अनुभव कर रहे हैं एवं कुछ नई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है; जैसे—

(अ) सघन खेती पद्धति अपनाने से जलस्रोतों का अंधाधुंध प्रयोग किया गया जिससे उनका संकुचन हुआ तथा इनके जलस्तर गिरने से सिंचाई की लागत बढ़ी, कुछ क्षेत्रों में जलमग्नता एवं भूमि की लवणीयता में वृद्धि हुई।

(ब) उर्वरकों एवं पेस्टीसाइड्स के अत्यधिक प्रयोग से भूमि एवं जल का स्वास्थ्य में गिरावट आई जिसमें मुख्य रूप से पोषक तत्त्वों का असन्तुलन, सूक्ष्म पोषक तत्त्वों की कमी एवं भूमि के अन्य गुणों में बाधा पैदा हुई।

(स) खेती की लागत में भारी बढ़ोत्तरी होने से खेती लाभांश में कमी होती गई।

(द) कीटों एवं रोगों के नियंत्रण के लिए अत्यधिक जहरीले रसायनों के अंधाधुंध प्रयोग से मित्र कीटों एवं जीवों का नाश हुआ तथा पशुओं एवं मानव स्वास्थ्य को खतरा पैदा हो गया। साथ ही कीटों एवं रोगकारी जीवों में रसायनों के प्रति सहनशीलता पैदा हो गई।

(य) सरकार की कृषि नीति में कमी के चलते उपलब्ध बाजारू ढाँचे एवं बिचौलियों के कारण हरित क्रान्ति का पूरा लाभ कृषकों को नहीं मिल पाया।

दूसरी हरित क्रान्ति की माँग

आबादी के अनुसार विश्व के दूसरे नम्बर के देश की बढ़ती जनसंख्या वृद्धि दर, इसकी खाद्य सुरक्षा, कृषि संसाधनों पर बढ़ता दबाव निरन्तर घटती योग्य भूमियाँ एवं खेती की बढ़ती लागत तथा जलवायु परिवर्तन जैसी चुनौतियों के दृष्टिगत सभी वैज्ञानिक एक मत हैं कि देश में दूसरी हरित

क्रान्ति की सख्त आवश्यकता है। इस हरित क्रान्ति का विवेकपूर्ण एवं दूरदर्शीपूर्ण एवं क्रियान्वयन इस प्रकार किया जाए जिसमें पूर्व हरित क्रान्ति की कमियों को दूर करते हुए भविष्य की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके तथा कृषि विकास में स्थायित्व आ सके।

प्रथम हरित क्रान्ति के अन्त तक उपरोक्त समस्याओं एवं चुनौतियों के अतिरिक्त कुछ कृषिगत बाधाएँ भी उत्पन्न हुई हैं। जिनका द्वितीय हरित क्रान्ति के अन्तर्गत समाधान नितान्त आवश्यक है। द्वितीय हरितक्रान्ति की बाधाएँ निम्नलिखित हैं—

1. बड़ी जीवों के छोटी जोतों में विखण्डन के कारण जोतें अलाभकारी सिद्ध हुईं। यह युवाओं के गाँव से पलायन का एक प्रमुख कारण बना।

2. खेती की उपजाऊ भूमियों का अन्य कृषि आधारित उद्यमों जैसे औषधीय एवं सगंध फसलों की खेती, फूलों की खेती, ऊर्जा फसलों की खेती आदि में प्रयोग।

3. कृषि भूमियों का आवासीय एवं औद्योगिक क्षेत्रों में प्रयोग।

4. भूमि की बढ़ती कीमतों के कारण अकृषिगत क्षेत्रों के लिए तेजी से बिक्री।

द्वितीय हरित क्रान्ति की आवश्यकता इसलिए महसूस की जा रही है जिससे प्रथम हरित क्रान्ति के दौरान उत्पन्न उपरोक्त बाधाओं, समस्याओं एवं चुनौतियों का सामना करते हुए भविष्य की कृषि आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके तथा एक सम्पोषणीय कृषि विधा का विकास सम्भव हो सके। द्वितीय हरित क्रान्ति के अन्तर्गत निम्नलिखित बिन्दुओं पर विशेष ध्यान देना होगा—

1. नीतिगत मुद्दों का समाधान

(अ) कृषि जोतों का छोटी जोतों में विखण्डन को रोकने के लिए कानून का निर्माण करना।

(ब) वनों की सुरक्षा के तर्ज पर घटती खेती की भूमियों के नियंत्रण के लिए कृषि के अन्तर्गत न्यूनतम प्रतिशत का कानून निर्धारण किया जाये।

(स) किसानों की उपज क्रय एजेन्सियों द्वारा सीधे खेतों से किया जाए।

(द) कृषि जलवायु क्षेत्र में उगायी जाने वाली फसलों के लिए 'विशिष्ट फसल जोन' घोषित कर किसानों की मदद की जाए।

2. सस्ती, सरल एवं उत्कृष्ट तकनीकी का परिशुद्धतापूर्ण प्रयोग

(अ) लघु एवं सीमान्त कृषकों को ध्यान में रखते हुए वैज्ञानिकों द्वारा सस्ती, सरल, स्थानीय आवश्यकतानुसार, सामाजिक रूप से स्वीकार्य कृषि तकनीकियों का विकास किया जाए।

(ब) द्वितीय हरित क्रान्ति तभी सफल होगी जब इसके अन्तर्गत सभी प्रकार के फसलों के साथ-साथ फल, सब्जियाँ, वनस्पतियाँ, तेल, मसाले, औषधियाँ एवं सगन्ध फसलों पर भी विशेष जोर दिया जाए।

3. अतिरिक्त संसाधन जुटाना

कृषि आधारित उद्यमों जैसे मुर्गी पालन, बकरी पालन, मत्स्य पालन, पशु पालन, मधुमक्खी एवं मशरूम उत्पादन के साथ अतिरिक्त आय प्राप्त करने के लिए स्थानीय हस्तशिल्प को भी सम्मिलित किया जाए।

4. कृषि स्थायित्व हेतु स्मार्ट तकनीकी

आधुनिक कृषि तकनीकियों उन्नत एवं गुणवत्तायुक्त बीज, विभिन्न फसलों में पोषक तत्त्वों का परीक्षण आधारित आवश्यकतानुसार संतुलित प्रयोग फसल आधारित समन्वित कीट एवं रोग प्रबन्ध के प्रयोग से पर्यानुकूल स्थायी कृषि का विकास होगा।

5. वित्तीय संस्थानों की स्थापना

कृषिकों की वित्तीय सहायतार्थ स्थानीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर स्वतंत्र कृषि बैंक स्थापित किये जाएँ।

6. जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को दृष्टिगत रखते हुए द्वितीय हरित क्रानित की संकल्पना की जाए तथा दूरदर्शी सोच के साथ स्थायी विकास हेतु परियोजनाओं का निर्माण एवं क्रियान्वयन किया जाए।

द्वितीय हरित क्रान्ति के लिए उपयुक्त क्षेत्र एवं फसलें

वैज्ञानिकों का यह मत है कि देश में द्वितीय हरित क्रान्ति के लिए देश का पूर्वी भाग जैसे आसाम, पं. बंगाल,

उड़ीसा, बिहार, छत्तीसगढ़, पूर्वी उ.प्र. एवं झारखण्ड राज्य सर्वाधिक उपयुक्त होंगे क्योंकि यहाँ भूमि की उर्वरता, सिंचाई हेतु जल तथा सौर विकिरण की पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है।

इन क्षेत्रों में कुछ विशेष फसलों जैसे गेहूँ, धान, मक्का, मोटे अनाज, दलहनों तथा तिलहनों की उपज बढ़ाने को पर्याप्त सम्भावनाएँ हैं।

निर्देश

खजूरिया मिनाक्षी तथा खजूरिया, आर.के. (2010) Kurukshetra, Min of I and B Govt. of India, New Delhi, 18(5) : 19-22

नन्देहा, के.एल. (2011) Introductory Agriculture Kushal Publication and Distributors Varanasi, 44-120

जगपाल शर्मा (2006) Fundamental Approaches in Sustainable Agriculture.

सिंह, रूम, Winter School Manual or Management of Soil Quality for Sustainable Agriculture (2005), 49-53

SHODH CHETNA – YEAR-3
(JAN. TO MAR., 2017) VOL. 1 ISSN : 2350-0441

Intellectual Proper Right in Developing Countries

❐ **Dr. Sheetla Prasad Verma***

Corresponding Authors : drspverma_kadc@rediffmail.com

ABSTRACT

This review paper focuses the present status of intellectual property right in developing countries and strengthening IPR regimes in developing countries particularly in India. We know that India succumbled to the International pressure to sign the TRIP agreement in 1994. But between 1994-97, it did not make much to change the Indian Patent Act 1970 to incorporate the provisions of the new IPR treaty. PM Atal Bihari Vajpayee in January, 1999 stated, "I complement the CSIR for creating an intellectual climate supportive of early passage of the bill to amend the Indian Patent Act." It also be attentioned that number of enabling provisions have been made to facilitate filing of patent applications and their subsequent administration. This paper will provide update information regarding IPR regimes.

Keywords: IPR, TRIPS, Indian Patent Act, etc.

Introduction

The increasing importance or IPR in the innovation system is reflected in the growing number of patents grants and applications in OECD (Organization of Economic Cooperation & Development) countries. Grants by the US Patent and Trademarks office grew from 62,000 in 1980 to 90,000 in 1990 and 1,66,000 in 2001; applications to the European Patent Office jumped from 70,000 in 1990 to 1,29,000 in 2000. Litigation activity related to patents and copyrights has been expanding, at least in the US. Firms earn increased revenues from licenses. Business surveys and press records show that protection of technology and knowledge at large is a major concern to businesses, which devote more resources to what they now consider as a strategic necessity.

Some of the reasons for this expansion of IP related activities have been identified. They are concerned with new patterns of technical change, of public policy and with globalization.

- The 1990s have experienced an increase in business-funded research, giving rise to an acceleration of innovation, particularly in certain areas (ICT & Biotechnology): firms naturally seek protection for these inventions.
- Innovation processes have changed to involve greater formal and informal collaboration between innovators; increasing technological

* Kulbhaskar Ashram PG College, Allahabad-211 001

complexity had made it more difficult for firms to innovate on their own or to develop needed S&T knowledge internally.

- Globalization is making any invention immediately of worldwide reach, hence more valuable and deserving stronger protection.
- Competition is getting fiercer as markets are often less regulated than before (e.g. telecom, energy), where new entrants supported by venture capital can destabilize incumbents and more open to foreign competitors: the need for protection against competitors is stronger.
- Information Technology (IT), especially the Internet, are reducing dramatically the cost of disseminating knowledge and are making imitation easier, leading firms to seek more protection.
- Markets for technology are expanding, making all sorts of knowledge more fungible than and giving rise to more filings for the IPR that are traded on such markets.
- Public funding for PROs has leveled-off even decreased as the defense motive was weakning, making public research more dependant on private sources of funds.

IPR and Developing Economies

But the strengthening of IPR regime and the now widely accepted TRIPS has raised a debate about the likely benefits of the newly enacted system for the developing countries. The reason for this is the widely held belief that the effects of TRIPS on industry and technology will vary according to the countries' levels of economic development. The need for and benefits of stronger patent protection seem to rise with income and technological sophistication. In theory, society reaps four kinds of benefits from granting temporary rights to innovators through patents. These are:

1. The Stimulation of Private Innovation

It is the primary economic benefit of the IPRs. The importance of this benefit rises with the rate of technical change and how far the technology can be easily be adapted by other users. The growing wave of globalization with emphasis on free trade allow MNCs to reap larger markets further inducing innovation and protecting the same. However, the strengthening of IPR does not automatically guarantee innovations if it does not have local innovative activity. For example, in India there is no indigeneous chip making activity hence no innovation in this area is likely in India. Its benefit, if at all, will also spillover outside. A number of chip giants have established their R&D and design centres in India due to easy access of trained manpower, at the same time assured of no use locally even if some leakage takes place. Hence, the benefit is likely to be in tandem with the share of the market for a particular innovative activities and its ability to pay for the expensive new products. In fact in a weak innovative economy, the stronger IPR regime will slow the imitative adaptation and/or reverse engineering process.

2. The use of new knowledge in productive activity

The use of new knowledge in productive activity results in financial returns to innovators due to higher prices and profits. It ultimately promotes higher incomes, employment and competitiveness and so on for the economy as a whole. If the knowledge is not exploited within the economy, or products are provided at higher prices, than in with weak IPRs, the gains are correspondingly less and costs are higher. If the innovation is due to market available in the country and the new product increases consumers' welfare, the country will reap the advantages but this gain has to be netted against welfare laws due to higher prices and reduced imitative technological development. For example, a new refined oil may be developed if large market is there- it will lead to higher prices and larger profits to the innovator and patent

holder but many rivals may be wiped out in the process.

3. The Dissemination of New Knowledge to other Agents

IPRs provide the legal instrument on which contractual agreements for procurement, licensing or sales can be affected. Stricter the IPR provisions, easier will be the transfer of technology across national bodies and easier will be local diffusion with enforceable legal framework. A country with weak IPR regime can still benefit from such technology transfer as India did in the planning period where production of many technology intensive products became possible. But a developing country can benefit only if local agents are available and capable enough to reap the new knowledge so available.

4. The Stimulation of Innovation by Other Enterprises

Innovation around a patent is the most dynamic form of technological progress. A prerequisite is the intense innovative activity by large number of competing enterprises. However, an unindustrialized country will have no value to be derived from this activity.

Be as it may, the above advantages of IPR are considerably dependent on two factors namely:

Technological Nature of Activity:

An activity may be easy or difficult to copy- when it is easy to copy as in chemicals, drugs and medicines, patents are vital to protect large and risky R&D expenditures needed for product innovation. Where activity is difficult to copy, patents per se are not important. Other supporting expertise is also necessary to copy such activity- organization, technological skills, experience and learning. Mansfield (1986) found large industry wide differences in the innovation promotion role of patents in the US. According to him, 65% of innovative activity would be directed in pharmaceuticals, 30% in chemicals, 8% in primary metals, 15% in machinery, 12% in metal products, 4% in electrical machinery and 1% in other machinery, and nil in office equipment, motor vehicles, rubber, textiles, etc. These findings are also corroborated by a recent study of Cantwell (1999). Thus the need for IPRs to promote innovation cannot be identical across the activities. Hence the ideal IPR regime must depend upon the structure of economic activities in each country. Countries with little productive investment in IPR- sensitive activities need less strict regimes than those with substantial such activities.

Nature of the Economy

The significance and importance of IPR also tends to vary by the level of investment. Main beneficiaries of the TRIPS are those countries that produce innovation. The developing countries generally have technological competence to use imported technologies efficiently rather than to innovate on the technological frontier. Weak IPR regime allows in such cases reverse engineering and then to innovate as in case of Asian Tigers. The relationship between strength of IPR and level of income is found to be of an inverted U variety (Mascus 2000). The upper turning point occurs at threshold per capita income of $7750 at 1985 prices- a fairly high level of income from the point of view of the developing world.

Before we proceed further, we must also take note of potential costs that are to be incurred in view of strengthening IPR regime under the new TRIPS agreements. These are:

1. Higher Prices for imported products and new technologies under IPR protection.
2. Loss of economic activity by closure of imitation activity.
3. The possible abuse of protection by patent holders, especially large foreign companies.

The possible benefits that can accrue to a country by enacting a strict IPR regime would be:

(A) Sophisticated Business Structures : IPRs make possible to have sophisticated business structures where private property rights exist and are well enforced. The business become complex, corporatized and future planning requires more significance as patents elongate the business interests in time and to grow in future.

(B) IPRs lead to other kind of technological activity such as encouragement to quality improvement where trademark and copyright laws are strict and well enforced.

(C) Large Market Advantage: Many developing countries because of their population or otherwise offer large markets to MNCs, which may, in order to reap the benefits of such markets, promote global innovations by adding effective demand for the new products. For example, peculiar health condition or a disease endemic in developing countries may stimulate innovative activity among many global players who may wish to earn more profits. It may be mentioned that this potential advantage has not yet been significantly reaped by developed countries. Innovators in developed countries generally innovate out of desire to earn more profits than merely to cater to a large market whose paying capacity may be limited. Interest of large multinationals in developing an antidote or support medicine for that variant of AIDS prevalent in developed countries has lead to large R&D and innovative activity than for Asian variant of AIDS where large population is affected yet paying capacity is limited.

(D) Strong IPRs stimulate greater technology transfer over the long run in developing countries. This may be true for capital goods, FDI and liberal licensing agreements. This benefit, however, must be seen with a caveat that correlation between stronger IPR and these variables may be due to other unobserved variables such as higher incomes, stronger technological base, ideological affinity or such other causes.

Hence the levels of development are important in assessing the impact of TRIPS in developing countries. The relationship between IPRs and growth remains complex and dependent on circumstances. The balance of evidence suggests that strengthening of TRIPS may lead to net loss and hence different approach to TRIPS is called for.

Classification of Countries by IPR Relevance

An important study (Lall 2003) categorized the countries according to different schema based on technological activity, industrial performance and technological imports. A technological intensity index was then prepared based on research and development financed by productive enterprises and the number of patents taken out in USA. The countries were classified into following four groups:

1. Technological Leaders: These are the economies with intense technological activity and considerable innovative capabilities as shown by patenting activity. This group contains most industrialized countries and the four Asian Tigers namely Taiwan, Korea, Singapore and Hong Kong. These tigers were helped by substantial investment in skills development, strong export orientation, ample inflow of foreign capital goods and strong government incentives for R&D. Obviously many other countries of the world were not so fortunate to have these attendant prerequisites.

2. Countries with Moderate Technological Activity: These countries have developed some R&D activity, have medium level of industrial development and are likely on balance to benefit from stronger patents. This group includes Russia, Poland, Hungary, Brazil, Argentina, Chile and Mexico.

3. Countries with Low Technological Activity: These countries are likely to have both significant costs and potential long-term benefits

from stricter patents, depending upon the level of domestic technological capabilities and reliance on formal technology inflows. This group includes China, India, Egypt and Thailand, to name a few. It may be noted that where innovative systems are developing by copying foreign technology and importing technologies at arms length would gain less than those with a strong transnational corporation presence.

4. No Significant Technological Activity: These are the least industrialized countries with the simplest technological structures and are likely to gain least and lose most from stricter patent rules.

Recent IPR Scene in India

India succumbed to the international pressure to sign the TRIPS agreement in 1994. But between 1994-97, it did not make much to change the Indian Patent Act 1970 to incorporate the provisions of the new IPR Treaty. This was due to lack of unanimity in India about the changes to be made in the IPR legislation. However, a gradual shift in the perception of the informed players was taking place. First, the Congress Party and then the BJP in a large measure abandoned their earlier opposition to the changes in the patent act. Subsequently, the CII took the view that India would not be able to attract larger FDI unless requisite changes in the Indian patent laws are affected. Subsequently, in 1997, FICCI established the International Institute for Intellectual Property Development and also lent support to changes in the Indian Patent Act, 1970 in line with the TRIPS agreement. Two major Indian drug producers- Dr. Reddy's Labs and Ranbaxy also lent support for the passage of the new patent act in conformity with TRIPS provisions. Lanjouw in a detailed survey reported that most respondents in a wide survey agreed for the abandonment of Exclusive Marketing Rights and to go straight for product patents. The top Indian Research and scientific institutions led by CSIR also expressed the hope that they could benefit from patents rather than publications. In fact Prime Minister Atal Bihari Vajpayee in January 1999 stated, "*I complement the CSIR for creating an intellectual climate supportive of early passage of the bill to amend the Indian Patent Act*".

With the passage of allowing product patents in India, there has been a substantial surge in the Indian patent scenario; for example, the average patent applications in India which were below 1400 per year 1970-71 to 1993-94 have increased rapidly in the region of nearly 2500 in the year 2000-01. Similar increase can be witnessed in the foreign companies' patents taken out in India which were generally remained below 3 times to Indian patent applications till 1994-95 jumped to more than 4% after 1994-95 till date. This increase is mostly due to the fact that no product patents on food and drugs could be granted in India in the earlier period. The message is clear- the argument is no longer that Indian companies do not have capacity to file applications, but rather that they could do so if incentives were provided through breaking down legal barriers.

It may be mentioned that number of enabling provisions have been made to facilitate filing of patent applications and their subsequent administration (Ramanna, Anita 2002). It may be further noted that subsequent to relaxation of filing of product patents; there is a surge in patent application activity in agricultural sector in India. Although moderate at the moment, the number of MNCs that filed patent applications in this area during 1995-2000 are as under:

Novartis (70), DOW (195), DuPont (215) and Monsanto (37)

These brief descriptions do point to a brighter future for Indian economy, in the sense that the Indian economy has a well diversified industrial base, world acknowledged proof of Highly competent technical manpower and to top it all, a large market where an innovation of a

meaningful dimension will assure large profits over a period of time.

Our analysis earlier pointed out that the relevance of strengthening IPR regime under WTO provisions has varied effect on different economies depending upon their relative strength and resilience to exploit benefits out of opportunities made available. The positive features of Indian Economy do suggest that along with few other major industrialized developing countries like China, Brazil, Mexico, Indonesia and Malaysia, India would benefit from the new dispensation of strengthening IPR regimes because of its intrinsic strength.

REFERENCES:

Ramanna, Anitha: Policy implications of India's Patent reforms, Economic & Political Weekly XXXVII 37, May 25-31, 2002

Lall Sanjay, indicators of Relative Importance of IPRs in Developing Countries, Issue Paper No. 3, UNCTAD, June 2003

Mansfield, E. Patent and Innovation: An Empirical Study, Management Science

Maskus, K. Intellectual Property Rights in the Global Economy: Institute for International Economics 2000

UNDP UN Development Report 2001: Making new Technologies work for Human Development, New York and Oxford, OUP, 2001

Cantwell, J.: Innovation as the Principal Source of Growth in the Global Economy, in D. Archibugi et.al Innovation in the Global Economy, Cambridge 1999

World Bank, Intellectual Property: Balancing Incentives with Competitive Access, in Global Economic Prospects, Washington, DC 2001

 ISSN : 2350-0441

Education and Happiness

❐ Dr. Sheetla Prasad Verma*

Corresponding Authors : drspverma_kadc@rediffmail.com

ABSTRACT

It is a general belief that Education brings happiness. Delor's report learning the treasure within identified 4 pillars of learning as Learning to know, Learning to do, Learning to be and Learning to live together with others, which can result into a happy life. On the same lines World Health Organization specified ten core life skills to make life happy. Life skills are tools to inculcate the necessary qualities into children so that they can learn together and become happy. Education results in social well being which in turn brings happiness. Rousseau has also stated that a proper intellectual education during childhood is the basis of happiness in future. Education for happiness is an emphasised concept today. This paper deals with the necessary life skills to prepare education for happiness.

Keywords- Education, Happiness, Life skills

Introduction

Education is the way through which society achieves success in global market. Education plays an important role in building future of the society; The objective of education is overall and this holistic development of the child which is required to prepare healthy human resources to the society; It is a common thinking that educational success brings a promise of later happiness. Rousseau has stated that a proper intellectual education during childhood is the basis of happiness in future. This belief is still continuing today. Continued school attendance and good results are generally assumed to enhance the chances for later psychological well-being of individuals.

Today Compulsory education for all has been advocated and considered as a medium of bringing happiness into the lives of the poor and more recently "equal educational opportunities" is often associated with "equality of happiness-chances".

Happiness and Education

Happiness is defined as the overall satisfaction with quality of life. According to Diener et. al. 'Happiness occurs when a person experiences life satisfaction and frequent joy, and only infrequently experiences unpleasant

* Associate Professor (A.H. & Dairy Science), Kulbhaskar Ashram P.G. College, Allahabad-211001

emotions such as sadness or anger'.(Hernandez, 2013)-1

'Happiness' has been referred as, "living well and doing well" by enjoying goods of the mind (e.g., wisdom, moral virtue and pleasure), goods of the body (e.g., physical beauty; health and pleasure again) and external goods (e.g., wealth and adequate material resources, good parents and families, good friends, peace and security) within and between communities. (Stephano Castriota)-2

The school education experiences are assumed to increases happiness and three factors have been considered regarding happiness (Ruur and Backer, 1977)-3

a. Understanding is considered to be a pleasant experience in itself and because education gives rise to more understanding, it results in more pleasant experiences and thus in more happiness.

b. School education effects adult happiness indirectly by providing opportunities for a social well being and a better social position. Higher education is considered to further enhance the chances for upward social mobility and thus increases happiness.

c. Modern pedagogues states that, besides intellectual skills, school education enhances psychological competence also. The school is considered to make its pupils more imaginative, creative, more balanced and more socially competent the longer stay in educational institute is related to higher educational achievement, thus the better ability to cope with life's problems and the hapier individual. (Stephano Castriota)-2

These views and studies suggest that education and happiness are interconnected to each other and researchers have also shown that relation.

The Effect of Education on Happiness

Several evidences of the influence of education on many important aspects of people's lives including happiness are present in studies. Some of them are pointed below-

- Salinas-Jimenez et al. (2011) noted that education attainment is significantly and posItively associated with happiness.
- Cuñado and Pérez-de-Gracia (2011) found that education has an impact on happiness beyond well known pathways (income and employment status. 4 & 5
- Happiness relates positively to income and health, and that the positive relation with education appears to be eroding in richer countries. The highest level of happiness is reached for individuals with higher level secondary schooling of a general nature. 6
- Education improves life-satisfaction and thus happiness. Some other benefits are also associated with education like- higher employment probability and Positive effect on health.-7
- Education, as one of the most important investments in human capital, is highly correlated with personal income; which is a positively associated with well-being, accounting for the Association between Education and Happiness. Studies have reported that higher educational attainment is associated with greater happiness.-8
- In general, having higher qualifications is associated with greater happiness, life satisfaction, self-esteem, self-efficacy and reduced risk of depression.-9

Education aims to produce human beings who are happy within themselves and with others; and create an approach for knowledge that children can use and develop throughout their lives as they learn to know, to do, to be and to live together with others [10]. United Nations declared 2005-2014 as the UN Decade for Education and Sustainable Development to draw greater attention to the essential role that education should play in improving the quality of life of current and future generations.-11

In this direction a new concept, sustainable happiness, was developed by O'Brien to merge principles from sustainability and findings from happiness studies. It is defined as "happiness that contributes to individual, community and global well-being without exploiting other people, the environment or future generations." Each of us may contribute positively or adversely to the well being of others and the natural environment.

Sustainable happiness is included as a course in the teacher education program at Cape Breton University (Canada).-11

The life skills approach is adopted for teaching learning in the schools where the students have the scope of gaining hands on experience. This approach is based on the four pillars of Delor's report (1996) on learning the treasure within. World Health Organization also suggested ten core life skills for bringing happiness in lives.

To make education able to produce happiness among individuals it should be able to incorporate certain qualities within them. These qualities should be capable to transform students and modify them into a better adjusted aid emotionally intelligent. Some of these characters have been called as life skills and are introduced in school educational system like in syllabus of Central Board of Secondary Education India (CBSE) and some other state boards. In the today's modern society these skills are more relevant and infect necessary to prepare students for facing present day challenges of life. These life skills are required for transforming learners into more adjusted intelligent and happy individuals and thus resulting in happiness through education.

Conclusion

Teacher Education Institutions have a challenging task to keep itself always abreast with the ages taking place in the schools. This endeavour taken by the practice teaching programme is also attempt to incorporate the changes which the government of Gujarat has initiated in the field reaching life skills in the teacher education programme. The unit feels that the student teacher when will finally face the school will be capable enough to incorporate these life skills for teaching as well as situation. They will not feel naive when they enter the school system.

References

1. Hernandez E., 2013, Life, social studies, and the pursuit of happiness: Using classroom-based multicultural democratic education to challenge conservative notions of civic education. In M. S. Plakhotnik & S. M. Nielsen (Eds.), Proceedings of the 12th Annual South Florida Education Research Conference (pp. 78-85). Miami: Florida International University.

2. Stefano Castriota, Education and Happiness: a Further Explanation to the Easterlin Paradox? * Universita' Tot Vergata, Via Matteo Bartoli 302, 00143 Roma (Italy), available at http://www econbiz . de/ Record! education-and-happiness-a- further-explanation-to-theeasterlin-paradoxstefano-castriota/ 10005694949

3. Ruut Veenhoven and Peter Bakker, 1977, LEVEL OF EDUCATION AND THE PROMISE OF HAPPINESS by Erasmus University Rotterdam, Department of sociology, Working paper December 1977, available at http : / / www2.eur.nl/fsw/research/veenhoven/Pub 970s/ 77e-full. pdf

4. Borja Lopez Noval and Maria Guijarro Garvi, Empirical Relationship between Education and Happiness. Evidence from SHARE Universidad de Cantabria Universidad de Cantabria available at http:/ / congresoreedes.unican.es/actas/PDFs/ I 96.pdf

5. Ulf-G Gerdtham* and MagnusJohannesson, 1997,The relationship between happiness, health and socio-economic factors: results based on Swedish micro data,

Working Paper Series in Economics and Finance No. 207, Department of Economics, Stockholm School of Economics, Stockholm, Sweden, available at http://swopec.hhs. se/hastef/papers/ hastefo2o7.pdf

6. Joop Flartog Hessel Oosterbeek, 1997, HEALTH, WEALTH, AND HAPPINESS: WHY PURSUE A HIGHER EDUCATION?, University of Amsterdam Department of Economics available at http: //papers.tinbergen.nl /97034.pdf

7. Wan-chi Chen, 2012, How Education Enhances Happiness: Comparison of Mediating Factors in Four East Asian Countries, Social Indicators Research An International and Interdisciplinary Journal for Quality-of-Life Measurement, Volume 106 Number 1, p 117-131

8. Ricardo Sabates & Cathie Hammond, 2008, The Impact of Lifelong Learning on Happiness and Well-being, InternationalJournal of Lifelong Education 05/2011; 30(3-3) p 403-420

9. Delores J.,1998, Learning the treasure within. Report to UNESCO of the International Commission on Education for the Twenty-First Century UNESCO 1998.

10. Alex C. Michalos, 2007, Education, Happiness and Wellbeing, Institute for Social Research and Evaluation University of Northern British Columbia Canada, Paper for International Conference on ‘Is happiness measurable and what do those measures mean for public policy?’, at Rome, 2-3 April, University of Rome, organized by the Joint Research Centre of the European Commission, OECD, Centre for Economic and International Studies and the Bank of Italy.

11. Catherine O’Brien, 2010, Sustainability, Happiness and Education, Journal of Sustainability Education, Vol. 1, ISSN: 2151-7452

SHODH CHETNA – YEAR-3
(JAN. TO MAR., 2017) VOL. 1

ISSN : 2350-0441

ग्रामीण अर्थव्यवस्था एवं स्वयं सहायता समूह

❑ डॉ. जे.पी. सिंह*

शोध सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र में उत्तर प्रदेश के ग्रामीण अर्थव्यवस्था एवं स्वयं सहायता समूह की प्रारंभिक विशेषताओं का अध्ययन किया गया है। इसके साथ यह भी स्पष्ट किया गया है कि स्वयं सहायता समूहों की ये विशेषताऐं सम्मान के भिन्न वर्गों तथा संस्थाओं को किसानों किस प्रकार से प्रभावित करती हैं। समूहों की इन विशेषताओं में इनके गठन के उद्देश्यों को भी समाहित करने का प्रयास किया गया है। समूहों की विशेषताओं के साथ इनके गठन की प्रक्रिया को सरल एवं स्तरीय आधार पर स्पष्ट की गयी है। इसके साथ समूह की कार्यपद्धति को भी अत्यन्त सरलतम ढंग से समझाने का प्रयास किया गया है। समूहों की कार्य पद्धति में समूह की वित्तीय आवश्यकताऐं यथा मासिक किस्त तथा वित्तीय रख रखाव, वित्तीय गुणात्मक प्रवन्धन के साथ बैंक के साथ सकारात्मक एवं संचेतनात्मक संबंधों की आवश्यकता को भी स्पष्ट किया गया है। प्रस्तुत अध्याय स्वयं सहायता समूहों की लगभग सवस्त बारीकियों एवं गहराईयों को स्पष्ट करने में सक्षम है। निर्धनता निवारण एवं निर्धनों के आर्थिक स्वावलंबन के उद्देश्य से स्वयं सहायता समूहों को गठन किया जाता है। निर्धनता की रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे परिवारों के लिए स्वयं सहायता समूहों का निर्माण ब्लाक कर्मचारियों स्वैच्छिक संगठनों द्वारा कराया जाता है।

नाबार्ड के अनुसार स्वयं सहायता समूह की धारणा निम्न है 'स्वयं सहायता समूह ऐसे निर्धन ग्रामीणों का एक समूह है जिनकी सामाजिक–आर्थिक स्थिति लगभग एक जैसी है। यह लोग अपनी इच्छा से एक समूह में संगठित होकर नियमित रूप से रुपए 10 या 20 अथवा उससे अधिक की बचत करके जरूरतमंद सदस्यों के साथ ऋण का लेन–देन स्वरोजगार, कृषि कार्य तथा अन्य व्यवसाय के लिए करते हैं।''

दस व्यक्तियों से कम संख्या होने पर समूह का गठन नहीं होगा। इसके साथ एक स्वयं सहायता समूह में सदस्यों की संख्या 20 से अधिक नहीं हो सकती। केवल विकलांगता की स्थिति में यह संख्या दस से कम हो सकती है। दूसरे गांव के व्यक्ति स्वयं सहायता समूह में शामिल नहीं होते।

स्वयं सहायता समूहों की विशेषताओं का निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत चिह्नित किया गया है–

*   एसो0 प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, डी0एस0 कालेज, अलीगढ़

- समरूप निर्धनों का स्वैच्छिक समूह
- समूह में 10 से 20 सदस्यों जिनकी सामाजिक आर्थिक स्थिति,'विचारधारा व संस्कार लगभग एक समान
- समूह महिलाओं का पुरूष या मिश्रित हैं।
- सदस्य में आपस में स्वेच्छा से अपने जीवन स्तर को ऊंचा उठाने, आत्मबल एवं आत्मनिर्भरता प्राप्त करने हेतु सामूहिक प्रयास के लिए तत्पर ।
- एक तरह से यह गरीबों का अपना छोटा बैंक है तथा इसको सहीरूप से चलाने के लिए नियम भी स्वयं बनाए जाते हैं।
- समूह को बैंकों से लेन–देन हेतु मान्यता है क्योंकि भारतीय रिजर्वबैंक तथा बैंकों द्वारा इस कार्यक्रम को विशेष मंजूरी दी गई है।
- समूह के गठन स्वैच्छिक संगठन के कार्यकर्ता या गांव के शिक्षक कर्मचारी या निर्धन लोग, सरकारी कर्मचारी बैंक के कर्मचारी अधिकारी कृषक त्त्व द्वारा किया जा सकता है।
- अन्य समस्याओं पर चर्चा तथा उनके निराकरण का मंच है।

स्वयं सहायता समूहों से होने वाले लाभों को निम्न बिन्दुओं के रूप मेंदर्शाया जा सकता है–

- नियमित बचत की आदत
- ऋण मिलने में आसानी
- आंतरिक ऋण से प्राप्त व्याज का लाभ समूह के सदस्यों को मिलता है।
- बैंक से ऋण मिलने में आसानी। उस ऋण पर सदस्यों से प्राप्त ब्याज से सभी को लाभ।
- सर्वांगीण विकास हेतु सामूहिक प्रयास से जानकारी बल और धन प्राप्त करना संभव होता है जो व्यक्तिगत तौर पर संभव नहीं है। परिपक्व समूह सामाजिक कार्य में भी भाग ले सकते हैं
- छोटी छोटी बचत कराने से सदस्यों का आत्मबल बढ़ता है औरउनके आर्थिक विकास की प्रक्रिया शुरू हो जाती है।
- समूह को स्थायित्व प्रदान करने के लिए बचत आवश्यक है।
- एकत्रित पूंजी से सदस्यों को कृषि, अन्य कार्यकलापों व आकस्मिकआवश्यकता के लिए छोटे ऋण मिलने में आसानी।
- बैंकिंग सेवा को अधिक लोगों तक बिना कोई अतिरिक्तलागत के पहुंचाना।
- अच्छी वसूली सामूहिक दबाव से समूह सदस्य द्वारा तत्परता से ऋण वापसी
- सदस्यों की अल्प बचत द्वारा समूह के माध्यम से बड़ी रकम काजमा होना।
- समूह की संस्तुति पर गैर लक्ष्य लोगों को ऋण वितरण में वृद्धि।

स्वयं सहायता समूहों का गठन

समूह के नाम

स्वयं सहायता समूह के सदस्य अपने समूह का नामकरण किसी भी आधार पर करने के लिए स्वतंत्र हैं। समूहों का नाम ऐतिहासिक, सामाजिक तथा आर्थिक आधार पर रखा जाता है। जसे महादेव स्वयं सहायता समूह, लक्ष्मी स्वयं सहायता समूह, डॉ. भीमराव अम्बेडकर स्वयं सहायता समूह आदि।

सदस्यता

स्वयं सहायता समूहों में सदस्यों की उम्र 18 वर्ष से अधिक रखी जाती है, बैंक तथा संबंधित संस्थाओं द्वारा यह प्रतिबंधित किया गया है। स्त्री–पुरुष के संदर्भ में स्वयं सहायता समूह में केवल पुरुष वर्ग या महिला वर्ग अथवा दोनों संयुक्त रूप से शामिल हो सकते हैं। पुरुषों या महिलाओं को समूह से बाहर निकलने या शामिल होने के लिए समय सीमा आदि का कोई प्रतिबंध नहीं होता।

पदाधिकारी

स्वयं सहायता समूह में सफल संचालन के लिए कुछ पदाधिकारियों को भी मनोनीत किया जाता है। पदाधिकारी समूह के सदस्य ही होते हैं तथा अवैतनिक रूप से कार्य करते हैं।

अध्यक्ष

समूह के अध्यक्ष का कार्य समूह की बैठकों की अध्यक्षता करना होता है तथा इसकी देख–रेख में

समूह के कार्य संचालित होते हैं। अध्यक्ष, सचिव तथा कोषाध्यक्ष के नाम से बैंक में संयुक्त खाता खोला जाता है। समूहों के प्रस्ताव अध्यक्ष द्वारा अनुमोदित किए जाते हैं।

सचिव

सचिव द्वारा स्वयं सहायता समूह के सभी अभिलेखों को सुरक्षित रख जाता है। सचिव का कार्य बैठकों की कार्यवाही लिखना एवं कोषाध्यक्ष की सहायता करना होता है। अध्यक्ष की अनुपस्थिति में सचिव ही समूह की बैठकों की अध्यक्षता करता है।

कोषाध्यक्ष

- कोषाध्यक्ष का मुख्य कार्य समूह के बचत को सुरक्षित करना है।
- बचत तथा ऋण के लेन–देन का हिसाब कोषाध्यक्ष के पास रहता है।
- सदस्यों की पास बुक में प्राप्ति राशि को अंकित करना तथा बचत को बैंक खाते में जमा करना भी इसका कार्य होता है।

स्वयं सहायता समूहों की कार्यपद्धति

स्वयं सहायता समूहों का कार्य बहुत सरल है। समूह गठन के समय एक नियमावली तैयार की जाती है जिसकी एक प्रति बैंक में जमा की जाती है है। इस नियमावली के आधार पर ही समूहों की कार्यपद्धति संचालित होती है। इस नियमावली में समूह का नाम, पदाधिकारी, पता, सदस्य संख्या, बैठक, खाता संचालन, मासिक किस्त आदि से संबंधित नियम बनाए जाते हैं।

स्वयं सहायता समूह की बैठकें

स्वयं सहायता समूह की बैठकें पाक्षिक या मासिक होती हैं। बैठकों का समय, दिन तथा स्थान पूर्व में निर्धारित किया जाता है। समूह के प्रस्ताव, बचत एकत्रण, ऋण स्वीकृति, ऋण वितरण, ऋण अदायगी, व्याज का निर्धारण तथा अन्य सामाजिक–आर्थिक क्रियाकलापों से संबंधित निर्णय समूहों की बैठक में ही लिए जाते हैं। ग्राम स्वरोजगार संबंधी योजनाओं पर समूह की बैठकों में चर्चा होती है।

स्वयं सहायता समूहों का बैंकों के साथ संबंध

स्वयं सहायता समूह स्थानीय बैंक के साथ संबद्ध होते हैं समूह गठन के बाद ही समूह के नाम बैंक में खाते खोले जाते हैं। ये खाते किसी व्यक्ति या विशेष नाम से नहीं।

स्वयं सहायता समूहों के अभिलेख

स्वयं सहायता समूह के प्रमुख अभिलेख निम्नलिखित हैं–

1. नियमावली व प्रस्ताव– यह स्वयं सहायता समूहों के प्रारंभिक अभिलेख है जिनके आधार पर ही समूहों का गठन किया जाता है।

2. कार्यवाही रजिस्टर– इस रजिस्टर में समूहों के प्रस्ताव तथा बैठकों की कार्यवाही का विवरण अंकित किया जाता है।

3. पास–बुक – संबंधित बैंकों द्वारा समूहों को संयुक्त खाते की पास बुक उपलब्ध कराई जाती हैं जिसमें समूहों की कुल बचतों काविवरण दर्शाया जाता है। इसके साथ स्वयं सहायता समूह केप्रत्येक सदस्य को भी एक–एक पासबुक उपलब्ध कराई जाती गईहै जिसमें समूह के सदस्य की व्यक्तिगत बचतों का मासिकविवरण तथा ऋण संबंधी विवरण अंकित किया जाता है।

4. बचत एवं ऋण रजिस्टर– इस रजिस्टर में बचत, ऋण तथा आय–व्यय का व्यौरा निम्न रूप में दर्शाया जाता है।

बचत खाता–बचत खाते में सभी सदस्यों के नाम व बारह महीने की बचत का फार्मेट बनाया गया।

व्यक्तिगत तथा समूह ऋण खाता– प्रत्येक सदस्य को दिए गए ऋण उद्देश्य, ऋण कर अदायगी व अवशेष ऋण आदि व्यक्तिगत खाते में तथा सभी सदस्यों के कुल ऋण लेन–देन को माह के अन्त में समूह ऋण खाते में दर्शाया जाता है।

स्वयं सहायता समूहों की ग्रेडिंग प्रणाली

समूहों की स्थापना के 6 माह उपरान्त सम्बन्धित विकास खण्ड कार्यालय से समूहों की प्रथम ग्रेडिंग होती है। समूहों को रिवाल्विंग फण्ड के अनुदान अंश

की धनराशि, प्रथम श्रेणीकृत समूह की निकाय निधि के बराबर अल्पतम 5000 रुपए तथा अधिकतम 10,000 रुपए की सीमा तक देय है। बैंक निकाय निधि के 4 गुना तक की धनराशि रिवाल्विंग फण्ड के ऋण अंश के रूप में प्रदान करता है। रिवाल्विंग फण्ड मिलने के 6 माह वाद समूहों की द्वितीय ग्रेडिंग की गई जिसमें समूह द्वारा तैयार किए गए परियोजना प्रस्ताव के आधार पर परियोजना लागत की धनराशि डी.आर. डी.ए. स्तर से अनुदान के रूप में तथा बैंक से ऋण को सम्मिलित करते हुए प्रदान की जाती है।

परिक्रमी निधि

सफल प्रदर्शन करने वाला प्रत्येक स्वयं सहायता समूह परिक्रमी निधि(10,000 रु. का सरकारी अनुदारन तथा 15,000 रु. का बैंक ऋण) से सहायता का पात्र होता है। यह सुनिश्चित करने के बाद कि समूह के सदस्यों ने गरीबी रेखा पार कर ली है, परिक्रमी निधि तथा सदस्यों के अंशदान सहित सामूहिक कार्मिक राशि सामूहिक खाते में मिला दी जा सकती है।

सब्सिडी

स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना के तहत लागत के 30 प्रतिशत की एक समान दर से सब्सिडी दी जाती है जो गैर–अनुसूचित जाति जन जाति के लिए अधिकतम 7500 रु. है। अनुसूचित जाति/जनजाति के लिए परियोजना लागत की 50 प्रतिशत सब्सिडी दी जाती है बशर्ते वह 10000 रुपए से अधिक न हो। स्वयं सहायता समूहों के लिए सब्सिडी परियोजना लागत के 50 प्रतिशत के बराबर दी जाती है बशर्ते यह राशि 1.25 लाख रुपए से ज्यादा न हो। सिंचाई सम्बन्धी परियोजनाओं के लिए सब्सिडी पर कोई अधिकतम सीता नहीं है।

ऋण वापसी

स्वयं सहायता समूहों के ऋणों की ऋण की किस्तें नाबार्ड डी.एल.सी.सी.द्वारा अनुमोदित इकाई लागत के अनुसार तय की गई है। वापसी कीकिस्तें परियोजना से अपेक्षित बुद्धियुक्त कुल आय के 50 प्रतिशत से ज्यादा नहीं है। किस्तों की संख्या व्याज, मूलधन, व्याज देयताएं तथा वापसी अवधि के अनुसार निर्धारित है।

समूहों के सृदृढ़ीकरण एवं परिपक्वता के लिए शाखा प्रबन्धक केकर्तव्य

- हर माह गैर कार्य दिवस पर अपने कार्य क्षेत्र के समूहों के पदाधिकारियों की शाखा में बैठक करना
- बैठक के काय/मुद्दे तय करना
- समूहों को सुचारू रूप से रजिस्टर लिखने का मार्ग दर्शन करना।
- समूहों द्वारा नियमित बचत, नियमित बैठक, आन्तरिक ऋण केलेन–देन आदि का निरीक्षण और मार्गदर्शन।
- सदस्यों के कृषि उत्पादन, रोजगार व आय बढ़ाने हेतु चर्चा।
- बैंक ऋण हेतु परिपक्व समूहों की पहचान व मार्गदर्शन।

बैठक में बैंक में बचत खाता खुलवाने के लिए प्रस्ताव पारित करने की विधि

समूह का नाम व पता

समूह के सदस्यों की संख्या

बैठक दिनांक

1. हम निम्नलिखित सदस्य उपरोक्त स्वयं सहायता समूह चला रहे हैं। जिसका गठन................ (तिथि) को किया गया है।

2. हम स्वयं सहायता समूह के सदस्य सर्वसम्मति से निम्न प्रतिनिधियों को विशेष रूप से प्राधिकृत करते हैं–

(क) स्वयं सहायता समूह द्वारा अनुमोदित... बैंक शाखा में बचत खाता खोलने और खाते को निम्नलिखित प्राधिकृत प्रतिनिधियों में से किन्हीं दो के हस्ताक्षर से संचालित करना

श्री/श्रीमती कुमारी.....................(पदनाम)

श्री/श्रीमती कुमारी.....................(पदनाम)

श्री/श्रीमती कुमारी.....................(पदनाम)

श्री/श्रीमती कुमारी.....................(पदनाम)

(ख) स्वयं सहायता समूह को देय ब्याजध भुगतान प्राप्त करना और समूह की ओर से आपेक्षित रसीदें / पावतियां जारी करना ।
हस्ताक्षर / अंगूठा निशान (सभी सदस्य)

निधि का प्रबन्धन

- सदस्यों की जमा तथा उनकी आवश्यकताओं में संतुलन होना चाहिए।
- धन से सम्बन्धित सभी लेन–देन समूह बैठक में ही तय होने चाहिए।
- समूह के सभी खाते समूह के नाम में ही होने चाहिए न कि किसी एक / अनेक सदस्यों के नाम में
- नियमित / निर्धारित अन्तरातरुअन्तर्रावधि पर समूह पदाधिकारियोंका परिवर्तन, समूह के सभी सदस्यों को समूह प्रबन्धन के दायित्वों का अनुभव कराएगा जो अन्ततः समूह को सुदृढ़ बनाएगा।

बचत का प्रबन्धन

- बचत की राशि व दर सर्वसम्मति से निर्धारित की जाती है।
- आवश्यकतानुसार व सर्वसम्मति से बचत की दर में वृद्धि की जा सकती है।
- समूह सदस्यों की बचत की आदत का विकास करना। बचत की आदत, सदस्यों के अनावश्यक खर्चों पर अंकुश लगाती है।
- हर परिस्थिति में सदस्यों में मासिक आधार पर बचत करने की आदत को विकसित करना ।
- समूह को छोड़कर जाने वाले सदस्यों की बचत वापसी से सम्बन्धित नियम स्पष्ट।?
- कुछ समूह अपने सदस्यों को साप्ताहिक अन्तरराल पर बचत जमा करने को प्रोत्साहित करते हैं जो उनकी बैंक ऋण की किश्ते जमा करने में उपयोगी होती है।
- बचत समूह के ही किसी सदस्य स्वयं बैंक में जमा करनी होती है।
- समय पर बचत न करने वाले सदस्य का नियमानुसार दंडित किया जाता है।

ऋण का प्रबन्धन

- सभी प्रस्ताव समूह या कि पदाधिकारी के नाम होने चाहिए, सभी प्रस्ताव समूह की बैठक में ही प्रस्तुत व वही स्वीकृति या अस्वीकृत किए जाने चाहिए तथा नियमानुसार सब के संज्ञान में लाया जाना चाहिए।
- ऋण वितरण के समय ही पुनर्भुगतान का निर्णय लेना चाहिए।
- प्रासंगिक व्ययध्ऋण पर ब्याज पुनर्भुगतान से पृथक होना चाहिए।
- अनेक समूहों द्वारा बड़े ऋणों के लिए मांग बचत पत्र लिया जाता है। यह मांग पत्र समूह तथा ऋण लेने वाले सदस्य द्वारा समूह पक्ष में होना चाहिए।
- पुनः ऋण देने से पहले, प्रथम ऋण से सम्बन्धित किश्तों की अदायगी ताकि अतिदेय की स्थिति की जांच कर लेनी चाहिए।

स्वयं सहायता समूह के सदस्यों द्वारा आमदनी बढ़ाने हेतु कार्यों का प्रबन्धन

स्वयं सहायता समूह के सदस्य, सहभागिता से अथवा पृथक रूप से, आय अर्जन के लिए कई कार्य करते हैं। यह समूह के सदस्यों पर छोड़ा जाता है कि वह किस कार्य को व्यवसाय के रूप में वह अपनाना चाहते हैं। क्रिया–कलापों का चयन सदस्यों की कार्य कुशलता, प्रशिक्षण, इत्यादि पर भी निर्भर करता है।

वर्ष 1991–92 से आर्थिक सुधारों के अन्तर्गत हमने यह समझने की कोशिश की कि आखिर वह कौन सी समस्या है आज भी ग्रामीण भारत में अज्ञानता, परंपरागत विचार धाराऐं, वाहय आडंबर, भाग्यवादिता और एक सीमित दायरे में जीवन जीये की मजबूरी या स्वभाव आदि तथ्यों को बनाये रखने के लिए जिम्मेदार हैं। पाठ्यक्रम एवं अध्ययन भाषा में कहा जाय तो यह समस्या गरीब ग्रामीणों में अपने तथा राजसत्ता के मध्य सकारात्मक संबंधों पर बहुत ही कम भरोसा करने पर आधारित रही है। गरीबों एवं मध्यम परिवारों को यह कतई विश्वास नहीं रहा है कि आने वाले

समय में हमारा सामाजिक आर्थिक जीवन किसी सीमा तक सकारात्मक दिशा में बदला जा सकता है। भारतीय अर्थव्यवस्था एक उचित नियोजन है। भारतीय अर्थव्यवस्था एक उचित नियोजन के आधार पर चल सकती है तब क्या एक ग्रामीण का परिवार एक छोटे नियोजन से नहीं चल सकता? यदि नहीं तो उसके पीछे कारण है कि उस नियोजन को तय कौन करेगा तथा उसकी सफलता एवं असफलता का जिम्मेदार कौन होगा ? यदि हां तो इस नियोजन के लिए पर्याप्त संसाधनों की उपलब्धता कैसे होगी? इस तथ्य को मैंने व्यक्तिगत स्तर पर महसूस किया एवं ई बार परवा कि ग्रामीण गरीबों को आर्थिक सहायता की अपेक्षा आर्थिक सहायता के एक भाग अनुदान की अधिक लालसा है जो उनके एक लंबे विकास में बाधक है। इसकी बात यह देखी कि भ्रष्टाचार, अव्यवस्था, तथा पक्षपात के दौर में आर्थिक लाभ की इच्छा सभी गरीब तथा मध्यम परिवार करते हैं लेकिन इस भ्रष्टाचार, अव्यवस्था तथा पक्षपात के खिलाफ कार्य करने के साथ बहुत ही नाम मात्र के गरीब तथा बध्यम परिवार खड़े होते हैं। इससे इस बात को आसानी से या गहराई से निकाला जा सकता है कि ग्रामीणों की आर्थिक उन्नति में बाधा इससे भी अधिक सुइढ़ उनकी परंपरागत तथा सामाजिक कुव्यवस्था है जिसमें वे अपना जीवन स्वतंत्रता तथा सहज रूप में जीने के लिए भी सामाजिक नीति का सहारा लेते हैं। अर्थात जिस व्यवस्था से आर्थिक उन्नति को बढ़ाना है वह व्यवस्था आर्थिक उन्नति से विमुख हैं तथा अपनी दोहरी सामाजिक कुव्यवस्था पर चल रही है।जहां तक तक यहां पर इन सारी व्यवस्थाओं में स्वयं सहायता समूह को लाकर खड़ा करने की बात है तब यह कहना गलत नहीं होगा कि इस समूह से उन कुव्यवस्थाओं से बचा जा सकता है लेकिन उन लोगों को ही बचाया जा सकता है जो इन कुव्यवस्थाओं से बचना चाहे। ये समूह व्यवस्था में उन बाधाओं को काफी दूर कर दिया गया है जो वास्तव इन परिवारों की नियोजन व्यवस्था के दुश्मन है।

संदर्भ–

1. मिश्रा एवं पुरी, (2015) भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
2. सिंह, एस.के. (2013) लोकवित्त के सिद्धान्त तथा भारतीय लोकवित्त, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
3. जालान, विमल (2008) 21वीं सदी में भारतीय अर्थव्यवस्था, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।
4. समसामयिक वार्षिकी 2016, उपकार प्रकाशन, नई दिल्ली
5. भारत 2019, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार।
6. बजट 2017–18, 2018–19, भारत सरकार, नई दिल्ली।
7. कुरूक्षेत्र मासिक पत्रिका, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

SHODH CHETNA – YEAR-3 ISSN : 2350-0441
(JAN. TO MAR., 2017) VOL. 1

भारतीय समाज व संस्कृति में स्त्रियों की स्थिति

❐ डॉ. आशा देवी*

शोध सारांश

प्राचीन काल में ही भारत समाज व संस्कृति में स्त्रियों का सम्मानजनक व महत्वपूर्ण स्थान रहा है। वैदिक काल में महिलाओं को शैक्षिक, सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक क्षेत्रों में पुरुषों के बराबर सामान अधिकार प्राप्त थे। आदिकाल में स्त्रियों को पूजनीय माना जाता था। स्मृति ग्रन्थों में वर्णन मिलता है, जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है वहीं देवता निवास करते हैं।

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।'

वैदिककालीन भारतीय समाज में भी महिलाओं ने अपने समस्त अधिकारों का पूर्णता के साथ उपयोग किया था। इस युग में पर्दा–प्रथा का पूर्णतः अभाव था। स्त्रियाँ वैदिक वांग्मय का विधिवत् अध्ययन करती थीं। धार्मिक अनुष्ठान व सभाओं में भाग लेती थीं। लोपा, घोसा, विश्ववारा, गार्गी, मैत्री इत्यादि विदुषी स्त्रियों का वर्णन मिलता है। इस प्रकार वैदिककाल भारतीय समाज का स्वर्ण युग था।

उत्तर वैदिक काल और मध्यकाल में पर्दा–प्रथा अशिक्षा तथा अन्य सामाजिक कुरीतियाँ, अन्धविश्वास और पितृ प्रधान समाज में स्त्रियों की स्थिति बद से बदतर होती गयी। मध्यकाल में स्त्रियों की स्थिति में जितना पतन हुआ उतना कभी नहीं हुआ।

अंग्रेजों के शासनकाल में भारतीय समाज सुधारकों, संचार माध्यों व साहित्यकारों द्वारा नारी जगत में सुधार लाने के लिए भरसक प्रयास किये गये। जिसके परिणामस्वरूप स्वतन्त्रता के पश्चात स्त्रियों की सामाजिक, राजनैतिक व आर्थिक स्थिति में कभी परिवर्तन हुआ, जिसके परिणामस्वरूप वर्तमान समय में महिलाएँ खुली हवा में सांस ले रही हैं और अपने सभी कर्त्तव्यों का निर्वाहन कर रही हैं। अपनी शक्ति, योग्यता और कार्यक्षमता से साबित कर दिया है कि किसी भी क्षेत्र में पुरुष से कम नहीं हैं।

प्राचीन काल से ही भारतीय समाज व संस्कृति में स्त्रियों का सम्मानजनक व महत्वपूर्ण स्थान रहा है। वैदिक काल में महिलाओं को शिक्षा व सामाजिक क्षेत्रों में पुरूषों के बराबर अधिकार प्राप्त थे। आदिकाल में नारी पूज्यनीय होती थी। स्मृति ग्रन्थों में उल्लिखित है। जहाँ स्त्री की पूजा होती है। वहीं देवता निवास करते हैं–'यत्र नार्यस्तु पूज्यनते रमन्ते तत्र देवता'[1] वैदिक कालीन समाज भारतीय इतिहास का सबसे अधिक आदर्श समाज रहा है। वैदिक समाज में महिला के अस्तित्व एवं योगदान से गृहस्थाश्रम को आदर्श रूप प्राप्त था। वेदयुगीन घर का अस्तित्व महिला के अस्तित्व में ही निहित माना जाता था वेद युग में

* एसोसिएट प्रोफेसर–दर्शनशास्त्र, पी0जी0 कॉलेज अगस्त्यमुनि, जिला–रुद्रप्रयाग।

महिलाओं ने समस्त अधिकारों का पूर्णता के साथ उपयोग किया था। ऋग्वैदिक युग में योग्य कन्या सुख का कारण मानी जाती थी। पत्नी को 'जाया' का अभिधान प्रदान कर हमारे आर्य मनीषियों ने निःसन्देह महिलाओं को गौरवपूर्ण स्थान दिया। वैदिक युग में पर्दा प्रथा का पूर्णतः अभाव था। महिलायें अध्ययन करती थी एवं खुली आम सभाओं में भाग लेती थीं। वैदिक वाङ्मय का विधिवत अध्ययन करती थी एवं यज्ञों में भाग लेकर मंत्रोच्चारण भी करती थी। 'लोपा, घोसा, विश्ववारा, गार्गी, मैत्री आदि विदुषी स्त्रियों के शास्त्रार्थ में भाग लेने के उदाहरण मिलते हैं। ज्ञान, शिक्षा, सम्पत्ति इत्यादि के सम्बन्ध में पुरूषों के समान थीं।'[2] धार्मिक कार्यों व अनुष्ठानों में स्त्रियाँ भाग लेती थीं। इस प्रकार वैदिक काल भारतीय समाज का स्वर्ण युग था।

प्रारम्भिक वेद युग में पत्नी ही यज्ञ में सोमगीतों का गान करती थी। वैदिकयुगीन–विधवाएं यातनामय जीवन नहीं जीती थीं। बल्कि समस्त सुविधाओं का उपयोग करती थी। पुनर्विवाहिता विधवा समाज में आदर की दृष्टि से देखी जाती थी। ऋग्वेद के दशम मण्डल में वर्णित है कि उर्वशी 'पुरूवा' की कुछ शर्तों सहित विवाह करती है और शर्तों के टूट जाने पर वो पति से सम्बन्ध तोड़ लेती है।[3]

वैदिक युगीन महिलाएं समस्त अधिकारों की भोक्ता थी एवं उनकी स्थिति उच्च तथा आदरणीय थी। उत्तर वैदिक काल में पर्दा प्रथा, अशिक्षा तथा अन्य सामाजिक कुरीतियाँ फैलती गयीं और नारी सिर्फ घर की चारदीवारी में कैद होने लगी तथा पुरूषों की निजी स्वामित्व वाली वस्तु मानी जानें लगी। सामाजिक रूढ़ियों व कुरीतियों, अन्धविश्वास, अशिक्षा, पाखण्ड, पितृप्रधान समाज में स्त्रियों की स्थिति बद से बदतर होती चली गयी।

इस काल में पुत्री की अपेक्षा पुत्रागमन अधिक मांगलिक एवं आनन्ददायक माना जाता था। फिर भी पुत्री का स्थान सम्मानजनक था। आपस्तम्ब गृह सूत्र से ज्ञात होता है कि यात्रा से लौटने पर पिता–पुत्र की भाँति पुत्री को मन्त्रोच्चारण सहित आशीर्वाद देता था।[4] गृहसूत्रों में स्त्रियों के समावर्तन संस्कार का उल्लेख यह सिद्ध करता है कि स्त्रियां वेदाध्ययन करती थीं। विवाह संस्कार के समय वर एवं वधू सम्मिलित रूप से अनुवाद–मंत्रों का उच्चारण करते थे। अतः स्त्रियों की शिक्षा युवकों से कम नहीं थी, पाणिनी ने भी 'उपाध्याय' एवं नवविवाहित स्त्रियों पर प्रकाश डाला है। नवविवाहित स्त्री भी पर्दा नहीं करती थी। इसका प्रमाण हमें आपस्तम्ब गृह सूत्र में प्राप्त होता है कि विवाह के उपरान्त श्वसुर–गृह जाते समय वधु का मुख सभी दर्शक देखते थे और इस वेदमंत्र का उच्चारण भी करते थे।[5]

"सुभंगलीयिं वधुरियां समूत पश्च्वत्।
सौभाग्यमस्से दन्तवायाथास्तं विपरेतन।।

महिला का स्थान समाज में पत्नी के रूप में तो प्रतिष्ठित था ही, परन्तु महिला का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान माता के रूप में पाती थी।[6]

महाकाव्य युगीन समाज में स्त्री का स्थान धीरे–धीरे परिवर्तित होने लगा। यद्यपि तद्युगीन समाज में कन्या को लक्ष्मी माना जाता था।[7] कन्या की पवित्रता के कारण ही, सिंहासनारोहण या राजतिलक जैसे शुभकार्यों में कन्या की उपस्थिति अनिवार्य मानी जाती थी। पुत्री की रक्षा करना पितृ धर्म माना जाता था।[8] माता को 'लिअतिगुरू' में स्थान प्राप्त था। पुत्र के लिए माता से बढ़कर कोई वेद एवं शास्त्र नहीं माना जाता।

धर्मशास्त्र काल से अभिप्राय विशेषतः तीसरी शताब्दी से लेकर 11वीं शताब्दी के बाद याज्ञवल्क्य संहिता, विष्णुसंहिता और पराशर संहिता की रचना हुयी। जिनमें वेदों के नियमों को पूर्णतयः तिलांजलि देकर मनुस्मृति को ही व्यवहार की कसौटी मान लिया गया। यह काल सामाजिक और धार्मिक संकीर्णता का युग था महिलाएं भी इस संकीर्ण विचारधारा का शिकार बनीं। इस काल में महिलाएं गृहलक्ष्मी से याचिका के रूप में दिखाई देने लगी। माता के रूप में सम्मानित होने वाली महिला का स्थान सेविका ने ले लिया। महिला जो किसी समय अपने प्रबल व्यक्तित्व के द्वारा साहित्य और समाज के आदर्शों को प्रभावित करती थी, अब परतंत्र, पराधीन, निस्साहाय और निर्बल बन चुकी थी, मनुस्मृति में यहाँ तक कह दिया गया कि महिला कभी भी स्वतंत्र रहने योग्य नहीं है।

बाल्यावस्था में पिता के अधिकार में, युवावस्था में पति के वश में तथा वृद्धावस्था में पुत्र के नियन्त्रण में रहे।[9] इस प्रकार स्त्रियां घर की चारदीवारी में कैद हो गयी।

मध्यकाल में स्त्रियों की स्थिति में जितना पतन हुआ उतनी कभी नहीं हुआ। स्त्रियों को घर से बाहर जाने की स्वतंत्रता नहीं थी। हिन्दू धर्म की रक्षा स्त्रियों के मातृत्व और रक्त की पवित्रता को बनाये रखने के लिए स्त्रियों के सम्बन्ध में नियमों को कठोर बना दिया गया। उच्च जाति की स्त्रियों की शिक्षा समाप्त हो गयी, पर्दा प्रथा प्रचलित हो गयी। 5–6 वर्ष की आयु में बाल विवाह होने लगे जिसके फलस्वरूप महिलाओं की शिक्षा एवं उनके सामाजिक स्तर में तेजी से गिरावट आ गयी। पति की मृत्यु के बाद पत्नी का पति के साथ सती हो जाना पतिव्रत धर्मी की सर्वोच्च परीक्षा मानी गयी थी। इस प्रथा को धार्मिक आवरण देकर बढ़ावा दिया गया। विधवा पुनर्विवाह समाप्त हो गया, सती प्रथा चरमसीमा पर पहुँच गयी। इस काल में स्त्रियों के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार में सुधार हुआ। उन्हें भी पिता की सम्पत्ति में उत्तराधिकारी माना जाने लगा। इस प्रकार 16वीं शताब्दी से लेकर 18वीं शताब्दी अर्थात मध्यकाल में स्त्रियों की दशा दुर्दशा में परिवर्तित हो गई। अंग्रेजों के शासनकाल में भारतीयों द्वारा नारी जगत में सुधार लाने के लिए भरसक प्रयास किये गये। मैथिलीशरण गुप्त ने स्त्रियों की स्थिति के सम्बन्ध में समाज का ध्यान आकर्षित करते हुए कहा "अबला जीवन हाय तेरी यही कहानी, आंचल में दूध आँखों में पानी" छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद ने समाज में स्त्रियों के महत्व के विषय में कहा है "नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास, रजत, नग, पल, तल में पीयूष स्रोत सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में।" इस प्रकार साहित्यकारों ने भी अपनी कविताओं के माध्यम से स्त्री के मातृत्व, वात्सल्य तथा राष्ट्र के निर्माण में योगदान देने वाले गुणों के महत्व को खुलकर प्रशंसा की और समाज को समझाने व जागरूक करने का प्रयास किया। अनेक समाज सुधारकों ने भी स्त्रियों की स्थिति, दशा सुधारने के सकारात्मक प्रयास किये।

राजा राममोहन राय ने सती प्रथा समाप्त करने के लिए संघर्ष किया तो वहीं पर स्वामी दयानन्द सरस्वती ने स्त्री शिक्षा और बाल–विवाह के विरूद्ध आवाज उठाई। ईश्वर चन्द विद्यासागर के प्रयत्न से हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम 1856 को वैध घोषित किया गया। जिसके परिणाम स्वरूप 1929 में बाल–विवाह निरोधक अधिनिम द्वारा बाल–विवाह को कानूनी रूप से समाप्त कर दिया गया। फिर भी व्यवहारिक रूप से स्त्रियों की स्थिति व दशा में कोई सुधार नहीं हुआ। 2005 में हिन्दू उत्तराधिकार कानून में संसोधन कर पुत्री को पुत्र के समान अधिकार प्रदान किए गये। सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, शैक्षिक तथा सांस्कृतिक प्रशासनिक क्षेत्र में नारी ने पुरूषों के बराबर कंधे से कंधा मिलाकर अपनी पहचान बनाई।

स्वतंत्रता के पश्चात् महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक स्थिति में काफी परिवर्तन हुआ इससे महिलाओं की पुरूषों पर आर्थिक निर्भरता कम होने लगी। संचार के साधन, समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में वृद्धि होने से महिलाओं ने अपने विचारों की अभिव्यक्ति करना आरम्भ किया। महिलाओं के पारिवारिक अधिकारों में वृद्धि हुई। साथ ही 1980 के आम चुनावों के पश्चात् भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि महिलाओं की स्थिति एक राष्ट्र में सामाजिक, आर्थिक और मानसिक स्थिति को दर्शाती है। धर्म शास्त्रों में भी नारी को अध्यात्म का प्रतीक माना गया है।

श्रीमती इन्दिरा गाँधी जी जब स्वतन्त्र भारत की प्रथम महिला प्रधानमंत्री बनी तो सम्पूर्ण स्त्रियों के लिए बड़े ही गर्व, सम्मान व आश्चर्य की बात थी। इसी प्रकार अनेक राज्यों में महिलाओं का मुख्यमंत्री व राज्यपाल बनना भी गौरव की बात थी। इस प्रकार राजनैतिक व सामाजिक क्षेत्रों में स्त्रियों की भागीदारी में वृद्धि हुई। 1980 में जब इन्दिरा गाँधी पुनः प्रधानमंत्री निर्वाचित हुई तब पश्चिम के तथाकथित सभ्य समाजों की महिलाएँ हतप्रभ रह गयीं। 2003 में भी दिल्ली में शीला दीक्षित, उत्तर प्रदेश में मायावती, बिहार में राबड़ी देवी और तमिलनाडू में जयललिता मुख्यमंत्री

थी। स्त्रियों का सामाजिक जीवन आज बिल्कुल भिन्न है जिन परिवारों में कुछ वर्ष पहले महिलाओं के लिये पर्दे में रहना अनिवार्य था उन्हीं परिवारों की महिलाएं आज खुली हवा में साँस ले रही है। दिल्ली की मुख्यमंत्री श्रीमती शीला दीक्षित, उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री सुश्री मायावती आदि महिलाओं ने अपनी राजनैतिक शक्ति का पूर्ण सदुपयोग कर मध्यकाल की रूढ़ियों को समाप्त करने तथा महिलाअें के प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिये प्रशंसनीय कार्य किये। आजीविका की दृष्टि से कुछ नये क्षेत्र भी महिलाओं के अधिकार में आ गये हैं। वर्तमान भारत में इंजीनियर, डाक्टर, नौसेना अधिकारी जैसे पदों पर महिलाएं कार्य कर रही हैं। विमान चालक पैराशूट सैनिकों के पदों पर महिलाएं हैं इन विशेष कार्यों के अतिरिक्त नागरिक सेवा क्षेत्र में भी महिलाओं की संख्या में वृद्धि हुई है। संविधान में महिलाओं के विशेष दर्ज और विकासात्मक योजना निर्माण प्रक्रिया के बावजूद ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाली अधिकांश महिलाओं की स्थिति में ज्यादा गुणात्मक परिवर्तन नहीं आया है। आज भी घर–परिवार, समाज, राजनीति, अर्थ, शिक्षा आदि क्षेत्रों में उनकी स्थिति सोचनीय है। सदियों से चली आ रही मानसिक दासता से वह अभी तक मुक्त नहीं हुई है। शायद वह स्वयं भी मुक्त नहीं होना चाहती। वस्तुतः जब तक पर्याप्त ग्रामीण महिलाएँ साक्षरता से आगे बढ़कर सुशिक्षा के द्वारा जागरूक नहीं हो जातीं, तब तक राष्ट्र के विकास का हमारा सपना पूरा न हो सकेगा।

सातवें दशक में संयुक्त संघ द्वारा इस दशक को महिला दशक के रूप में मनाए जाने की घोषणा से स्त्रियों की स्थिति में भले ही नाममात्र का सुधार हुआ हो किन्तु इससे अधिकांश शिक्षित स्त्रियाँ राष्ट्रीय एवं अन्तराष्ट्रीय स्तर पर काफी सक्रिय रहीं। वे अपनी स्थिति एवं अधिकारों के विषय में सचेत रहने लगीं। ए0आर0 देसाई ने एक आलेख में कहा–"भारतीय महिलाओं में नई संवेदना व चेतना का विकास हो रहा है जिससे अब उसे अधिक समय तक उन पारिवारिक, संस्थागत, राजनैतिक और सांस्कृतिक मानदण्डों की घुटन में नहीं रहना पड़ेगा जिनके कारण उसकी स्थिति सदैव अपमानजनक रही।[10]

वस्तुतः आज भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति में बहुत परिवर्तन हुए हैं और इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप महिलाओं की सामाजिक स्थिति में बहुत सुधार हुए हैं। शिक्षा, औद्योगीकरण, नगरीयकरण, जातीय गतिशीलता, संचार के साधनों में विकास आदि समस्त माध्यमों में महिलाओं की स्थिति सुधारने में सहयोग किया। संवैधानिक प्रयासों के द्वारा एक ऐसा सामाजिक वातावरण तैयार किया गया जिसके परिणामस्वरूप महिलाएं शोषण, असमानता, बाल विवाह आदि नाना समस्याओं से किसी सीमा तक मुक्त हुई हैं। यह प्रश्न अभी भी बना हुआ है। आज फिर से नारी समाज में सम्मानजनक स्थिति में पुरूषों के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही है। घर के साथ–साथ अपना कार्यक्षेत्र सही तरह से संभाल रही है। उसने साबित कर दिया है कि उसने अपनी शक्ति, योग्यता व कार्य क्षमता से साबित कर दिया है कि किसी भी क्षेत्र में पुरूष से कम नहीं है।

सन्दर्भ सूची

1. मनु. 3/56
2. ऋग्वेद : 3/53/4
3. ऋग्वेद : 11673
4. आपस्तम्ब गृहसूत्र :15/13
5. आपस्तम्ब गृहसूत्रः 6/111
6. वसिष्ठ धर्म सूत्र : 2/2/48
7. महाभारतः 13/2/14
8. रामायणः 6/128/63
9. मनुस्मृतिः 5/148
10. "वीमेन्स मूवमेंट इन इण्डियाः एन असेसमेंट" इकोनोमिक एण्ड पॉलीटिकल वीकली वोल्यूम XX नं0 23, जून 8, 1985 : 995

SHODH CHETNA – YEAR-3 ISSN : 2350-0441
(JAN. TO MAR., 2017) VOL. 1

English Version of Family Adjustment Inventory

❒ Dr. Karuna Anand*

ABSTRACT

The objective of the present study is to prepare the English version of family adjustment inventory. After reviewing relevant literature and consulting some experts, 75 items were developed and presented in the form of a five point scale. 180 statement were prepared in Hindi. They were also oped to score out those items which they thought were redurdent on the basis of 100% agreement among the judge, 75 out of 180 items were eliminated. The scale was administered on a sample of 1000 working & 1000 Non-working women. There are five factors emerged with Home-adjustment, Parent- Child relationship, Cohesion, well-being and other factors like socioeconomic condition in laws relationship etc.

The most pressing problem of the present time is mal-adjustment of both mild & severe nature. All over the world, we find a variety of such problems, some being individual problems and other problems of group living.

According to James C. Coleman:- " Adjective behavior is that behavior by which the individual attempts to deal with stress and meet his need also efforts to maintain harmonious relationship with the environment".

The terms home and family are interchangeable used in most of the cases of academic discipline. The term 'family' has been defined as a unit made up of two or more people who are related by blood, marriage or adoption and who live together, from an economic unit and bear and raise children. But we need a working definition.

Here family is describing as an intimate environment in which two or more people:

1. Live together in a committed relationship;
2. The members see their identity as importantly attached to the group; and
3. The group shares close emotional ties and functions.

WHAT IS FAMILY - ADJUSTMENT

Of all areas of adjustment, none is more important than the family (home). Much of

* Associate Professor, Dept. of psychology, GDHG College, Moradabad.

our existence is spent in two family settings- the family we grew up in and the family we have established or will establish for ourselves. The consequences of family experiences are reflected in every face of our lives. Families are complex. A single individual is complicated enough and a family is a set of complicated individuals in complicated interaction. Families are complex and changing. Each family has a life of its own. it is born, it lives and it dies. The membership changes, each member changes, and the interaction between members changes. The information from several studies suggests that there are systematic variations in family's interaction over the year, but the evidence is still too scant to warrant conclusion (Yarrow and Yarrow, 1964).

FAMILY ADJUSTMENT AS COHERENCE

One way of defining family adjustment is in terms of physical coherence. Does the family stay together? Does it continue to exit as a physical entity? This is a simple definition, one that states an essential that can be easily and objectively determined. On the other hand the essential it states is a minimum one, and most of us would reserve the term "adjusted" for families who do much than simply coherence.

FAMILY ADJUSTMENT AS HAPPINESS

A second definition of family adjustment is in terms of happiness. Many of us equate adjustment with happiness, and we may think of the well-adjustment family as one which is happy or has a general sense of well being. The limitations of this approach to a definition are inherent in the subjective nature of happiness and in the considerable variation in happiness among family members and in any member from time to time.

FAMILY ADJUSTMENT AS TASK ACHIEVEMENT

A third definition is in terms of task achievement. There are certain tasks which a family is expected to perform. For example, it is expected to contribute to the support and socialization of its members. By this definition, the well- adjusted family is one which achieves the tasks the society has set for it.

FAMILY ADJUSTMENT AS PROBLEM SOLVING

A fourth definition is in terms of problem solving just as every individual struggles to deal with his problems, families attempt to work out solutions to the difficulties which face them. In this framework, the well adjusted family is not one without problems (such families do not exist). It is one which is able to deal successfully with its problems.

FACTORS AFFECTING FAMILY ADJUSTMENT

- Family adjustment and Marital adjustment
- Family adjustment and Parent-Child relationship
- Family adjustment and Well being
- Family adjustment and Cohesion
- Family adjustment and Other factors

OBJECTIVE – To prepare the english version of family adjustment inventory

DEVLOPMENT OF THE TEST

ITEM CONSTRUCTION : After reviewing relevant literature and consulting

some experts, 75 items were developed and presented in the form of a five point scale. 180 statements were prepared in Hindi. They were also oped to score out those items which they thought were redurdant on the basis of 100% agreement among the judges, 75 out of 180 items were eliminated. The scale was administered on a sample of 1000 working and non-working women. There are five factors emerged with Family adjustment. These factors are Marital adjustment. Parent-child relationship, cohesion, well-being and other factors like socioeconomic condition, in-laws relationships etc. Each statement has five alternative. These alternative are as follows :

(Five points scale)

Always Mostly Sometimes Rarely Never

The following chart shows the connection of different items with different areas constituting the scale.

- Statements related to Marital adjustment
  (Item No. 1,5,12,14,18,23,27,32,38,39,45,53,55,62,68)
- Statements related to Parent child relationship
  (Item No. 2,6,11,17,19,26,31,37,40,44,52,56,63,65,69)
- Statements related to Cohesion
  (Item No. 3,8,10,15,25,30,36,41,47,50,54,61,67,70,73)
- Statements related to Well being
  (Item No. 4,7,13,16,21,22,29,35,42,46,49,57,59,66,71)
- Statements related to other factors (like socioeconomic condition and in-law's relationships)
  (Item No. 9,20,24,28,33,34,43,48,51,58,60,64,72,74,75)

STANDARDIZATION SAMPLE

This scale was personally administered to each of the 1000 working and non-working women, 180 items were checked by 30 judges belonging to the fields of Psychology, Sociology and Home science. 500 working women's were belonging to different professions. The sample was selected from the different areas like Meerut, Moradabad, etc.

RELIABILITY

The test retest method- (N = 300) was employed to determine the temporal stability of the test. The product moment correlated between the test and retest scores was = 89.

Split half reliability- This internal consistency reliability was ascertained by adopting odd-even procedure (N = 300). Using the spearman brown formula. The reliability coefficient of the test was found to be = 0.83. The values ensure a high reliability of the test.

VALIDITY

As all items in the scale are concerned with the home adjustment, the scale has

high Content validity, besides Face validity, judges/experts also assessed that items of the scale were directly related to the concept of home adjustment.

The Concurrent validity was determined by the procedure of Biserial correlation, which was found to be = 0.90

NORMS

Norms for the test have been prepared on a sample of 1000 women consisting of both the conditions 500 working women's and 500 non-working women's (house wives). The statements are decided into positive and negative items. Mean and S.D. are provided in tables No. : 1 and 2

Table-1 : Norms for interpretation of raw scores

S. No.	Mean	S.D.
75	271.3	36.25

Table-2 : Area wises norms for interpretation of raw scores

Area	I Marital Adj.	II Parent-child	III Cohesion	IV Well being	V Other factors
Mean	57.31	54.24	55.04	54.0	50.70
S.D.	9.421	10.387	9.37	10.18	11.09

INSTRUCTIONS

The instructions printed on the scale are sufficient to answer the questions that are asked.

1. No time limit is fixed for completing the test however, Usually an individual takes 15 to 20 minutes in completing the test form.
2. It is necessary to make clear to the respondents that there is no right or wrong answer to the statements.
3. It should be emphasized that no statement should be left unanswered, all statement have to be responded.
4. It is not desirable to tell the subjects the exact purpose for which the test is used.
5. Though the instructions are given on the scale is self administering. It has been found useful to read out the printed instructions to the subjects.

SCORING

The scale has both positive and negative statements. The serial No. of the positive and negative items are given in the following table.

Table-3 : Item Numbers of different areas of Family-Adjustment

Area of Family Adjustment	Number of Positive Items	Number of Negative Items
I-Marital Adjustment	1,5,53,55,62	12,14,18,23,27,32,38,39,45,68
II-Parent-Child relationship	11,17,19,26,37,40,65,63,69	2,6,31,44,52,56
III- Cohesion	3,8,36,50,54,67,70,73	10,15,25,30,41,47,61
IV-Well being	-	4,7,13,16,21,22,29,35,42,46,49,57,59,66,71
V- Other factors	24,43,48,51,58,72,75	9,20,28,33,34,60,64,74

Table-4 : The scoring of the positive & negative items are as follows

Types of Items	Always	Mostly	Some times	Rarely	Never
Positive items	5	4	3	2	1
Negative items	1	2	3	4	5

The sum of the positive and negative statements show the level of Family adjustments. The interpretation of the results will be described in two ways:

1. Total Family adjustment
2. Area wise Family adjustment

The level of adjustment are provided in the following tables.

Table-5 : Total Family adjustment scoring

S. No.	Scores	Interpretation
1	300 & Above	High adjustment
2	226-300	Good adjustment
3	151-225	Average adjustment
4	95-150	Mal adjustment
5	Below- 95	High maladjustment

Table- 6 : Area wise scoring

S. No.	Scores	Interpretation
1	61 & Above	High adjustment
2	47-61	Good adjustment
3	31-46	Average adjustment
4	16-30	Mal adjustment
5	Below- 16	High maladjustment

ACKNOWLEDGEMENT

*/would like to thank and express my gratitude for a large number of persons including the judges who motivated, co-operated and helped me a lot.

FAMILY ADJUSTMENT INVENTORY (English version)

Dr. Karuna Anand
Associate Professor
Department Of Psychology
Gokoldas Hindu Girls Colleg
Moradabad (U.P.)

Name................................Husband's/Father'sName...................................
Occupation.......................................Address...

Indications

This is a list. Some statements are given in it by which it is tried to know about your Home Adjustment Five options are given for each statement as:-

1. Always 2. Mostly 3. Same Times 4. Rarely 5. Never

Read each statement carefully and tick ☑ mark the option to which you are agreed. No answer is right or wrong. Your answers will be kept hidden to tally so try to answer each statement carefully and honestly. Don't leave any statement. If you feel some difficulty, please ask before answering it.

HOME ADJUSTMENT

Area	A Marital Adjustment	B Parents Child Relation Ship	C Cohesion	D Well being	E Others Factors	E Total
Scores						
Inter-pretati on						

	Statement	Always	Mostly	Some times	Rarely	Never
1.	I get opportunity to go out with my husband.					
2.	I do not give proper time to my children due to household tasks.					
3.	All the members of my family like taking food together when they get appropriate time.					
4.	I feel low are high blood pressure.					
5.	My husband also helps me in my household tasks.					
6.	I feel bad when my children don't get good marks.					
7.	I feel physically weak to myself.					
8.	I go with my family for outing.					
9.	I feel that with the increase in age differences are also increasing in relations.					
10.	It seems to me that sometimes I talk rudely with my family members.					
11.	I help my children in their work.					
12.	At the time of talking, my husband says such as disturb myself respect.					
13.	I think that life will be full of sorrows.					
14.	It seems to me that I don't give proper time to my husband due to more caring for my children.					
15.	I hesitate to tell my problem to my family members.					
16.	I work in tension.					
17.	Both of us spend our time with children.					
18.	It seems to me that my husband is not satisfied with my behavior.					
19.	I am worried to think about the future of my children.					
20.	It seems to me that the atmosphere of my neighboring house is more delightful than that of my house.					
21.	I have become irritated due to the difficulties of my house.					
22.	I am unhappy due to unknown reasons.					
23.	It seems to me that the way of talking of my husband with me is not good.					
24.	In spite of limited income, I try to fulfill the needs of all my family members.					
25.	The opposite feelings of love and hate about my family members, increase in my mind.					
26.	It seems to me that I scold my children without their faults.					
27.	It seems to me that my husband don't care my needs due to his office work.					
28.	I have to depress my wishes due to economic difficulties.					

		Always	Mostly	Some times	Rarely	Never
29.	There is something which runs in my mind unwillingly.					
30.	I feel loneliness among my house members.					
31.	It seems to me that my children hide something from me.					
32	I am worried because my husband guesses less to my abilities and powers.					
33.	I feel that all my needs are not fulfilled in the house.					
34.	I feel that economic difficulties check from looking after my children.					
35.	It seems to me that people often understand me wrong.					
36.	It seems to me that my house is filled with love and affection.					
37.	I keep knowledge about all the friends of my children.					
38.	It seems to me that I am unable to fulfill the physical needs of my husband.					
39.	My husband like to work outside the house.					
40.	After leaving my children at home, when I have to go out, I feel guilty.					
41.	My family members do not take care of what I say.					
42.	To forget the problems of my house, I am busy in some work.					
43.	It seems to me that my family does not have enough happiness and comfort.					
44.	It seems to me that my children feel free when they do not live with us.					
45.	I feel uncomfortable due to unexpected behavior like drinking of my husband.					
46.	Due to home difficulties, I want to run away somewhere.					
47.	It seems to me that situation of quarrel arises in my house without any solid reason.					
48.	I remove the shortage of my family in due course of time.					
49.	I am worried about the fear of death.					
50.	My family is the same as U dreamed of.					
51.	I completely believe in my family even at the time of difficulties.					
52.	It seems to me that hard discipline is necessary for children.					
53.	We both believe in having a limited family.					
54.	All family members solve the problem when it creates.					

No.	Statement	Always	Mostly	Some times	Rarely	Never
55.	I feel myself incomplete when my husband goes out.					
56.	It seems to me that due to his work, my husband don't give proper time to his children.					
57.	I feel backache.					
58.	All Family members take care of interests and comforts of one another.					
59.	I feel aches in the joints of body.					
60.	I feel uncomfortable in going with my mother and father in lows to public places.					
61.	When a personal problem creates all try to salve it altogether.					
62.	We both take care of each other's needs and wishes in the matter of Sex.					
63.	It seems to me that children are not studying with keeping mind in it at school.					
64.	I feel difficulty in combination with others.					
65.	My children like to talk openly with me.					
66.	I feel difficulty with the problem related with looking and hearing.					
67.	I can solve the shortage of my family in due course of time.					
68.	It seems to me that interest in each other is losing with the increasing of age.					
69.	I complete most of needs/wishes of my children.					
70.	When a difficult time approaches, I also believe completely in my family.					
71.	An idea of suicide comes in my mind unwillingly.					
72.	I think that more and more facilities are necessary for good combination in family.					
73.	All Family me members take care of interests and facilities of another.					
74.	I have to give up my wishes to complete the needs of my family members.					
75.	I am satisfied with the present condition of my family.					

REFERENCES

Aiyappan, A. (1937)."*Polyandry and Sexual Jealousy,"* Man, 37, (130), 104.

Carr, L.J. (1948). *Situational Analysis: An observational Approach to introductory Sociology (*New York: Harper and Row).

Chakrabortty, Krishna (1978). *The conflicting worlds of working Mothers,* (Calcutta: Progressive Publisher).

Desai, Neera (1957). *Woman in Modern India* (Bombay: Vora).

**Dumont, Luvis (1951*).* *"Dowry in Hindu Marriage As a Social Scientist sees it, "The Economic Weekly,* 11(15), 519-521.

Dumont, Louvis (1951).*"Kinship and Alliance Among the Pramalai Kallar,"The Eastern Anthropologist,* 4: 3-26.

Fluegel, J.C. (1921). *The Psycho-analytic study of the Family* (London : The Hograth Press).

Gnanambai, K.(1960).*Ethnography of Gannapur* [Cyclostyled].

Gist, Noel P. (1953). "*Mate Selection and Mass Communication in India,"The Public Opinion Quarterly, XVII* (Winter).

Gore, M.S. (1961).*The Impact of Industrialization and Urbanization on the Agarwal Family in Delhi Area," Unpublished Ph.D. Dissertation* (Columbia University).

Goswami, BB. (1960). *"Brige Price System in the Indian Family,"The Eastern Anthropologist,***16(3)**, 201-207.

Gupta, Kuntesh (Smt.) (1982). *Family patterns and Role differentiation in jodhpur city Unpublished Doctoral Dissertation*, Meerut University.

Hallen, G.C. (1960*).* *Dowry system among the Hindus in North India,"Indian Journal of Social Work.*28(4),** 411-426.

Harper, E.B. (1959). "*Two systems of Economic Exchanges in India,"American Anthropologist,***69** (678-760).

Hooja, J. (1968). *Dowry system among the Hindus in North India,"Indian Journal of Social Work*. **28(4),** 411-426.

Hu, C.T. (1956).*"Marriage by exchange Among the Tharus," The Eastern Economist*, **10(2),** 116-129.

Jacobson Doranne (1976).*"Women and Jewelry in Rural India" in G.R. Gupta (ed) Family and Social Change in Modern India* (New Delhi : Vikas).

Kapadia, K.M. (1956). "*Rural Family Pattern : A study in Urban- Rural Relations, Sociological Bulletin*, **5:** 111-126.

Kennedy, Beth C. (1954). "*Rural Urban contrasts in Parent-child Relations in India," Bombay : Bureau and Research and Publications. Tata Institute of Social Sciences also in India Journal of Social Work.***15(3),** 162-174.

Kishwar, Madhu and Ruth Vanita (eds) (1985). *In Search of Answer : Indian Women's Voice from Manvsh*i (London : Zeid Press).

Kolenda, P.M. (1963). *"Toward a Model of the Hindu Jajmani System", Human Organization,* **22** (11-31).

Leuinson, Daniel J. (1959). *"Role Personality and Social Structure in the Organization Setting," Journal of Abnormal and Social Psychology*, **58,** 170-180.

Majumdar, D.N. (1944). *The Cortunes Primitive Tribes* (Lucknow: Universal Publishers).

Mandelbaum, David G. (1948). *"The Family in India" in the family: Ruth Anshen, editor its function and Destiny* (New York : Harpers).

(1968). "*Family, Jati, Village,"in Milton Singer and B.S. Cohen (Eds). Structure and change in Indian Society* (New York: Wenner Green Foundation for Anthropological Research), Inc, 29-50.

(1970). Society in India: Continuity and Change (Berbeley: University of California Press) Vol.

Manocha, B.L. (1987). Marriage Conflict : Causes and Cures (Delhi : D.K.)

Mc Cormack, Williams (1958). "Sister's Daughter Marriage in My sore Village, "Man in India, 38,34-48.

Mehta P. (1954). "A study of Frustration and Family Tension", Education and Psychology, 1 (21) 36-45.

Minturn, L. and Richard D. Lambert (1964). Mother of six cultures (New York : Asia Publishing House).

Mullick, Bulloram (1882). Essay on the Hindu Family in Bengal (Calcutta : W. Gewman and Co.)

Neal, W.C. (1957). "Reciprocity and Redistribution in an Indian village," in K. Polyani et al. (eds) Trade and Market in the early empires, 218-36 (Glen coe : The Free Press).

Nicholas, Ralph W. (1961). "Economics of Family Types in Two West villages," The Economic Weekly (July) 13, 1957-60.

Opler, Morris E. (1959). "Family and Religion," in L.S.S. O Malley (ed.) Modern India and the West (London : Oxford University Press).

Orans, M. (1968). "Maximizing in Jajmaniland : A Model of Caste Relations ," American Anthropologists 70, 875-97.

Paul Madan C. (1986). Dowry and Position of Women in Indian : A study of Delhi Metropolis (Delhi, D.K.).

Phanke, Sindhu (1960). "Families in Need of Adjustment", The Indian Journal of Social Work, XX (4).

Poffenberger, Thomas and Bihari J. Pandye n.a. "The Effect of the Dowry System on Endogamy Among Leva Patidar in a Low Status village (Manuscript).

Rallings, E.W. (1960). "A conceptual Frame work for studying the family : The situational Approach," F. Ivan Nye and Felix M. Berado (eds). Emerging Conceptual Frameworks in Family Analysis (New-York : Macmillan).

Rani, Kala (1976). Role conflict in working women (New Delhi : Chetna).

Rao. N.P. (1970). Role conflict of Employed mother in Hyderabad. India Doctoral Dissertation (University of Missippi state).

Rao, V.V. Prakasa and U. Nandini Rao (1980). "The Dowry System in Indian Village : Attitudes, Expectations and Practices, "international Journal of Sociology of Family, X, (i) (Jan-June, 99-113.

Sears, Robert R. (1950). Ordinal Position in the Family as a psychological Variable," Americal Sociological Review 15 (June) 397-401.

Sharma, Ursula (1980). Women, work, Property in Northwest india (London : Tavistock).

Thomas, W.I. and F. Zhaniecki (1927). The Polish Peasant in Europe and America (in 2 vols) (New York: Alfred A. Khoff Inc).

Thomas W.I. and Dorthy S. Thomas (1928). The child in America (New York : Alfred A. Khopf Inc.)

Vatuk, Sylvia J. (1975). "Gifts and Affines in North India," contributions to Indian Sociology (New Series) 5, 155-96.

Vatuk, U.P. and Syluia J. Vatuk (1976). Social context of Gift exchange in North India,"In G.R. Gupta (ed) Family and social change in Modern India (New Delhi: Vikas) 207-232.

 ISSN : 2350-0441

भारतीय संगीत में महिला कलाकारों का योगदान

❐ डॉ. सुदेश कुमारी*

शोध सारांश

आदि काल से ही, कोमलता की व्यवस्था में पली नारी जाति सुकुमारता व कोमलता के प्रतीक, संगीत को अपनाती रही। उसने संगीत में अपनी भावनाओं की कोमलता, कंठ की मधुरता और हृदय की सुकुमारता में साम्य देखा और उस नारी न अपने सुमधुर कंठ में उस संगीत को बैठा लिया जिसे पुरूष वर्ग विशेष परिश्रम के पश्चात् भी उतना सुमधुर बनाने में सफल न हो सका। अन्य गुणों के साथ–साथ ललित कलाओं से प्रेम व संगीत में रूचि नारी जाति मे स्वाभाविक रूप से आई, कयोंकि संगीत मृदुल था और नारी सुकुमार, संगीत मधुर था और नारी सुमधुर, संगीत रसपूर्ण था और नारी रस की अधिष्ठात्री व भावनाओं की प्रतीक थी। यही कारण है कि अनादि काल से ही नारी और संगीत, दो विभिन्न रूप न होकर एक समझे जाने लगे और नारी में संगीत का होना स्वाभाविक हो गया।

हमारे आदि कालीन ग्रन्थ वेद भी उपरोक्त तथ्य की पुष्टि करते हैं तथा उस काल में भी जहाँ संगीत का वर्णन है, वहाँ नारी को ही गाता हुआ प्रदर्शित किया गया है न कि पुरूष को। उस काल में गृहस्थ कार्यों के अतिरिक्त नारी की सांस्कृतिक उन्नति भी परमावश्यक मानी जाती थी तथा संगीत की शिक्षा की उसकी सांस्कृति उन्नति भी प्रसाधन मानी जाती थी। ऋग्वेद में गाती हुई स्त्रियों का वर्णन प्राप्त होता है।

'भारतवर्ष का सामाजिक इतिहास' के अनुसार विदर्भ सभा में भी एकत्रित महिलाओं के ऋकगान करते हुये प्रदर्शित किया है। संगीत में गायन, वादन व नृत्य इन तीनों कलाओं का समावेश होने के कारण ऋग्वेद में कई स्थानों पर नृत्य कुशल स्त्रियों का भी उल्लेख प्राप्त होता है– 'ऋधि पेशांसि वपेत नृतूरि वापोरातु वक्ष उस्त्रोव वजदम्।' इसके अतिरिक्त शतपथ ब्राह्मण में तो सामगान को ही विशेष कार्य कहा गया है। यदि स्त्रियाँ गायन में निपुण न होतीं तथा विशेष कर साम गायन में, तो उनको यह स्थान न दिया जाता। इसी भाँति तैत्तिरीय संहित और मैत्रायिणी संहित में भी स्त्रियों की संगीतनृत्याभिरूचि का उल्लेख ही है।

गायन व नृत्य की शिक्षा द्वारा उसमें सांस्कृति विकास की कल्पना की जाती है। इसके पश्चात् ही वह विवाह योग्य समझी जाती थी अर्थात् ये सब गुण कन्या में होने आवश्यक थे। यह इस बात की पुष्टि करता है कि अन्य गुणों के साथ ही कन्या में संगीत शिक्षा में भी निपुण होना परमावश्यक था।

* एसोसिएट प्रोफेसर, संगीत तबला वादन, गोकुल दास हिन्दू गर्ल्स कालेज, मुरादाबाद

उपरोक्त सम्पूर्ण कथन यह स्वीकार करते हैं कि संगीत के क्षेत्र में नारी का अपना एक विशेष स्थान था। जहाँ एक ओर व गृह कुशल थी, वहीं साथ–साथ वह संगीत शिक्षा ग्रहण करती थी तथा साम–गान मे अपना एक विशेष स्थान रखती थी।

आज आधुनिक युग में संसार के सभी क्षेत्रों में महिलायें उभरकर आ रही हैं। आज समाज के लगभग सभी क्रियाकलापों में छोटे से बड़े प्रशासनिक पदों पर प्रोफेसरों, संगीत कलाकारों, वैज्ञानिकों तथा डाक्टरों के पदों पर महिलाये पुरूषों से कंधे से कंधा मिलाकर चल रही है। यदि गौर से देखा जाये तो कुछ क्षेत्रों में तो महिलाओं का पूर्ण वर्चस्व है– जैसे संगीत का क्षेत्र, इसमें महिलायें संगीत आध्यापिका, नृत्यांगना, तबला वादिका, सरोद वादिका, पखावज वादिका, गायिकायें आदि के रूप में संगीत के क्षेत्र में अपना योगदान देकर संगीत को महिमा मंडित कर रही हैं। यह सर्वविदित सत्य है कि महिलाओं को हर क्षेत्र में कार्य करने की क्षमता दिनों दिन विकसित हुई है। पौराणिक युग में इस धरती ने सीता, सावित्री, अनुसूया जैसी महिलाओं को जन्म दिया है तो मध्य युग में मीरा भक्त, कवियत्री, झाँसी की रानी जैसी देश भक्त वीरागनायें तो रजिया सुलताना और नूरजहाँ जैसी कुशल प्रशासक को जन्म दिया है। आधुनिक युग में जहाँ श्रीमती इन्दिरा गाँधी जैसी राजनीतिज्ञ, महादोवी वर्मा, जैसी श्रेष्ठ कवियत्री, लता मंगेशकर, आशा भोंसले, एम. एम सुहबालक्ष्मी, गिरिजा देवी जैसी अद्वितीय गायिकाओं को जन्म दिया वहीं शरण रानी, एम. राजन तथा रोशन कुमारी जैसी सरोद वादिकायें वायलिन वादिकायें तथा सोनल मान सिंह जैसी श्रेष्ठ नृत्यागनाओं का नाम उल्लेखनीय है।

भारतीय संगीत परम्परा उतनी ही पुरानी है, जितनी भारतीय संस्कृति संगीत एवं अन्य ललित कलायें वास्तव में संस्कृति का ही एक महत्वपूर्ण अंग है। भारतीय संस्कृति में एकीकरण की जो क्षमता है, उसे इन्हीं कलाओं से प्राप्त हुई है। चूँकि संगीत का सम्बन्ध सभ्यता और संस्कृति के साथ रहा है, अतः समय–समय पर अनेक प्रकार के सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और धार्मिक प्रभाव इस पर पड़ते रहे हैं। भारत धर्म प्रधान देश है। भारतीय विचारधारा सदा से आदर्श की भाव भूमि पर प्रवाहित होती रही है, तथा उसका प्रयोजन लोक कल्याण रहा है। इसके कण–कण में राम, कृष्ण, बुद्ध और महावीर की आत्मा समाई हुई है। पूजा के अवसरों पर गाये जाने वाले संगीत की पवित्रता और धुनों की मनोरंजकता ऐसी धुरियाँ हैं, जिसके आस–पास सारा संगीत घूमता हैं। वास्तव में भारतीय संगीत का वैशिष्टय उसके सनातन स्वरूप में हैं, जो प्राचीन काल से अब तक अपनी मूल अभिव्यंजना के कारण अक्षुण्ण है।

भारतीय संगीत धर्म के आश्रय में पला बढ़ा और धार्मिक अभिव्यंजना उसकी आधार भूमि हैं, इसलिए हमारे प्राचीन ग्रन्थों तथा वेदों में धार्मिक संगीत पुष्ट रूप से विकसित हुआ। यही दैवीय संगीत संस्कार बद्ध, परिमार्जित तथा परिष्कृत रूप लेकर शास्त्रीय नियमबद्ध हुआ जो शास्त्रीय संगीत कहलाया तथा जो संगीत लोक रुचि के अनुसार गाया बजाया गया और जिसका असीमित प्रवाह लोक जीवन में प्रवाहित हुआ जो लोक संगीत की परिधि में आता है अर्थात् लोक संगीत कहलाता हैं। इस संगीत की पुष्ट धरातल शास्त्रीय संगीत है जो कलाकारों तथा बुद्धिजीवी वर्ग में रच बस गया और उन्नति के नित नये सोपान पार करके आज हमारे सामने उपस्थित है।

इन सभी संगीत की विकासात्मक प्रगति के लिए पुरूष कलाकारों का योगदान तो रहा ही हैं, साथ ही इनमें कुछ महिला कलाकारों का योगदान भी सराहनीय हैं।

प्राचीन काल में संगीत में नारी की स्थिति

संगीत के क्षेत्र में नारी का अपना एक विशेष स्थान था, महाभारत काल में स्त्रियों की संगीत शिक्षा के विषय में उल्लेख प्राप्त होते हैं। उत्तरा की संगीत व नृत्य शिक्षा अर्जुन द्वारा हुई थी तथा महाभारत के "विराटपर्व" में इसका स्पष्टतः उल्लेख है।

अतः स्पष्ट है कि सामगायन आदि ब्राह्मण कुल की स्त्रियां करती थी, साथ ही क्षत्रिय कुल में भी संगीत व नृत्य कला का प्रचलन था तथा अभिजात वर्ग भी इससे अछूता नहीं था।

मध्यकाल के शास्त्रीय संगीत में स्त्रियों का योगदान

इस काल में राग, गायन प्रचलन हो गया था। ध्रुपद और ख्याल भी प्रचलित हुए। इस काल में भारतीय कलाओं का पूर्णतः पतन हुआ। मुस्लिम साम्राज्य होने के कारण भारत की प्रगति पूर्ण रूपेण अवरुद्ध हो गई। संगीत के क्षेत्र में योगदान बहुत कम देखने को मिलता है फिर भी कुछ महिला कलाकार जैसे राजा मान सिंह तोमर की रानी मृगनयनी ने मिलकर संगीत के क्षेत्र में जो किया वह आज भी प्रमाणिक रूप में ग्वालियर में सुरक्षित है। इन दोनों ने मिलकर ध्रुपद शैली का आविष्कार किया तथा इसका प्रचार–प्रसार किया।

ग्वालियर में आम जनता में संगीत के प्रति बहुत जागृति थी, घर–घर में संगीत की मधुर ध्वनि सुनाई देती थी, नारियाँ भी संगीत की शिक्षा लेती थी और सार्वजनिक संगीत सम्मेलनों में भाग लेती थी। इसी श्रृंखला में इस काल में महिला उच्च कोटि की संगीतज्ञ मीराबाई का भी नाम आत है। मीराबाई गायन तथा नृत्य में निपुण थीं। यह कृष्ण भक्त कवि थी।झांझ, करताल व इकतारा सहित नृत्य के साथ गायन करते हुए संगीत के तीनों अंगों से संयुक्त साधन करने पर पूर्ण रूपेण श्रेय इन्हीं को उपलब्ध है। आपकी गयान शैली में शास्त्रीलय संगीत की राग–रागनियों तथा लोक गीतों की धुनों का अदभुत सम्मिश्रण हुआ हैं। आपके पदों में लगभग 90 राग, रागनियों का प्रयोग देखने को मिलता है। इस काल में भारतीय नारियों में नारीत्व की उच्च गरिमा जागृत करने का श्रेय इन्हीं को जाता हैं। आपका नाम भारतीय संगीत में सदैव अमर रहेगा। इसके अतिरिक्त कुछ अस्पष्ट से नाम इस काल में महिला कलाकारों के प्राप्त होते हैं, जैसे सहजोबाई, दयावती इत्यादि। ये सभी कृष्ण भक्त कवि थीं।

इसके अतिरिक्त इस काल में श्रृंगारिक पक्ष अधिक होने से उसमें भाव चित्रण स्त्रियों का ही प्रधान था, उनका सौन्दर्य उनका हाव भाव, उनकी वेश–भूषा, आभूषण इत्यादि पर विधिवत साहित्य लिखा गया है। ठुमरियों का भाव प्रदर्शन भी महिलाओं के द्वारा ही होता था सारांश में स्त्रियोजित भावों का अत्यधिक प्रदर्शन इस काल में हुआ।

आधुनिक काल संगीत में महिलाओं का योगदान

1. लता मंगेशकर– लता मंगेशकर का नाम आज सुरीली आवाज का पर्यायवाची बन गयी है। भारतीय फिल्म संगीत में में जो स्थान लता जी ने अपनी साधना और लगन से अपने लिये बना लिया है वह अद्वितीय है लता जी की प्रारम्भिक संगीत शिक्षा उनके पिता स्व0 पं0 दीनानाथ मंगेशकर जी के द्वारा ही हुई थी उनकी अन्य बहने भी गायन में प्रवीण थीं, लेकिन उनसे ये बहुत आगे निकल गई दत्ता डावेजकर के संगीत निर्देशन में 1946 में पहली बार फिल्म आपकी सेवा में लता जी ने गया "पाँव लागू कर जोरी रे, फिर लाहौर, महल आवाज बरसात से लेकर 'सत्य शिव सुंदरतम' तक और अभी तक लता जी की स्वर यात्रा अनवरत चल रही है।

2. आशा भोंसले– आशा भोंसले लता जी से एक वर्ष छोटी बहन है इनकी भी संगीत शिक्षा बचपन में पिता द्वारा ही हुई है। सन् 1948 में संगीत निर्देशक हंसराज बहल द्वारा पहली बार आशाजी से गवाया गया फिल्म चुनरिया में किन्तु वास्तव में उनका संगीत जीवन प्रारम्भ हुआ। ओ0पी0 नैय्यर द्वारा संगीत निर्देशित 'नया दौर' के गीतों से। इनके साथ 'एक मुसाफिर एक हसीना' फागुन, फिर वही दिल लाया हूँ, ये रात फिर न आयेगी, मेरे सनम, कश्मीर की कली, जैसी फिल्में एक के बाद एक आती चली गई। फिल्म उमराव जान में गजले गाकर उन्होंने अपने लिए एक नया कीर्तिमान स्थापित किया है।

3. सुब्बुलक्ष्मी– दक्षिण भारत के कलाकारों में सुब्बुलक्ष्मी का नाम पूरा भारत जानता है इसका एक कारण यह भी है कि उन्होंने हिन्दी में गीत गाये है।

मीरा फिल्म में मीरा बन कर एम. एस. ने जो भजन गाये थे वो आज भी मीठे लगते हैं।

4. नाद ब्रह्म की उपासिका किशोरी अमोणकर— संगीत के प्राचीन स्वरूप के अनुसंधान में रूचि रखने वाली इस स्वर उपासिका ने प्राचीन संगीत शास्त्रों का अध्ययन और मनन चिन्तन किया है श्रीमती अमोणकर को मान्यता के अनुसार एक स्वर में सारा संगीत समाया हुआ है। इन्होंने संगीत की शिक्षा अपनी माता जी से ग्रहण की इस स्वर साधिका का प्रथम कार्यक्रम 1957 में अमृतसर में हुआ इनके अनुसार वास्तव में संगीत साधना नादोपासना है, जिसमें स्वर का दर्शन होता है यह कठिन मार्ग है अतः छात्र छात्राओं को श्रोताओं को प्रशंसा से प्रफुल्लित न होकर लक्ष्य प्राप्ति के लिये प्रेरित होना चाहिये।

5. ठुमरी गायिका— सविता देवी— श्रीमती सविता देवी बनारस अंग के ठुमरी गायन की देश की एक अग्रणी कलाकारों में अपना एक प्रमुख स्थान रखती है पूरब अंग की ठुमरी की खूबसूरतियों को, उसकी सरसता को और उसकी पुकार को अपनी लोचदार आवाज में उतार लिया और इस प्रकार दिल के दर्द को अभिव्यक्ति प्रदान की।

6. शारदा स्वरूपा श्रीमती अन्नपूर्ण देवी— आपने अपने पिता संगीत महर्षि उ0 अलाउद्दीन खॉं से सितार को शिक्षा ग्रहण की तत्पश्चात् उस्ताद ने इन्हें सुरबहार की शिक्षा प्रदान की। डिस्कवरी ऑफ इण्डिया नाटक में पार्श्व वादन किया। संगीतकारों के अनुसार अन्नपूर्णा देवी का सुरबहार वादन रूह की गिजा है।

7. एन. राजम— प्रसिद्ध बायलिन वादक श्री ए. नारायण अय्यर की सुपुत्री एन. राजम् का जन्म सन् 1938 में हुआ। आपको बाल्काल से ही संगीत की विधिवत् संगीत शिक्षा प्रारम्भ हो गई थी। अपनी स्कूलों शिक्षा और एम.ई. पी.एच.डी. की संगीत शिक्षा के साथ—साथ करती रही। आपने 1959 में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में बायलिन के लेक्चरार का पद भी सुशोभित किया। आपने भारत की श्रेष्ठतम कलाकारों (बायलीन वादिकाओं) में प्रमुख स्थान स्थापित किया।

8. शरण रानी— वर्तमान सरोद वादकों में शरण रानी का अपना अलग स्थान है। आप उ0 अलाउद्दीन खॉं की प्रमुख शिष्या है। 1960—61 में आपने विश्व के प्रमुख देशों में सरोद के कार्यक्रम प्रस्तुत किये। 1938 में भारत सरकार ने आपको पद्मश्री उपाधि से सम्मानित किया।

9. शहनाई वादिका बागेश्री कमर— बागेश्री कमर को प्रथम महिला शहनाई वादक होने का गौरव प्राप्त है। आपकी शिक्षा आपके पिता जगदीश प्रसाद कमर के निर्देशन में सम्पन्न हुई। आपने उस्ताद बिस्मिल्लाह खॉं का शिष्यत्व ग्रहण किया। आपको शहनाई वादन के लिये अनेक अलंकरण प्राप्त हो चुके हैं। शहनाई जैसे मुश्किल और पुरूष प्रधान वाद्य पर आपने अल्पायु में ही जो प्रवीणता हासिल की है वह प्रशंसनीय है।

10. सारंगीवादिका— अरूणा नारायण काले— अरूणा नारायण काले प्रख्यात सारंगी वादक पं0 रामनारायण की सुपुत्री है। आपकी वादन शैली में गायकी अंग की प्रधानता और तानों की सफाई, मींड, गमक का प्राचुर्य तथा लय की आपके वादन की विशेषता रही है।

11. तबला वादिका डॉ0 आवान ई. मिस्त्री 2012— श्रीमती आवान ई. मिस्त्री का जन्म सन् 1940 में एक संगीत प्रेमी के घर हुआ जिससे संगीत उन्हें विरासत में मिला घर में माता पिता और मौसी से संगीत शिक्षा ग्रहण की। अखिल भारतीय गांधर्व मंडल (बम्बई) से सितार में संगीत विशारद तथा गायन में संगीत विशारद एवं संगीतकार की उपाधियॉं प्राप्त की। आपने बम्बई द्वारा (कल के कलाकार) संगीत सम्मेलन मे अपना वादन प्रस्तुत कर अपने (तालमणि) की उपाधि प्राप्त की। श्री0 वी0 आर आठवले के निर्देशन में 'तबला—पखावज के घराने,' उद्धव, विकास एवं परम्परा नामक शोध प्रबंध पर आपको डाक्टरेट की उपाधि मिली। आबान जी भारत के प्रमुख नगरों में अपना कार्यक्रम प्रस्तुत कर चुकी हैं। कलकत्ता की इण्डियन रिकार्डिंग कम्पनी ने आपके तबला सोलो

एवं गुरु जी पं0 के के एस0 जिजिना के साथ राग यमन कल्याण में सितार की युगलबंदी का ई0पी0 रिकार्ड तैयार किया गया आप भारत की प्रथम महिला है जिन्होंने देश विदेश में अपना तबला वादन प्रस्तुत किया है। अपनी कला का गौरवपूर्ण प्रदर्शन कर अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की है।

12. जरीन दारूवाला शर्मा– 2014 इस प्रतिभाशाली सरोद– वादिका का जन्म 9 अक्टूबर 1946 को मुबई में हुआ। श्री हरिपति ..... पं0 भीष्ण देव वेदी, पं0 वीजी जो, पं0 लक्ष्मण प्रसाद जयपुर वाले, डॉ0 एस0एन्0 रांताजन्कर और पं0 एस0सी आर भट्ट जैसे दिग्गज संगीतकारों से संगीत शिक्षा प्राप्त करने का इन्हें सुअवसर प्राप्त हुआ। उस्ताद अली अकबर खाँ का सरोद सुनकर आप सरोद के प्रति पूर्णरूपेण समर्पित हो गई और सरोद वादिकाओं में अपना प्रमुख स्थान स्थापित किया।

13. डॉ0 योगमाया शुक्ल तबला वादिका– श्रीमती योग माया शुक्ल 'तालमणि' संगीत विशारद (गायन) एम0 म्यूज (अलंकार तबला) पी.एच.डी दिल्ली विश्वविद्यालय से सम्पूर्ण की। तबला वादन की उच्च शिक्षा की प्रेरणा पदमभूषण स्वर्गीय उस्ताद अलाउद्दीन खाँ साहब मैहर से प्राप्त हुई। आप फर्रूखाबाद घराने के सुप्रसिद्ध तबला वादक उ0 मुन्ने खाँ साहब की शिष्या हैं और महिला कलाकारों में अग्रणी तबला वादिका हैं। आपका सोलो और संगीत दोनों प्रकार के तबला वादन में महारत हासिल की। तबले का उदगम, विकास और वादन शैलियाँ इनकी प्रमुख रचना है ।

14. चित्रागना पन्त आगले– परवावज वादिका चित्रांगना पन्त आगले प्रसिद्ध परवावज वादक सरवावगत पन्त आगले के परिवार में जन्मी उनकी प्रपौत्री चित्रांगना कालीदास पन्त आगले आधुनिक काल की प्रथम परवावज वादिका है।आपके पिता कालीदास पन्त आगले, पितामह अम्बा दास पन्त आगले और परपितामह सखाराम पन्त आगले कभी एक से एक धुरन्दर प्रसिद्ध पखावजी सिद्ध कलाकार हुये। चित्रागना के रगों में पखावज की थाप विद्यामान है तभी तो अपने पिता, बाबा तथा परबाबा की भाँति पखावजन में प्रसिद्धि प्राप्त किये हुये हैं।

संगीत महिला कलाकारों को इसी श्रृंखला को जोड़ते हुए और भी कितने ही नाम हैं जो संगीत के क्षेत्र में अपना महान योगदान प्रसारित कर रही है इनमें डॉ0 शोभा कुदेशिया है जो महिलाओं की संख्या में दिनो–दिन वृद्धि होती जा रही है ये कहना कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी कि भविष्य में और भी श्रेष्ठ महिला कलाकार सामने आयेगी जो निश्चित ही महिलाओं की उपलब्धियों में एक नवीन कड़ी होगी।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि आज नारी प्राचीन वेद कालीन नारी की भाँति विवाह के पूर्व अन्य विद्याध्ययन के साथ ही संगीत कला का भी अध्ययन करती है विशेष रूचि वाली नारियाँ, रेड़ियो पर और फिल्मों में गाती है तथा उच्च स्तर प्राप्त करने पर संगीत सभाओं में आदर का स्थान प्राप्त करता है और शास्त्रीय संगीत के नित नये आयाम प्रस्तुत कर रही है जो आज महाविद्यालयों में प्रवक्ता वर्ग में छात्राओं का संगीत विषय में जिसमें तीनों क्षेत्र आते है गायन वादन नृत्य का मार्ग प्रशस्त कर रही है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. संगीत निबन्ध संग्रह–हरिशचन्द्र श्रीवास्तव पृ 74
2. महिला संगीत अंक– पृ0119, 131 से 156, 157, 158
3. ताल परिचय भाग – 03 प्रो0 गिरिश चन्द्र श्रीवास्तव पृ0 150

SHODH CHETNA – YEAR-3 ISSN : 2350-0441
(JAN. TO MAR., 2017) VOL. 1

हिन्दू समाज की संस्कारपूर्ण संरचना का पल्लवन : संगीतात्मक रूप में

❐ डॉ. सोनिया बिन्द्रा*

शोध सारांश

हिन्दू धर्म में 16 संस्कार माने गये हैं। लेकिन विभिन्न ग्रन्थों में संस्कारों की संख्या भिन्न–भिन्न बतायी गयी है। हिन्दू समाज या धर्म इन सोलह संस्कारों के ईद–गिर्द मानवीय जीवन को जीता है। इन्हीं संस्कारों के माध्यम से हिन्दू सामाजिक जीवन जीते हैं और अपनी एक अलग पहचान बनाते हैं। यह संस्कार समय के अनुसार प्रभावित होते रहते हैं। जिसके द्वारा व्यक्ति सहज रूप से अपने को सामाजिक मूल्यों और मान्यताओं के अनुकूल बना लेता है। संस्कारों में कई विधियां संगीतात्मक रूप से निभायी जाती है जिसमें संगीत के उपकरणों और ध्वनि के समान प्रवाहन से जीवन के विभिन्न अवसरों (जन्म और मृत्यु के बीच) उनकी पुनरावृत्ति एक ही उद्देश्य की प्राप्ति के लिए की जाती है। इन संस्कारों में व्यक्ति अपनी जीवनशैली को जीता है और इन्हीं संस्कारों के द्वारा हिन्दू धर्म का विशाल साहित्य का सर्जन होता आ रहा है जिसको पीढ़ी दर पीढ़ी मनुष्यों ने अपने धार्मिक आस्तित्व को जागृत करने में उपयोगी माना है। इस अध्ययन में हिन्दू समाज के सोलह संस्कारों के बारे में शोध किया गया है और उनकी पृष्ठ भूमि एवं ज्ञान को उजागर करने का प्रयास किया गया है। सोलह संस्कारों में गर्भाधान, पुसंतन, सीमान्त, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, पुनक्रिया, कर्णभेद, वृतादेश, वेदारम्भ, केशान्त, स्नान, उद्वाह, विवाह तथा अन्तोष्टि पर जाकर समाप्त व पूर्ण होती है। हिन्दू धर्म में जन्म से मृत्यु तक इसी चक्र में सभी मानव समाज में विचरण करते है, और अनुशासित जीवन से समाज में भी तालमेल बनाने का प्रयास करते हैं।

भूमिका–

प्रायः सभी धर्मों में एक अनुशासित, कर्त्तव्यों, धर्म, जीवन, निर्वाह का तरीका, रीति, रिवाज, परम्परायें इत्यादि का सुदृढ़ क्रमबद्ध चक्र बना होता है, जिसके अन्दर रहकर ही प्रत्येक मानव अपनी दिनचर्या, जीवन का निर्वाह करता है। हिन्दू धर्म में भी इसी प्रकार का एक अनुशासित क्रमबद्ध चक्र सुनियोजित है। ये चक्र पूर्ण रूप से धर्म से आबद्ध है जो इस धर्म में पल्लवित मानवीय संरचना को समाज में अनुशासित व सुरक्षित रखती है। प्रत्येक हिन्दू धर्म को मानने वाला व्यक्ति

* एसो0 प्रोफेसर (संगीत), एन0के0बी0एम0 पी0जी0 गर्ल्स कॉलेज, चन्दौसी जिला–सम्भल, म0ज्यो0फुले रूहे0वि0वि0 बरेली, Email : soniyabindrankbmg@gmail.com

इस संरचना को मानता है तथा जीवन पर्यन्त उन विश्वासों, रीति–रिवाजों, परम्पराओं का पूर्ण सम्मान करते हुये उनका निर्वाह भी करता है। जिससे उनका जीवन संस्कार पूर्ण व शालीन बनता है।

हिन्दू समाज की संस्कार पूर्ण संरचना–

''संस्कार'' हिन्दू धर्म अथवा किसी भी धर्म या सम्प्रदाय के महत्वपूर्ण अंग है। इतिहास के प्रारम्भ से ही वे धार्मिक तथा सामाजिक एकता के प्रभावकारी माध्यम रहे है। उनका उदय सुदूर अतीत में हुआ था, और काल क्रम से अनेक परिवर्तनों, के साथ (संस्कार) वे आज भी पूर्ण रूप से स्थापित है। हिन्दू संस्कारों का वर्णन वेदों, ब्राह्मण ग्रन्थों, धर्म सूत्रों, स्मृतियों ग्रन्थों में पाया जाता है।

''हिन्दू संस्कार'' मुख्यतः धार्मिक विश्वासों और सामाजिक परिस्थितियों पर आधारित थे। जो मूल में प्राकृतिक थे, वे भी क्रमशः सांस्कृतिक होते गये। संस्कारों के धार्मिक वृत्त में बहुत से सामाजिक तत्व प्रवेश करते गये। हिन्दू धर्म के संस्कारों के ढांचे या सांचे में धीरे–धीरे बहुत से सांस्कृतिक साधन भी आ गये जो अक्षुण्य भाव उत्सना करने में उनकी सहायता करने लगे। वास्तव में संस्कार व्यंजक तथा प्रतीकात्मक अनुष्ठान है। उनमें बहुत से अभिनयात्मक उद्वार और धर्म वैज्ञानिक मुद्राये एवं लक्षण पाये जाते हैं। संस्कार प्राचीन भारतीय समाज के आदर्शों तथा महत्वकांक्षाओं को भी प्रकट करते है। जो मनुष्य तथा अदृश्य आध्यात्मिक शक्तियों के बीच माध्यम के रूप में संस्कारों के कई तत्वों का विकास करती है।

मुख्य रूप से ''संस्कारो'' का मूल उद्देश्य व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास, मनुष्य का कल्याण और समाज तथा विश्व से उसका सामंजस्य स्थापित करना है। संस्कारों के अंगभूत विधि विधान, कर्मकाण्ड, आचार, प्रथायें आदि प्रायः सार्वभोमी है, और संसार के विविध देशों में पायी जाती है।

प्राचीन संस्कृतियों में उनका प्रतिष्ठित स्थान है और आधुनिक धर्मों में भी उनका पर्याप्त प्रतिनिधित्व है।

''हिन्दू संस्कार'', विश्वासों तथा प्रथाओं, से सम्बन्धित है, अन्ध विश्वासों, जादू टोना या पौरोहित कला पर अवलम्बित नही है। हिन्दू धर्म के संस्कार पर्याप्त मात्रा के परस्पर सुसंगत तथा मुक्ति युक्त है, यद्यपि उनका उदय आज से भिन्न मनोवैज्ञानिक वातावरण में हुआ था।

अपने उदयकाल में संस्कारों की अपनी व्यावहारिक उपयोगिता और उद्देश्य था, यद्यपि इस समय वे अस्पष्ट और कभी–कभी निरूउद्देश्य भी दिखाई पड़ते है, क्योंकि आधुनिक युग में उनका परिवर्तित जीवन से सामंजस्य नहीं हो पाया है। संस्कारों का पूर्ण सम्बन्ध सम्पूर्ण जीवन से था, और है। इसीलिये प्रत्येक समाज अपने मूल्यों और धारणाओं को सजीव और सुरक्षित रखने के लिए उनके प्रति निष्ठा और विश्वास उत्पन्न करता है। जिसके लिये सामाजिक तथा धार्मिक प्रेरणा और अनुशासन की आवश्यकता होती है। संस्कार इस प्रकार की प्रेरणा और अनुशासन के सफल माध्यम है। केवल विधि और संविधान पर अवलम्बित रहने वाली कोई भी सामाजिक व्यवस्था तब तक स्थायी नहीं हो सकती है, जब तक उसकी मजबूती से जुड़े सामाजिक व्यक्तियों के मनों में गहराई तक ना पहुंची हो। इसीलिये हिन्दूओं की सामाजिक व्यवस्था की दृढ़ता के पीछे उनके जीवन का नियमित और अनिवार्य संस्कार है।

हिन्दू समाज या धर्म में (16) सोलह संस्कारों के ईद गिर्द मानवीय जीवन का ढांचा या संरचना स्थापित है। इन्हीं संस्कारों में निहित अपने क्रमबद्ध कर्त्तव्यों का निर्वाह प्रत्येक मनुष्य जन्म से मृत्यु तक करता है। ये संस्कार व्यक्ति सहज ही अपने अनवरत् रूप से प्रभावित भी करते रहते है। इसके द्वारा व्यक्ति सहज ही अपने को सामाजिक मूल्यों और मान्यताओं के अनुकूल बना लेता है। ऐसा कहना अतिशोक्ति न होगा कि यदि धर्म में संस्कार न होते तो मानव का समाजीकरण कभी पूरा नहीं हुआ होता, और न ही परिवार और विवाह जैसी सामाजिक संस्थाओं का विकास ही होता। अप्रत्यक्ष रूप से संस्कार तथा अन्य

विधि विधान सामाजिक व्यवस्था का पोषण और धारण कराते है। संस्कारों में विविधता के कारण जीवन में एक लय का विकास हो पाता है।

हिन्दू धर्म के सोलह संस्कार

हिन्दू धर्म में सोलह संस्कारों को माना गया है। विभिन्न ग्रन्थों में तो संस्कारों की संख्या भिन्न–भिन्न बताई गई है। हिन्दू धर्म की संरचना में मुख्यतः सोलह संस्कार ही माने जाते है, और उन्हीं के क्रमबद्ध रूप में मानव जीवन की कार्य शैली निरन्तर बढ़ती रहती है। आधुनिक समाज में सोलह संस्कारों को ही मान्यता मिली हुई है। ये सोलह संस्कार निम्न है– व्यास स्मृति के अनुसार–

1. गर्भाधान
2. पुसंतन
3. सीमान्त
4. जातकर्म
5. नामकरण
6. निष्क्रमण
7. अन्नप्राशन
8. पनक्रिया
9. कर्ण भेद
10. व्रतादेश
11. वेदारम्भ
12. केशान्त
13 स्नान
14. उद्वाह
15. विवाहग्निपरिग्रह
16. त्रताग्निसंग्रह

इन सोलह संस्कारों में मुख्य रूप से आठ संस्कार बहुत महत्वपूर्ण हिन्दू धर्म में माने जाते है। जो निम्न हैं–

1. गर्भाधान संस्कार
2. जन्मोत्सव संस्कार
3. नामकरण संस्कार
4. अन्नप्राशन संस्कार
5. कर्ण छेदन संस्कार
6. जनेऊ संस्कार
7. विवाह संस्कार
8. अन्तेष्टि संस्कार

जिसमें सर्वप्रथम संस्कार के रूप में गर्भाधान संस्कार मनाया जाता है।

1. गर्भाधान संस्कार–

प्राणी के आगमन की सूचना पर ईश्वर का धन्यवाद किया जाता है। अर्थात् बच्चे के गर्भ में आते ही सांतवे माह में यह संस्कार सम्पन्न किया जाता है और ईश्वर से कामना प्रार्थना की जाती है, कि बच्चा सकुशल जन्म ले, तथा शिशु व माता का स्वास्थ्य ठीक रहे। ये प्रार्थना समाज में धार्मिक कीर्तन के द्वारा भक्तिमय पद गाकर की जाती है। गर्भाधान संस्कार पूर्ण उत्साह, आन्नदित होकर मनाया जाता है। जिसमें बच्चे के आगमन की पूर्व तैयारिंया की जाती है।

2. जन्मोत्सव संस्कार–

प्राणी के आगमन पर ईश्वर का धन्यवाद कर बच्चे का स्वागत किया जाता है। बच्चे का आगमन उत्साह एवं प्रसन्नता का संचार करता है, और बाल के जन्म के साथ ही उसके मंगल के लिये ईश्वर स्तुति सर्वप्रथम की जाती है। जिसमें उसके उज्जवल भविष्य, लम्बी आयु, सुन्दर जीवन इत्यादि के लिये ईश्वर से प्रार्थना की जाती है। यही से प्राणी या बच्चे के जन्म के बाद, धार्मिक कृत्यों, संस्कारों का प्रारम्भ हो जाता है। इन धार्मिक संस्कारों का प्रारम्भ धार्मिक रीति–रिवाजों परम्पराओं, धार्मिक कर्मकाण्डों से आबद्ध होता है, और ये धार्मिक कर्मकाण्ड उसके जीवन में नियमबद्धता, अनुशासन व धर्म के प्रति ईश्वर के प्रति समर्पित भावना को स्थापित करते है।

शिशु जन्म पर उसकी आरती उतारी जाती है। पुत्र जन्म पर गरीबों को दान दिया जाता है। मंगलगीत गाये जाते है, बधाईयों के धार्मिक गीत गाये जाते है। बच्चे के जन्म के बाद पूरा परिवार, आनन्दित होकर उत्सव मनाते है। ये पुत्र जन्मोत्सव कई दिनों तक परिवार में चलता है। जिसमें बधाईयों का कर्म निरन्तर चलत रहता है तथा मंगलमान, सोहर इत्यादि का गायन करते है।

बच्चे की छठे दिन छठी पूजन किया जाता है, जिसमें बच्चे तथा माता को स्वस्थ रहने का आशीर्वाद होता है, और बच्चे की छठी वाले दिन भी मंगलगान गाये जाते है। जिसमें बच्चे के आंखों में काजल डाला जाता है और बच्चे का श्रृंगार किया जाता है। बच्चे के जन्मोत्सव पर भिन्न–भिन्न रीति रिवाज होते है, जिसमें ननद (बच्चे की बुआ) भी बच्चे (भतीजे) के लिये कुर्ता–टोपी लाती है, और मंगलमान गाती है।

3. नामकरण संस्कार–

बच्चे का नाम रखने के लिये जिससे वह समाज में जाना जाये, नामकरण संस्कार होता है। शुभ मुहर्त निकलने के बाद ही इस संस्कार को सम्पन्न किया जाता है। जिस घर में बच्चे का जन्म होता है, उसी परिवार के सदस्यों द्वारा यज्ञादि आयोजित करके नाम रखा जाता है, जिसमें मंगलगान, पारस्परिक गीत गाये जाते है।

4. अन्नप्राशन संस्कार–

इस संस्कार के बाद बच्चे का अन्नप्राशन संस्कार हिन्दू धर्म समाज में मनाया जाता है। ये संस्कार बच्चे के छः से सात महीने का होने पर सम्पन्न होता है। इस समय बच्चे को अन्न से परिचित कराया जाता है। अन्नाप्रासन संस्कार से पहले बच्चे को अच्छी तरह नहला–धुलाकर नये वस्त्र पहनाए जाते हैं, माथे पर रोली का टीका लगाया जाता है। उसे उचित प्रकार से साफ–स्वच्छ करके संस्कार के लिये तैयार किया जाता है और परिवार के लिये एक उत्सव की तरह भोज पर सभी को आमन्त्रित किया जाता है। सभी मिलकर बच्चे को खीर खिलाकर अन्न से उसका परिचय कराते है। सभी आनन्दित होकर ईश्वर को धन्यवाद देते हुए मंगलगीत गाते है। और अत्यन्त हर्ष का वातावरण बना देते है। ये संस्कार भी बच्चे का महत्वपूर्ण संस्कार है, जिसमें बच्चे के छः महीने के पूरा होते ही शुभ मुर्हत में सम्पन्न किया जाता है।

5. कर्ण छेदन संस्कार–

कर्ण छेदन संस्कार लड़के व लड़की दोनों का उस समय कराया जाता था और आज भी यही परम्परा निहित है। अन्तर केवल इतना है कि आज कर्ण छेन लड़कियों का तो होता है, लेकिन अधिकांशतः लड़कों का अब नहीं होता। कर्ण छेदन बच्चे के कान में सुई से छेदकर मनाया जाने वाला संस्कार है, जो आज के समाज में कम ही देखने को मिलता है, फिर भी कुछ जातियों (ब्राह्मण इत्यादि) में आज भी यही परम्परा दिखाई देती है। इस संस्कार पर भी बच्चे को कम कष्ट, दुःख हो, ऐसी प्रार्थना ईश्वर से की जाती है, और ये संस्कार भी पूर्ण उत्साह व आनन्द से मनाया जाता है, जिसमें परस्पर परिवार के सदस्यों द्वारा मंगलगान, प्रार्थनायें गाई जाती है और बच्चों के महत्वपूर्ण संस्कारों में ये भी एक संस्कार है जिसका आज समाज में रूप बदल तो गया, लेकिन उसमें निहित धार्मिक भावना आज भी प्रबल, और जागृत है। इस संस्कार में खट्‌टी–मीठी दोनों तरह की भावना होती है। बच्चा बड़ा हो रहा है, इससे माता–पिता दोनों प्रसन्न है, लेकिन कर्ण छेदन से उस बच्चे को दुःख हो रहा है, इसीलिये परेशान भी होते है।

6. जनेऊ संस्कार–

ये धर्म का सबसे महत्वपूर्ण संस्कार है। इस संस्कार के बाद उसी समय बच्चे को विद्याध्ययन के लिये भेज दिया जाता था। इस संस्कार के कई नाम भी प्रचलित है। इस संस्कार में बालक गुरू के पास नवयुवक बनने तक शिक्षा ग्रहण करता था। जनेऊ संस्कार के समय सबसे पहले पुत्र अपने घर से प्रथम भिक्षा मांगता था। जिसमें उसके माता–पिता, वस्त्र, अन्न इत्यादि उसकी झोली में डालते थे। वह अपने घर की सब सुख सुविधा छोड़कर आश्रम में शिक्षा ग्रहण करने जाता था। जहां उसे भूमि पर सोना पड़ता था, एक तरह से वह ब्रह्मचार्य धारण करता था। अपनी शिक्षा पूरी करने के बाद ही वह अपने माता–पिता के घर वापिस आता था, आश्रम में रहने वाले ही उसके माता–पिता, भाई, बहन का स्थान ले लेते थे।

7. विवाह संस्कार–

युवा होने के बाद हिन्दू धर्म में विवाह एक महत्वपूर्ण संस्कार है। जिसके बाद गृहस्थ जीवन का निर्वाह किया जाता है। हिन्दू धर्म में विवाह धार्मिक रीति–रिवाजों, परम्पराओं में आबद्ध, मानवीय जीवन का अनुशासनात्मक व अनिवार्य अंग है। जिसके अन्तर्गत समस्त मानव अपने धार्मिक कृत्यों कर्त्तव्यों ऋणों

तथा वंश परम्परा का निर्वाह करते हैं। ये जीवन का अटूट बन्धन होता है। जो ईश्वर प्रदत्त माना जाता है। इस संस्कार को बहुत ही विस्तृत रूप से तथा उत्साह उमंग भरे वातावरण में ईश्वर भक्ति के मंगलगीत गाते हुये, बजाते मनाते है। जो दो व्यक्तियों को एक करके सम्पूर्णता प्रदान करता है। जिसमें दूल्हे को बन्ना, दुलहिनी को बन्नी कहा जाता है। इस संस्कार की आरम्भिक परिधि ही ईश्वर गान से प्रारम्भ होकर अत्यन्त धार्मिक रीति रिवाजों वरमाला, सप्तपदी इत्यादि पर समाप्त होती है। जो जीवन भर दो व्यक्तियों को साथ रहने के लिये वचनबद्ध करता है। सभी कुंवारी कन्यायें अपने अच्छे पति की ईश्वर से कामना करती है। व्रत रखती है, देवि की उपासना करती है। और सभी राम सीता, कृष्ण रूक्मणी, शिव पार्वती जैसे सफल विवाह की ईश्वर से प्रार्थना करती है।

8. अन्तेष्टि संस्कार–

संस्कारों का भौतिक उद्देश्य था, धन, धान्य, पशु, सन्तान, दीर्घजीवन, सम्पत्ति, समद्धि शक्ति बुद्धि की प्राप्ति। हिन्दूआसें का यह विश्वास था, कि आराधना और प्रार्थना के माध्यम से उनकी इच्छाओं और आंकाक्षाओं को देवता जान लेते है, और पशु, सन्तान, अन्न, स्वास्थ्य तथा सुन्दर शरीर और तीक्ष्ण बुद्धि के रूप में उनकी पूर्ति करते है। इन भौतिक उद्देश्यों की नीव अत्यन्त दृढ़ है, और आज भी उन्होंने जनसाधारण के मन पर अधिकार कर रखा है।

अन्तिम संस्कारों में मृत्यु उपरान्त अन्तेष्टि संस्कार होता है। जिसमें शोक, और दुःख प्रत्येक परिवारों के सदस्यों के ह्रदयों में समाय रहता है। मृत्यु शोक का अवसर था, जो चारों ओर करूणा ही करूणा का दृश्य उपस्थित कर देता है।

आत्मा के निवास के लिये शरीर को उपयुक्त माध्यम बनाने के लिये सम्पूर्ण शरीर संस्कार किये जाते है। पूर्ण रूप से अन्तेष्टि संस्कार के बाद माना जाता है कि व्यक्ति को मोक्ष प्राप्त हो गया होगा।

निष्कर्ष–

सार रूप में संस्कार हिन्दू धर्म के अभिन्न अंग है। जो मानव के जीवन के प्रत्येक भाग को प्रभावित करते है। हिन्दूओं के प्राचीन धार्मिक कृत्यों और संस्कारों से जिस सांस्कृतिक प्रयोजन का उदय हुआ वह था व्यक्तित्व का निर्माण और विकास। जिस प्रकार एक अच्छे चित्र में ठीक अनुपात में रंग भर उसे सुन्दर बनाया जाता है, ठीक उसी प्रकार हिन्दू संस्कारों में भी चरित्र निर्माण में विभिन्न संस्कारों द्वारा होता है। संस्कारों के द्वारा व्यक्ति नैतिकता के सद्गुणों से भर उठता है। अपने इन क्रमबद्ध प्रयोजनों के कारण ये हिन्दू संस्कार, हिन्दूओं के जीवन के अनिवार्य अंग हो गये है और काफी हद तक सम्पूर्ण हिन्दू जाति को इन संस्कारों ने जड तक प्रभावित कर उन पर अपना शासन भी बनाये रखा है। चाहे, आंशिक रूप से चाहे विस्तृत रूप से समाज में इन संस्कारों को माना व पल्लवित किया जाता है और समय–समय पर उनका अनुसरण भी किया जाता है। आज भी इनमें से काफी संस्कार समाज में प्रचलित है जो बहुत व्यापक रूप से मनाये जाते है, जिसमें सम्पूर्ण समाज (हिन्दू समाज) अकंठ रूप से डूबा हुआ है। और उन्हीं पर चलकर अपने जीवन को आगे बढ़ा रहा है, जिससे समाज में अनुशासन माना जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डॉ राजबनली पाण्डेय– हिन्दू संस्कार
2. डॉ राजबली पाण्डेय– हिन्दू संस्कार
3. डॉ राजबली पाण्डेय– हिन्दू संस्कार
4. मय्यावेश मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
   श्रद्धया परयोपेतास्ते में मुक्ततमा मताः।।
   श्रीमद्भगवद्धीता– अध्याय–12
5. सरयू कालेकर, आचार्य बृहस्पति
6. गीत वादित्रं नृत्याना अयं संगीतमुच्यते।
   गानस्यात्र प्रधानतत्वातच्छंगीत मितरितम्।।
   संगीत पारिजात– पं0 अहोबल, श्लोक– 20
7. पण्डित विष्णुनारायण – क्रमिक पुस्तक मालिका, दूसरी पुस्तक भारतखण्ड
8. डॉ0 शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे– भारतीय संगीत का इतिहास
9. सुनीता शर्मा– भारतीय संगीत का इतिहास